## ॥ वाणी का महात्म्य ॥

यह वाणी एक मामूली वस्तु नहीं है जिस का दिन रात वेद पुराण देवता और सन्त महात्मा उच्चारण करते हैं। परन्तु वे भी पार नहीं पाते हैं तो मनुष्य इस के गुण को पार किसतरह से पासक्ता है। जिस के गृह में हमेशा वाणी की पूजन होती है और अध्ययन होता है वह गृह स्वर्ग के समान है वहां किसी बात का भय नहीं रहता है। जो हरिपुरुषजी की वाणी को सांसारिक कामना के लिए पूजते हैं, वह काम तत्काल ही सिद्ध हो जाता है। यह बात हमारे अनुभव की है, जो नित्य अध्ययन करता है वह सद्विचारशील होकर वैकुण्ठ को प्राप्त होता है। वाणी एक प्रकार से ब्रह्म है जब पृथ्वी प्रलय होता है तब भी यह (शब्द) ब्रह्म तो कायम ही रहता है।

इस लिए वाणी रूप ब्रह्म की उपासना से अपने इच्छित फल को पा सकते हैं। इसी बात को सिद्ध करने के लिए मैंने मुमुक्षुओं के हितार्थ इस पुस्तक को प्रकाशित कराया है। आशा है सब साधारण लोग इसका सदुपयोग करके मेरे और कर्ता के श्रम को सफल करेंगे।

वै० शु १<br>सं १९७७ वि<br>शाके १८४२

विनीत<br>देवादास

# श्री हरिपुरुषजी की वाणी

प्रकाशक

वैष्णव साधु देवादास

संशोधक

पण्डित भगवतीलाल विद्याभूषण

प्रभाकर प्रिन्टिंग प्रेस में

मुद्रित

प्रथमावृत्ति १०००

## ॥ बाणी का महात्म्य ॥

यह बाणी एक मामूली वस्तु नहीं है जिस को दिन रात वेद पुराण देवता और सन्त महात्मा उच्चारण करते हैं। परन्तु वे भी पार नहीं पाते हैं तो मनुष्य इस के गुण को पार किसतरह से पासकता है । जिस के गृह में हमेशा बाणी की पूजन होती है और अध्ययन होता है वह गृह स्वर्ग के समान है वहां किसी बात का भय नहीं रहता है । जो हरिपुरुषों की बाणी का सांसारिक कामना के लिये पूजते हैं, वह काम तत्काल ही सिद्ध हो जाता है । यह बात हमारे अनुभव की है जो नित्य अध्ययन करता है वह सद्विचारशील होकर वैकुण्ठ को प्राप्त होता है । बाणी एक प्रकार से ब्रह्म है जब पृथ्वी प्रलय होता है तब भी यह (शब्द) ब्रह्म तो कायम ही रहता है ।

इस लिए बाणी रूप ब्रह्म की उपासना से अपने इच्छित फल को पा सकते हैं । इसी बात को सिद्ध करने के लिए मैंने मुमुक्षुओं के हितार्थ इस पुस्तक को प्रकाशित कराया है । आशा है सर्व साधारण लोग इसका सदुपयोग करके मेरे और कर्ता के श्रम को सफल करेंगे ।

ब सु ३<br>
स १९८८ वि<br>
शाके १८५३

विनीत<br>
देवादास

॥ श्री हरिपुरुषेभ्यो नमः ॥

॥ श्री हरिपुरुषजी की वाणी ॥

# —: भूमिका :—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥१॥

इस भगवत् गीता के वचन से जब २ इस संसार में धर्म की न्यूनता और अधर्म की वृद्धि होती है तब स्वयं परमात्मा अवतार लेते हैं या अपनी विभूति रूप किसी महात्मा को प्रकट करते है इसी सिद्धान्तानुसार इस कलि-युग में कई पाखंडियो के वेदाविरुद्ध धर्म को उठाने और वेदानुकूल साकार और निराकार उपासना का विस्तार करने को इस मरुस्थल के डीडवाना प्रान्त में श्री हरिपुरुषजी महाराज सोलहवी शताब्दी में प्रकट हुए। इन का सन्क्षिप्त जीवन चरित्र साथ मे दिया गया है। आपकी कविता की हस्त लिखित पुस्तकें डेढ़ सौ वर्ष पहले की कई स्थानों में विद्यमान हैं हमारी इच्छा इस को छपाकर सर्वसाधारण को लाभ पहुँचाने की हुई। अतएव महन्त सीतारामजी और जसीरामजी से प्रार्थना करके हस्तलिखित पुस्तकें सम्वत १८२३ की वो दूसरी १८२७ वो तीसरी १८३७ की, एक-त्रित करके फिर शुद्ध पाठ मिला कर प्रेस कापी करवाई गई।

पुनः पं० घनश्यामदासजी और पं० भगवतीलालजी विद्याभूषण को विनय पूर्वक निवेदन करके शोधन का भार सौंपा गया दोनों महाशयोंने बड़ परिश्रम से कठिन शब्दों-पर टिप्पण और उपनिषद गीता भागवतादि के प्रमाणों से इस पुस्तक को भूषित किया। इस में ज्ञान का विषय अति गंभीर है। उस को स्पष्ट करने के लिये अधिक टिप्पणी करने का विचारथा परन्तु ग्रन्थ के बढ़ जाने के कारण नहीं की। इस ग्रन्थ के कई छन्द कवित पद प्रत्येक गृहस्थ और विरक्तों को कई कंठस्थ करने योग्य हैं। परन्तु ग्रहादि पीड़ा निवारक इष्ट फलदायक ब्रह्म स्तुति तो अवश्य प्रतिदिन पाठ करने योग्य ही है। यह इस का विशेष चमत्कार है कि पाठकों के मनोरथ तत् काल ही सिद्ध होते हैं।

यद्यपि कई वचनों में परिवर्तन करना उचित था परन्तु सिद्धों के वचन होने के कारण ज्यों के त्यों रक्खेहैं प्रत्येक स्त्री पुरुषों को उपदेश के लिये प्रत्येक मन्दिरों में और बगीचियों में तो रखना आवश्यक है।

इस में यदि कोई भुलि रह गई हो तो कृपा कर सूचना देवें जिस से द्वितीयावृत्ति में ठीक कर लिया जायगा।

नराण दासोत निरंजनी ( खींवीजी )

सन्त महन्तानुचर

देवादास साधु

जोधपुर (मारवाड़)

॥ श्री निरंजनाय नम ॥

॥ श्री हरिपुरुषजी की वाणी ॥

# श्रीश्री १००८ श्रीस्वामीजी हरिपुरुषजी महाराजा

# का

# संक्षिप्त जीवन चरित्र

॥ दोहा ॥

पुरुषोत्तम परमात्मा, पूरण विश्वा वीस ।
आदि पुरुष अविचल तुही, तोहि निवाउ शीस ॥१॥

॥ प्रथम गुरु प्रार्थना ॥

नमो नमो हरिदासजी, करूँ प्रणाम अनंत ।
जाके कृपा कटाक्षसे, वाणी विविध भणंत ॥२॥
नमो निरजन ब्रह्मको नमो नमो सु महन्त ।
नमो बहुरि सब सन्तको, विनती करु अनन्त ॥३॥
मैं बालक अज्ञान हूं, आपसभी मति वन्त ।
उच नीच जो होय कहुं, क्षमा करहु सब सन्त ॥४॥

श्री स्वामीजी का जीवन चरित्र लिखने के लिये जिस २ सामग्री की आवश्यकता है वह इस समय सर्व

प्राप्ति नहीं होती है इससे इनका चरित्र लिखने के निमित्त परिचय और सब सन्त महन्तों के मुखारबिंदों से जैसा सुना वैसाही लिखता हूँ इनका जन्म सोलहवीं शताब्दि में हुआ था इन की जन्मभूमि परगना सीकरावा खास काफड़ोद गाँव था। जाति के हरिसिंह नाम के क्षत्रिय थे इनका गोत्र सांखला नाम से प्रसिद्ध था। जब तरुण अवस्था में ४५ वर्ष गृहस्थ अवस्था में व्यतीत कर चुके थे तब हरिसिंहजी दुर्भिक्ष पड़जाने के कारण धनोपार्जनके लिये एक दिन अपने मित्रों केसाथ वन में गये। वहाँ पर स्त्री सहित एक बनिए को आता देखा और उसको रोक कर लूटने लगे। इतने में भक्तोंकी प्रतिपाल करने वाले भगवान् गोरखरूप से प्रगट हुए और आपस में द्वन्द्व देख के महाजन से पूछा कि तुम क्यों लड़ते हो तो कहा कि यह लुटेरे मेरे को लूटमार कर के धन ले जाते हैं।

तब भगवान ने प्रथम हरिसिंह के सामने देख के पूछा। कि तुम यह जुल्म क्यों करते हो, तब हरिसिंह ने कहा कि कुटुम्ब पालन पोषण के लिये। फिर भगवान ने पूछा कि तुम यह जुल्म करते हो सो यह पाप तुम्हें ही लगेगा या तुम्हारे कुटुम्बियों को भी लगेगा ऐसे मार्मिक वचन सुन कर हरीसिंह चुपचाप खड़ा रह गया और मुखसे

कुछ भी न कह सका तब भगवान ने कहा कि तुम घर जाकर यह पूछो कि मैं जो लूट कर कर के धन लाता हूं इस पाप के भागी तुम भी हो कि नहीं ? तब घरपर जाकर पूछा तो माता पिता आदि सभी ने कहा कि हम को पाप क्यों लगेगा "जो करेगा सो भरेगा" यह वचन सुन कर हरीसिंह ने मनमें विचार किया कि इस संसार में न कोई माता है और न कोई पिता है सब स्वार्थ के साथी हैं, यह विचार कर घरसे नंगे पाव नगे सिर वापिस आकर भगवान के चरण कमलों में दण्डवत पड़गया और गिड़गिड़ा कर बोला कि हे! भगवन् इस घोर पाप से मुझे बचाओ और मेरे मस्तक पर कृपया हाथ रक्खो और ज्ञान का मार्ग बताओ यह सुन कर भगवान् ने कहा कि जो तुमने वैश्य का धन लिया है उसे वापिस लौटादो यह सुन कर उसने सब धन पीछा देकर वैश्य को विदा किया तब भगवान ने हरीसिंह के मस्तक पर अपना हस्त रख कर मंत्रोपदेश किया तब से गृहस्थाश्रम को छोड़ कर वैराग्य धारण किया। वहां से तीखली नामक पहाड़ी पर चले गये उसी समय का किसी कविका यह दोहा है प्रसिद्ध है।

तीखी तींवर डूंगरी, जहाँ जल का नहीं निवास।
हरिदास हरि मिलनको, किया शिखर पर वास॥

वहां गुफा बना कर भजन करने लगे। भजन करत करत बिना अन्न जल के कई दिन व्यतीत हो गये। यह जो भक्तों पर दया करने वाले श्री भगवान ने पूर्व की तरफ एक जो देवी का मन्दिर है उस में जाकर देवी को कहा कि तुम कोई ऐसा भक्त चेताओ कि जो हमारे भक्त हरिदास कठिन तप करता है उसके लिये भोजन का प्रबन्ध किया करें। इतना कह कर भगवान तो अन्तर्धान हो गये देवी का यह मन्दिर डीडवाने में अबतक वर्तमान है जो यहां आकर दर्शन करता है उसे कोटि गौ दान का फल प्राप्त होता है। गाडा नामक सेठ को तब देवी ने स्वप्न में आकर कहा कि तुम को श्री भगवान की आज्ञा है कि डीडवाना गांव के पश्चिम पहाड़ी पर हरिदास नामक कठिन तप करता है उसको तुम हमेशा जाकर भोजन दिया करो यह कह कर देवी तो अन्तर्ध्यान हो गई जब सेठ जगा तब मन में विचार करके छोटी गागर पानी की और भोजन का कटोरदान लेकर चला उधर देवी ने मनमें विचार किया कि महाराज को बताऊं कि तुम्हारे पास एक वैश्य भोजन लेकर आवेगा सो आप लेलना। श्री भगवान का हुक्म है यह विचार करके देवी पहाड़ी पर स्वामीजी के पास गई दोनों हाथ जोड़ कर बहुत सी प्रार्थना करने पर भी महाराज ने नेत्र नहीं खोले। उस मिवन्द्रिद

सन्त जान कर चेली होने का विचार कर के सामने चार घण्टे तक प्रार्थना करती रही तब महाराज ने नेत्र खोले तो सामने देवी को खड़ी देख कर कहा कि तुम यहां किस कारण आई हो यह सुन कर देवी हाथ जोड कर चरणों में पड़ी और बोली कि मुझ को गुरु मंत्र दो तब महाराज ने अपने हस्त कमलो को शिर पर रख कर धीरज दिया और गुरु मंत्र सुनाया और कहा कि सर्व ईश्वर कीही माया जानो यह ज्ञान दे चुके तब देवी हाथ जोड़ कर कहने लगी श्री भगवान को आप बहुत प्रिय हो सो एक बनिया भोजन लेकर आप के पास आवेगा सो आप अङ्गिकार कर लेवे यह सुन कर स्वामीजी ने कहा कि तुम ने बहुत छल किया। देवी यह सुनकर भय भीत हो महाराज के चरणों में पडगई और बहुत प्रार्थना करने पर स्वामीजी ने भोजन को अंगी-कार किया और देवी को जाने की आज्ञा दी। देवी दण्डवत् कर के वहीं पर अन्तर्धान हो गई इतने में सेठ भोजन लेकर आ पहुँचा महाराज के सामने भोजन रख कर दण्डवत् कर के बैठ गया स्वामीजी ने भगवान निरञ्जन को अर्पण कर के आप ने भोजन किया, बाकी जो प्रसादी बची सेठ को दी।

अब महाराज के कुछ लौकिक चमत्कार दशाये जाते हैं

एक समय की बात है कि यह महाजन जल की गागर भोजन का कटोरदान लिये टेकरी पर चढ़त २ बहुत ऊँचा चढ़ गया देव योग से अचानक ठोकर खाकर गिरपड़ा रोने लगा महाराज के कान में यह शब्द पड़ा तो गुफा से निकल कर बाहिर आये। और उसको रोता देख कर उसके पास आकर धीरज देकर कहा कि ? तुम रुदन क्यों करते हो गागर को उठाओ और ऊपर चलो उसने कहा कि गागर टूट गई जल गिर गया तब स्वामीजी ने कहा कि तुम इस गागर को सीधी करदो इस में जल भरा है। यह सुन कर ज्योंही गागर को सीधीकी त्योंही जल भरा देख बहुत प्रसन्न हो चरण पकड़ लिये तो स्वामीजी ने कहा कि आसन पर चलो यह सुन दोनों ऊपर गये और महाराज ने निरञ्जन देव का ध्यान लगाकर प्रसादी ली और आराम किया सेठ चरण दबाने लगा। और चरण चांपते चांपते प्रसन्न देखकर हाथ जोड़ कर बोला कि मुझे कृपा करके एक पुत्र दीजिये यह सुन कर स्वामीजी ने कहा कि तेरे एक पुत्र होगा यदि अमरनाम की इच्छा हो तो डीडवाना गांव के उत्तर की तरफ आप मील पर अपने नाम से एक देवल बनाओ इस पुत्र का नाम

तुम्हारे नाम से प्रसिद्ध होगा यहां पर दूर २ से फाल्गुण सुद १ से लेकर १२ तक योगाभ्यासी सिद्ध साधु महात्मा यहां पर आवेंगे १२ दिन तक खूब मेला रहेगा सेठ ने वैसाही किया ।

एक समय की वात है कि डीडवाना गांव में स्वामीजी पीपल वृक्ष के नीचे वैठे भजन कर रहे थे उनके पास में एक सेठ की हवेली वन रहीथी सेठ ने हुक्म दिया कि पीपली को काट डालो । क्योंकि जड़ो से मकान में हानि होगी काटने वाले पीपली के पास गये तो स्वामीजी ने पूछा कि तुम क्यों आये । उन्होने कहा कि पीपली को काट ने की आज्ञा है ।यह सुन कर स्वामीजी ने कहा कि तुम इसे काटो मत यह वढेगी नहीं, वह पीपली अवतक इतनी ही है यह पीपली सेठ की हवेली के पश्चिम की तरफ अब तक वर्तमानहै जो मनुष्य जाकर दर्शन करते हैं उन के कई जन्मो के पाप मिट जाते है ।

वहां से आगे स्वामीजी नागोर में जाकर भूता वावड़ी पर डेरा किया । उसमें लोगो को भूतों का वहुत ही भय था इस कारण कोई भी वावडी की तरफ नहीं जातेथे वहां के रहने वाले लोगों को मालूम हुआ कि वहां एक साधु उस वावडी पर रहता है उसको यह मालूम नही है कि इस म भूत है,

यह बात सारे गांव में फैल गई। बड़े वृद्ध मनुष्यों ने मन में विचार करके कहा कि इन के पास में चलो। यह कोई ऐसा परमात्मा का भक्त है। स्वामीजी के पास में गये। एवं अन्य हजारों दर्शन को आने लगे। अब वहां के जातियों को मालूम हुआ कि यह कोई सिद्ध है तो हमारी प्रतिष्ठा नहीं होने देगा। इसका प्रभाव जम जावेगा यह सब जातियों ने विचार करके एक शिला को मंत्रित कर स्वामीजी पर चलाई कि यह सिद्ध होगा तो रोक लेगा, नहीं तो मरजायगा। यह शिला सीधी स्वामीजी की तरफ गई शिला आती देख कर कहा कि हे देवी वहीं खडी रह, तुरंत शिला आकाश में खड़ी हो गई तब यतियों को मालूम हो गया कि शिला आकाश में रुक गई है तब जतियों ने मिल कर स्वामीजी के पास आकर क्षमा मांगी और उस शिला को पृथ्वी पर उतारी। वह शिला अबतक नागोर के किले में शृंगार चौकी के पास में पड़ीहै। कहते हैं कि उस समय नागोर में राजा इन्द्रसिंहजी राज्य करते थे।

स्वामीजी वहां से आगे चले। घूमते हुए अजमेर में आये, दिल्ली दरवाजे के बाहर आसन लगाकर बैठ गये। यह अजमेर में बादशाह का थाना था। सो एक दिन किसीने हस्ती को शराब पिला कर मस्त करके छोड दिया। वह हाथी

बाजार में धूम मचाता हुआ दरवाजे के बाहर निकला। उसके बाहर स्वामीजी आसन लगाये बैठे थे। वहां के लोगोने कहा कि बादशाह का हाथी बिगड़ा हुआ आरहा। है सो आप रास्ते से दूर भाग जाइये यह बात सुन कर स्वामीजीने कहा कि ! जो भगवान से विमुख होता है; उसे मारेगा, मैं तो भगवान् का ही दासहूं। इतने में हाथी आपहुँचा लोगो ने चिल्लाना शुरू किया। जब शब्द स्वामीजी ने सुना तो नेत्र खोल कर हाथी को देखा और कहा कि हे गणपति तुम वहीं पर खड़े रहो, यह सुन हाथी सूंड पसार कर चरणों में लोटने लगा तब स्वामीजी ने धीरज देकर कहा कि तुम अचल रहो यह सिद्धाई देख कर सब लोग स्वामीजी के पास आकर दंडवत् करने लगे और आपस मे कहने लगे कि यह महात्मा बड़े सिद्ध पुरुष है। वहां पर स्वामीजी के हजारों चेले बन गये और वहां पर पत्थर का हाथी बनाया गया वह अजमेर में हाथीभाटा नाम से अब तक प्रसिद्ध हैं उस हाथी की गृहस्थियो की सादी के सयय जात लगतीहैं।

वहां से स्वामीजी रमण करते हुए जयपुर राज्य में आये यहा टोडा जयपुर राज्य में आ पहुँचे और गांव के बाहर आसन लगा कर बैठ गये वहां पर एक काला सर्प बड़ा जहरीला रहता था वह कई पशु और मनुष्यों को

तकलीफ देता था और सबको मालूम था कि किसीने उस बिल के पास में एक साधु को बैठे देख कर कहा कि हे तपसी ! यहां पर बहुत बड़ा एक जहरीला काला सांप रहता है सो आप यहां पर मत ठहरो हानी करेगा इतने में उस बिल से सर्प निकला स्वामीजी ने देख कर कहा कि हे शिव का प्यारा वासुरी तुम किसी को मत काटना यह सुन के चरणों में लग कर लोटने लगा यह कह के सर्प को बिदा किया । यह बात ग्राम में मालुम हुई तो सब आ आके स्वामीजी को ग्राम में ले गये। धूम धाम से सिरबाजार से सवारी निकाली उस समय की शोभा कोई भी कभी वर्णन नहीं करसकता है। फिर वहां से कई रोज रह कर चल पड़े।

स्वामीजी घूमते घूमते कोई ग्राम के पास आ निकले वहां पर ब्राह्मण को उसी समय सर्प ने काटा था, सब ग्राम दुखी होकर बैठेथे । इतने में स्वामीजी वहां पर चले गये और सब को उदास देख कर बोले कि तुम उदास क्यों हो यह सुन सभी ने कहा कि हमारे दुर्भाग्य हैं और इस ब्राह्मण को सर्प ने काटा और यह मर रहा है । आप महात्मा हो कुछ उपाय जानते हो तो बताइये । यह प्रार्थना सुन के स्वामीजी को दया आई और ब्राह्मण के मस्तक पर हाथ रक्खा तो उसी समय जहर उतर गया और वह खड़ा हो

गया। यह प्रभाव देख कर सभी लोग स्वामीजी को दंडवत करके चरणो में पड़ गये। स्वामीजी ने धीरज देकर कुछ ज्ञान दिया। उस समय वहां पर नरनारी आकर गंध पुष्प से पूजन करने लगे। अनेक प्रकार के भोजन तैयार करके भोजन कराया। बादमें शीत प्रसादी ली। उस गांव में भी बहुत शिष्य हुए। कई रात्री रह कर फिर रमणी में निकल गये।

वहां से सेखावाटी की तरफ चले गये गांव सिधा पण मे कई दिन विराजे। एक दिन की कथा है कि उस गांव में लक्षपति हरि भक्त सेठ रहता था। काल पाकर उसका इकलौता पुत्र मर गया। इस से सब गांव शोक मग्न हुआ और सारे ग्राम में उदासी फैली तो एक मनुष्य ने कहा कि तुम गांव के बाहर एक साधु बैठा है उसके पास में इसको ले चलो। सेठ सुन के मरे हुए पुत्र को गोद में लेकर वहां पर आया सामने रख कर रोने लगा। स्वामीजी ने नेत्र खोल कर देखा। उस को कहा कि जन्म और मरना यह किसी के हाथ की बात नहीं। यह तो भगवतके आधीन है। वह सुन कर सेठ कहने लगा कि मेरे एक ही पुत्र है और वैभव मेरे पास बहुत है, सो आप से हरिभक्त मिल गये और मेरा पुत्र नहीं जीवेगा। तो मै जिन्दा रह कर क्या करूंगा। मैं भी मर जाऊंगा। यह करुणाभरी प्रार्थना सुन कर स्वामीजी

को दया आई और कहा कि तुम इसको जवाब दो। नींद बहुत आगई है। यह सुन कर सेठने पुत्र २ यह तीन अवाजें दीं तो झट पट बैठा हो गया और बोला! पुत्र को जीता देख कर सब लोग प्रसन्न हुए नगर में बाजे बजने लग और जय जय का शब्द करने लगे। तब सेठ और सेठानी ने स्वामीजी का पूजन किया और भोजन कराया और कहा कि आप यहीं पर विराजो। परन्तु बहुत कहने पर भी स्वामी जी ने कहा कि हम विरक्त हैं एक जगह पर नहीं ठहरते हैं। घूमते ही रहते हैं। यह कह कर वहां से चल पड़े।

इसी प्रकार स्वामीजी ने पापी मनुष्यों के उद्धार के लिये जब से भगवत ने मस्तक पर हाथ रखा तब से अनेक अनेक प्रकार की लीलायें कीं। स्वामीजी के परचे बहुत है। परन्तु जैसा मिला, सुना, वैसा ही लिखा है। स्वामीजी कहते हैं कि हमारे तो ज्ञानदाता पूर्ण परमात्मा ही हैं जैसे गीता में लिखा है। "तस्य अभरधानस्य योगक्षेम वहाम्यम्"

वहां से स्वामीजी बीकानेर की तरफ रास्ते में आते हुए एक पैर रहित ब्राह्मण को देख कर कहा कि तुम यहां पर किस लिये बैठे हो। तुम कौन हो। यह वचन सुन करके कहा कि मैं ब्राह्मण हूँ पैरों से लाचार हूं स्वामीजी ने कहा तुम जंगल में किस प्रकार आये तो वह रोकर कहने लगा कि हमारे

जो बडा आता है। उसने मुझे जंगल में छोड दिया क्योंकि उनको मुझे हमेसा बैठे ही को भोजन देना पडता था। यह कह कर जलजला हो के स्वामीजी के पैरों में पड गया वहुत प्रार्थना करने लगा। तब स्वामीजी ने कहा कि तुम उठ खडे हो जाओ और घर चले जाओ, भगवत की कृपा से तेरे नवीन पेर वन गये है। यह सुन कर ब्राह्मण वेधड़क खड़ा होगया और स्वामीजी के चरणों में पड गया स्वामीजी ने कुछ उपदेश दिया वह स्वामीजी के शिष्यों में गिना गया है।

वहां से स्वामीजी डीडवाणे की तरफ चले चलते २ कुचामण के पास खोजीजी की पालड़ी में आये खोजीजी भी हरि भक्त थे उन्हों ने मन में विचार किया कि हरि-दासजी कैसे हरि भक्त है।

परीक्षा के लिये एकान्त मे एक कोटड़ी में लूण विछा कर वन्द कर दिया। जब कई रोज होगए, तब बड़े शिष्यो नें मनमें विचार किया कि स्वामीजी को वहुत दिन हो गए हैं सो किधर रमणी में चले गए है यह विचार कर ध्यान देकर स्वामीजी को देखने लगे तो किधर भी नहीं दीखे तब नेत्र खोल कर विचार कर फिर इस प्रकार सब दिशाओं में देखा परन्तु स्वामीजी के कहीं भी दर्शन नहीं हुए, तब वन्द मकानों में ध्यान लगा कर देखा तो एक, कोठड़ी में वैठे

नज़र आए और नेत्र खोल कर सब गुरु भाइयों को कहा कि स्वामीजी एक कोठड़ी में बैठे हैं सब मिल के जाए और प्रार्थना करके लेआए।

जब से फिर स्वामीजी डीडवाणे से बाहिर नहीं गए वहीं पर विराजे रहे क्योंकि शरीर जीर्ण हो गया था जब वैकुंठ जान की इच्छा हुई तब सब सन्तों को और गाढ सेठ को बुलाकर कहाकि तुम सावधान रहना मेरी इच्छा है कि शरीर त्याग दूं, गाढ सेठ ने चरणारविन्दों में दण्डवत की, और कहा कि मेरे लायक सेवा फरमाओ यह सुन के स्वामीजी ने कहा कि गाढके पास में एक कूवा । तुम्हारे पुत्र के नाम से बनादो। उसमें सब तीर्थों का जल आयेगा, वह कुवा रामसरनाम से पश्चिम की तरफ अबतक वर्तमान है स्वामीजी के मुखारविन्द से वैकुंठ जाने का वचन सुन के सब मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। जैसे कि पत्तरहित पक्षी, स्वामीजी सब को धीरज देकर वैकुंठ लोक सिधारे। स्वामीजी ने सं० १७००के फागुणसु०छठ को शरीर त्यागा। वमीसे मेला होने लगा है।

इन्दरी रव लगाई के दसहु दिशा वस कीन ।
भोम सोम को ध्यान धर हरिदास हरि लीन ॥

॥ इत्यलम् ॥

# हमारे श्री स्वामीजी के गद्दी धरोंकी नामावली

१. श्री स्वामीजी १००८ श्री हरिपुरुषजी महाराज

२. श्री स्वा० जी नारायणदासजी

( जोधपुर में स० १७०० में आए और अमृत डुंगरी पर विराजे जिसका नाम अभी पच मन्दिर है )

३ ,, ,, ,, हरीरामजी

४ ,, ,, ,, रूपदासजी

५ ,, ,, ,, सीतलदासजी

६ ,, ,, ,, लच्मण दासजी

७ ,, ,, ,, गंगा दासजी

( जुना मन्दिर म विराजे समुतरों का चोक )

८ ,, ,, ,, नरसिहदासजी

( कुंज विहारीजी के मन्दिर में १८ ४५ में महन्त हुवे )

९ ,, ,, ,, मनछारामजी

१० ,, ,, महन्त बलराम दासजी

११ ,, ,, ,, किसनदासजी

१२ ,, ,, ,, आशा रामजी

१३ ,, ,, ,, पीताम्बर दासजी

## ❀ श्री वाणी की विषयानुक्रमणिका ❀

# शुद्धि पत्र

| पेज | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|
| २१६ | सुगीरण | सुमरण |
| ३५१ | मुरातन को अंग | सुरातन को अंग |
| ३६६ | करता को अंग | काल को अंग |
| ४०० | काजीनी को अंग | सजीवणी को अंग |
| ४०० | मातमा | महात्मा |

# समर्पण।

परम भागवत निरजर्मी महात्मा स्वामीजी

श्री श्री १००८ श्री

हरिपुरुषजी महाराज की

# वाणी

श्री सन्त महन्तों की सेवा में

पठनार्थ

सादर और सप्रेम

समर्पित

॥ श्री हरिर्जयति ॥

रामसन्त्र मुक्तिसार ।

# ॥ अथ श्री हरिपुरुष "दयालु" वचनावली ॥१॥

## ॥ ब्रह्मस्तुति ॥ १ ॥

ज्ञान न ध्यान न अबीह[1] अजाप, अरत अतत[2] माथ न बाप ॥
जगदीश अरीश[3] निकम्प निघात, हतोज हतोज विशंभर तात ॥
अमुरीद[4] अपीर[5] अहेत अहाथ, अदुःख असुख निरञ्जन नाथ ॥
अमेव[6] अटेव असेव अदेव, अथात अघात असिभ[7] अभेव ॥
निरलेप निसाज[7] निचोभ निमोभ, निकाम[7] निजाम निरास न लोभ ॥
नृमूल[8] नृस्थूल नृसिंध नृधंध[9], अजीत अतीत अबन्ध अकन्ध ॥
निछोह[10] निदोह नृमोह निसास[11], निरंक निसंक नृडंक नृत्रास ॥
निरंक निटंक[12] निबंट नितास[13], अनन्त सनन्त अब्रह्म प्रकाश ॥
अमान अथान अरुति[14] अवार, अचित अनंत अथित्त[15] अघाट ॥
निदोष निपोष अरेह[16] अथाट, गोपालगवालअमितअपाट[17] ॥

---

१ निर्भय २ अतत्व, पच तत्व रहित ३ अतुल ४ न चेला । ५ न गुरु ६ अप्रमाण ७ जन्मरहित ७ उत्पत्ति रहित ७ जिसको किसीने नहीं रोपा ८यहां चारों पदों में नृ शब्द निर अर्थवाचक है, जैसे निरसिंध=अवयवरहित ९ निधंध=निर्व्यापार १० राग रहित ११ द्वेष रहित १२ अतोल १३ त्रास रहित १४ ऋतु रहित १५ अस्थिर १६ रेखा रहित १७ विस्तार रहित

दयाल अकाल अग्राह्य विराट, अमाल अपाल अताल निराट॥
आलूम मालूम लतीफ गुंभार, हकीम फहीम सतार सवार॥
बेचगुनि बेचूनि करीम करीम, बेमादि बेदादि खुदाय रहीम॥
बेसबैद बे निमेह बेनिमेह बेताब, बेनिमूनि बिहिंनिसाना नखराब॥
रब हूह अरूप अगम्म अलाब, नापैद न खेद खुदी न अबाब॥
दभूरिन हूरिन बैरिन मार, खालिकमालिक[1] अथाह[2] अपार[3]॥
हाजरि नाजरि सहेस दयाति, मौजूद मौहूद न जीव न जाति॥
हिरूस बिरूम न बेर गुमान, सिरज्जनहार विरद्द न ज्ञान॥
आलूम मालूम सबैद सुभतान, खालिक मालिक अजब निशान॥
जाहिर माहिर सदैव असीर, अद्वैव अल्लाह मुरीद न पीर॥
अपरविगार निगर्वे गनीम दानाय साहिब फनान फनीब॥
राब कर साब हरियन सूर, सब आन अमान अखैविलनूर॥
रखान सवात न शोप न त्रास, दठ हारि सीति अभ्यास न नाश॥
बेर खान बेरान हैरानमुकाम, कव्वामन दामन सीतन थाम॥
उद्दार अपार अजार अरूप अखार अक्षार असार अभूप॥
अभूप अवेद अपर्व अखर्व, अखीर अतीर अच्छेद अमर्व॥
अरेख अपेख अयेख निसोग, अलेख अरीम अखोज निमोग॥

---

1 विस्तार २ अनादि ३ अनन्त ।

अबीज अनाथ अबाध निरोग, अलख अभख अजखअलोक ॥
अदखअचखअबखअबोट, अभूल अभाल अडोल अचोट ॥
अतोल अमोल अबोल निखोट, अझोल अभेद अछेह अलोट ॥
अभंग अरंग असाथ असंग, अजेर अजेर अफेर अजंग ॥
अखूर अक्रूर[1] अमिल्ल अमोड़, हरिनंग सनंट अनन्त अथोड़ ॥
असोच अपोच अलोच गभीर, अवद्ध[2] न सिद्ध धराधरत्त पीर[3] ॥
असोष अदोष अलोप अगाध, तोहि वारन[4] पार अचोरन साध ॥
अछीन अदीन अभूख अपान, विश्वंभरनाथ अनाथ अदान ॥
अहर्र अपर्र अचर्र निधाह[5], अमर्र अघर्र अजर्र अथाह ॥
अचंड अपंड[5] पुरुख न नारि, अभर्र अभर्र अधार विचारि ॥
अपैर अनैर निवैर निखण्ड, नितोज नितोज[6] रच्यो ब्रह्मण्ड ॥
अवंग[7] सवूह[8] वयंमविथार[9], जहाँ मतहाँ मुकता दरबार ॥
यला[10] नहि अंब नतेज न वाय, आकाश न वास जुरा[11] नहि ताय ॥
अविहड़[12] अजड़अपडअगढ[13], अघड़ अनड़[14] अभड़[15] अफढ ॥

---

१ कौर्य रहित २ अवधि रहित ३ भूमिधारक ४ यहा नकार उभयान्वयी ५दाढ़रहित ५नपुमकना रहित ६ नितोज=नित्य, वीप्सामें द्विरुक्ति है, ७ सर्वांग ८ सव्यूह ६ व्योम=अकाश के जैसे विस्तार वाला १० इला=पृथिवी ११ जरा=बुढापा १२ अभिन्न १३ अविनश्वर १४ आकाशचारी १५ रुष्टरहित

बिनाश अवागमअपनागमनेह, अगाधित निहार उछाह अछेह ॥
अकाय नराय अठग बिचारि, गहर गंभीर समाधि मुरारि ॥
अदेह[1] असाज अपेह अबिंद[2], असक अहक अचल अभिद[3] ॥
गरीबनवाज समंद न गाज[4], मछ कछ न नीर न कीर न साज ॥
अपानक घूत औघूत न पूत, उदास न वास पिता नहि पूत ॥
अठमौनिनिसोनिनस्वामनसेव, न मोह न दोह न क्रोध न हेव ॥
अखिग[5] असंग[6] निर्भंग[7] निसोर[8], रहत कवैत अनम न ओर ॥
अदत अमत अवत अजत, अगिर अठिर असर अहत ॥
निराकार अपार अरूप नरूप रसराय न रैनि दुःख न सुख ॥
रहपेद कवच न रोज न राग, सुखसेजन दुःखन अनादि अथाग ॥
निगम्मअगम्मत्रिबिधिन वास, तत आनन्द सूक्ष्म अमत प्रकास ॥
सुखमादि अनादि बियोग न योग अपोट न चोट अखिग अयोग ॥
यकस्वस पुरुषहरि ऊँच न नीच, तन ताप न तेज विषम न बीच ॥
सुँ पाक अछाक अछीप अभेव, निरंजननाथ यहि वोहि टेव ॥
निरखिष तृषार अरापन आन, परम पुरुष पयोधर पान ॥
अलेख अरूप अघर बिहाम, ताहि काम न क्रोध न क्षोभनसाज ॥

---

१ शरीर रहित २ बिन्दुरहित ३ चिन्ह मात्रम की रहित ४ पर्वत
५ [illegible] ६ [illegible] ७ [illegible] रहित ८ शब्द रहित

तत आस उदास अहेत नहेत, झख जोनि न जीव रगत न रेत ॥
अधर अकर सुखासुख राशी, समाधि अगाध यही अरदासि ॥
अहल अचल अपल अवेद, अपार विचार अभार अकेद ॥
*जन हरिदास अर चिन्त अनन्त, गिणती ज्ञान न कोय ॥
साध जाणि सुमरण[१] करे, मन आलम्बन होय ॥
साची माला सुरति की, ले मुनि समांनां चित्त ॥
धुनि[१] मांहि धन पाईया, राम सरीखा वित्त ॥
जन "हरिदास" अवगति अगम, रहे सकलतें दूरि ॥
सत गुरु मिले तो पाइ ये, हरि जहां तहां भरपूरि ॥

॥ इति ब्रह्मस्तुति ॥

## ॥ अथ मूलमन्त्र योगग्रन्थ ॥२॥

सुर नर मुनि दिगपाल, दिनरोमसिद्धि[१] थिर नांहि ।
एक सकृति कि पलकमें[२], कितनां आवे जांहि ॥१॥
अलख पलख[३] लागे नही, हरि सकलभवनपतिराय[४] ।
"अणहूवासो[५] रहेगा, जोहू वासो[६] जाय ॥२॥

---

१ नामस्मरण की टेक प्रणमें

१ सूर्य २ भ्रू विक्षेपमें ३ जगत रचनामें ४ इन्द्रादिकों का भी स्वामी ५ शुद्ध सनातन ६ माया का कार्य

*(नोट) किसी पुस्तक में "जन हरिदास अगणित अगम" पाठ है तब अर्थ—अगणित की गिनती अगम का ज्ञान नहीं होसकता ।

पार[1] अपार प्रीति परम निज भेद विचारे ।
ज्ञान खड़्ग ले हाथि, मोन मनरथ अरिमारे ॥३॥
साखि निसाखि निरपेक्षरस, हरि सुरनर सबकाईस ।
नाथ निरंजन पर दुःख हरण, जहाँ तहाँ जगदीस ॥४॥
उपजि[2] न बिनसे एकरसि, हाजरि रहा हजूरि ।
पूरण ब्रह्म प्रकासज्यूं[3], जहां तहां भरपूरि ॥५॥
लाकड़ी[4] काटी कटतहै, अग्नि न काटी जाय ।
दारु अगनि ज्यूं परमगुरु, जहां तहां समिआय ॥६॥
फूलवास तिसमें पूरी, जिसका खेल फुलेल ।
हरिजन हरि ऐसे मिले, परस परस बहुमेल ॥७॥

छप्पय

वार पार अपि नाहि, राममधि भेद बताया ।
तहां जहां गोपाल, गाय[5] ज्यूं आगे गाया ॥८॥
नारायण निर्वाण, ताहि कोई विरला ध्यावे ।
भाम[6] लागा आप, आपकूं आप मिलावे ॥९॥

---

१ पार पाये है । २ उत्पत्ति विनाशसे रहित ३ पर प्रकाश है ४ दूसरा दृष्टान्त दर्शाया है कि जैसे काठके कटे जाने पर भी व्यापकाग्नि का विनाश नहीं ऐसे ही शरीरादिकों के विनाश होने पर भी चेतन का नाश नहीं है ५ गा ६ उपदेश है कि भजन कर । सुरतयोरी ।

[१] हारिजीति [२]हठ [३]सुपठ, निकटि निज वस्त न दरसे ।
झूठ जहां जाये दुरे, फिरे[४] तो पारस परसे ॥
निरसंस निरदंद [५], जोर नहि जेग न जरणा ।
[६]नाद बिंद नहि जीव, जनम नहि अवधि न मरणा ॥
निराकारनहिअचलचल, हरि अभराभरण अनन्त ।
परम ज्ञन पर ध्यानदे, हरिसु यहि लगावें संत ॥
तरवर अनम अरूति, वीज अंकुर नही आया ।
पंचतत नहि पोप, फूल फल डार न छाया ॥
निरालम्ब निरलेप, निडर निरभे निहकांमी ।
निरामूल निष्कर्म, सुतौ हरि अन्तरजामी ॥
ब्रह्म विचार अपार, अजित अरि लगे न नरहरि ।
अखिलअथिरसुचिसुथिर, गथा भजतां भै थरहरि ॥
प्रकट परमगति परममति, परमनाथ परपेप ।

---

१ शास्त्रार्थ वादों से २ हठयोग ३ शब्द पाठसे
४ इत्यादि वाह्यषाचारभण ५दो सारियों मे षट्भाव विकार से रहित ।
६ भ० गीता २ ध्या–२० श्लो०

परम सनेही परमसुख, अकह अगह निरदोष ॥
अखिरअपर अहद सुखिर, अखर अमर निज नाथ ।
अधर सुधर मीठा मधुर, चितहित मनकरि हाथ ॥
अछल अमल अनहित अटल, अकल सकल अलिलोंन ।
ए सबकरि सबते अगम, बहुरि अकरता नाँव ॥
अधर गहरनिसंभरअकर, (तन धन) सुत बनिता नहि प्रीति ।
'अमिय कलस' एक अनेकगत, रता तहारस रीति ॥
अखिप अछिप जहांतहांछिपा, छाया पडै न छोइ ।
सकल भवन पति सति सदा, निरामोह निरदोह ॥
अडर अमित अवगति अक्षत, अनत सनंत मुरारि ।
चिदानन्द अर चित भरथ, चितमांही चितधारि ॥
रसरोग भोग भोगी नहीं, निरादेह निर्वास ।
बरण बिवरजित कहि अकहि, उदर उधर नहि सास ॥
अघट सनत नहि करसपट, मरमन कोई भेख ।
घटघरि घट्या न बघ घटे, हरि अपरंपार अलेख ॥
प्राणनाथ अकरण करण भगवन्त परमीधर ।
नाम राम गोबिंद, अमों सपष पख परहरि ॥
अलख निरंजन अवगतिराम, निराकार निरमे बिसराम ।

हरिदास जन यूं कहै, रं रं कार मूल निज नाम ॥
मूलमन्त्र सतगुरु दिया, दुःख सुख दोय दूर सराप[1] ।
आठ पहरकी ऊमनी, अंतरि अजपा जाप ॥
ज्ञान ध्यान यहु दान, नांव उनमान ज्यूं लीजे ।
गरब छाडि गोविंद भजो, भजि अमृत पीजे ॥
नावधरूं तो मै डरूं, चहोडि भजन तहों नांव ।
जन हरिदास की वीनती, आप राम चलि जांव ॥
बेकीमती कीमति कहा, भज परपंच पख तजि दोय ।
जन हरिदास हरि सुमरतां, कांटा लगे न कोय ॥

॥ इति मूलमन्त्र जोग ग्रन्थ ॥२॥

## ॥ अथ नाममाला जोग ग्रन्थ ॥३॥

भजि करुणानिधि करतार, करम भै भरमनिवारण ।
समृथ सिरजन हार, बिवधि जम का फंदजारण ॥
केसो रमता राम, हाथ जन के सिर धारण ।
नारायण गोपाल, सन्तराखण रिपुमारण ॥
परम सनेही नाथ, त्रिविध गुण गहर गुदारण ।

---

1 [illegible]

अविनाशी हरि अस्मिलुकरण, निरविस दुःख दारण ॥
इन का करो प्रहार, रघुनाथ निज भांत उधारण ।
गैवेम[1] करि गोविंद, चिंता भरि विरल उपारण ॥
अपरपार अपार, पार भौसिंध[2] उतारण ।
तुम नरहरी निर्वंस, पंग (तोहि) साधो सुख[3]कारण ॥
निरसंसे सु प्रीति, ताहि संसे क्यों प्रास ।
जहाँ अमपा तहाँ बैसि धारा अमामै अभ्यासे ॥
नट निरमै निरभेप, अरीझ हरी रीझै नाहीं ।
निरमल निकट हमरि, अगदि अभि अन्तर माहि ॥
परम रीति पर प्रीति, परमनिधि भांवण स्वामी ।
गुराकाल मे हरण, करण निरम निज नामी ॥
परम पुरुष परकास, जह कोई गुरू गम पूरा ।
स्वयं ब्रह्म पर अपर, सकल विश्व व्यापी पूरा ॥
परम सेम पर ज्योति, परम दुःख भंजन सोई ।
परम सुमि पर देव[4], जागि सुमर नहीं लाई ॥
परम ज्ञान पर ध्यान, (हरि) परम सुख साथ बताय ।
परम जोग पर भोग, (हरि) परम गति ले पहुँचावे ॥

---

१ हाथी के समान २ भव अपार समुद्र ३ गीता प्या ४ छो ८
४ यह संबोधन है ।

निरालंब निरलेप, अचल चरणां चित धारं ।
हरि निरगुण निरछेह, वार नहि लाभै पारं ॥
अकल अभेद अछेह, निरूप निरभै घर पाया ।
निराकार निर्वाण, प्राण मन तहाँ समाया ॥
अवगति अगम अलेख, ताहि कोई विरला परसै ।
अयोनि अस्थिर अचित्य, अभि अन्तरि दरसै ॥
अद्रिष्टि अचिर अरूप, अथाह निरमोहसन्यारम् ।
निरामूल निरधार, निकुल निरपख निजमारम् ॥
परमतत पर भेद, सकल जुग मंडण जोगी ।
पारब्रह्म हरि अखिल, रस रोग रसना नहीं भोगी ॥
अघर अजर समिभाय, जीव सब जलि थलि पोखे ।
अकहि निरंजन देव, साधु सुमरै मनि चोखे ॥
अहथ अबीज अनेक, निरास निरभै सुख सारं ।
अकरमअरत अलोक, विरखारस अमृत धारं ॥
एक मेक भरपूर, दूरी तोहि कहूं कनेरा ।
निज तरवर निरसिंध, प्राण तहां पंखी मेरा ॥
अखंड खंड ब्रह्मंड, सकल में साच लुकाया ।
जन हरिदास हरि अघट, अरथ गुरगमते पाया ॥
जहां हरि राखे तहां मैं रहूं, हरि पठवे तहां जाव ।

जन हरिदास की विनती, मैं (हरि) नहीं छाडो हरि नांव ॥

॥ इति नाममाला ॥३॥

## ॥ अथ नाम निरूपण जोग ग्रंथ ॥४॥

नांव निरूपम परम सुख, नांवे विरला कोय ।
जन हरिदास ताकूं भजे, तब ही आनन्द होय ॥
पारावरें पूरण ब्रह्म परिब्रह्म हो मनलाय ।
गरब छांडि गोविंद भजो, जन्म अमोलिक जाय ॥
सत्गुरू मिले तो पाइये हरि परम सनेही तात ।
बहोडि बहोडि लाभे नहीं, यह औसर गइ बात ॥
मै छाडो निरभै भजो गुणां रहित गोपाल ।
अगम ठौर आणन्द सदा, जुरा जनम नहिं काल ॥
जोगारंभका* मूल है, हरि भगवती अपरंपार ।
सुखसागर समरथ धणी, सब का सिरजन हार ॥
निरभै पद नर कर चढ्या, मिनख जनम फल येह ।

---

* नाम स्मरण ही—आगे सारी साधक अवमें १६ कामें नाम स्मरण ही योग मूल बताया है जैन जन हरिदास मो जय मड़ पड़े अधीरित राम राम दोन मि हेलडी जाप मूप ए धाम ॥

निराकार निसदिन भजो, हरि अगणित अनन्त अछेह ॥
मिनख जन्म खरचै[1] रखै, हरि विन दूजी ठौर ।
सास उसासो नांव लै, नर दौरिसके तो दौर ॥
जागि जीव सोवे कहां, प्रथम[2] मोह तजि मांन ।
साध[3]मुलक तहां वासकरि, जम न ले सके डाण ॥
भगती करो भगवन्त की, मन दीनां सिधि होय ।
मन विन दीना मन लहूं, खाय न धाया कोय ॥
पाप पुनि दोनु विरख, तहां करे मन थान ।
मन ए दोन्यु तरवर तजे, तब पावे भगवान ॥
भरम छाडि निरभै मते, निरभै वस्त विचारि ।
गुरू आखर कर बांणधरि, मोह महारिपु मारि ॥
करि धारण कैसो भजो, समझन कीजे सोच ।
यहु औसर चलि जायगा, बहोरि न लाभै पोच ॥
राम भजो विषिया तजो, घर माही घर एक ।
ता घरसूं लागा रहो, छाडो द्वार अनेक ॥
हरि सुमरण हिरदे धरो, विथा न पहुंचे वीर ।

---

१ कदाचितभी २ अनादि अज्ञान ३ यह मुल्क वाणी की समाप्ती में स्तुति की साखीमें भ गी – नतद्भा सयते सूर्यो न शशाको न पावक यद् गत्वा न निवर्तते तद्धाम परम ममेति ।

कायर दखि[1] काने चल्या, लग्या न सुख की सीर ॥
परम पुरुष मैरिपु[2] भजो, सता न[3] व्यापे सोग[4] ।
अवधि घटे प्रासे जुरा, हरि भजतां होय सोय ॥
नांव विसंभर नाथजी, लख चौरासी प्रतिपाल ।
सब काहू की करत है, तातें रामदयाल ॥
मन सम्मन तोसुं कहू, मानू साचइ दीस ।
काल जाल लागे नहीं, सुमरतां जगदीस ॥
ऊच[5] नीच निरभै भये कोई भजो मुरारि ।
भवसागर तिरबो कठिन, हरि नांव उतारे पारि ॥
सूधर तें साखी रची, साखी मांहि कलाम ।
खट दरसण खोजत फिरे, पखा पखा विसराम ॥
काल हरण करता पुरिस, सुमरतो गुण एह ।
चित मांहि चित ले रहो, ज्युं बहोरि न धरिये देह ॥
मन भाखा भजतां भलो, सुरामनम नही सोहि ।
मैं नहि छाडों रामकू, राम न छाडे मोही ॥
बात हाथ रघुनाथ क, सदा साध के साथ ।
पैले अंगि छाडे नहीं, जाकू पकड़ हाथ ॥

1 देख और लख भव भंजन 3 माना या जम की बात व बात 4 संयोग है
६ मी ९—२२

नारायण का नांव की, मैं बलिहारी जांव ।
भृंगा[1] कीट पतंग ज्यूं, दुरे[2]दूसरो नांव ॥

परमानन्द के आसिरे, जाय पड़ जब जीव ।
हरि महरि निजरि देखे, जवे तब जोवसं[3] सीव ॥

सकल वियापी सगिवसे, हरि समथ सिरजण हार ।
साहिब हीतें पाइए, साहब का दीदार ॥

अविनासी आसण अमर, अजरामर नग एक ।
राम दयाते पाइये, हरि सुमरण भाव विवेक ॥

इलम पढे पढी आरबी, च्यारि पढै मुख्य वेद ।
सद गति सुख सबतें अगम, सब कोई करे उमेद ॥

अखिल तुह्मारी बंदगी, बहोत करे बहो भाय ।
अल्ला कृष्ण अरिहन्त कहे, कोई कहे खुदाय ॥

सब कोई चाहे तुजकू, तूँ तो सब ही मांही ।
तुम ही ते तुम पाइये, बन्दे ते कुछ नाहीं ॥

पार ब्रह्म परम दुःख हरण, प्राण तहॉ मन लाय ।
भेद सहत भै रिपु भजो, हरि गाइ जै त्युंगाय ॥

---

१ भौंरा लट २ गीता -९।३०।३१ ३ ईश्वर

महरि कहो मीरां कहो काई कहो अनन्त ।
निराकार निर्गुण कहो, तथा कहो भगवन्त ॥
निरामूल निरपख कहो, कहो निरञ्जर नाँव ।
निरमोहि निरदंद कहो, पा[1]अरपित की पखी आंव ॥
अलख अगम अगगति कहो, कहो निरंजन राम ।
अरत कहो अखिपत[2] कहो, अंत अणी सूं काम ॥
धरती धारण अमर पर, नांम दया धो ध्यान ।
आतम अतरि राखिये, अखी तुमारो ध्यान ॥
अपणी अपणी प्रकृति ले, सबको पढवे पांथ ।
पार न आवै परतां, यह रजा रहमाय ॥
हरि प्रीति दुःख सुख रहत, निगम अगम रस एक ।
हरि ज्यूं का त्यूं देखिये येही बड़ा विवेक ॥

---

१ पूजने योग्य २ निर्लेप

नोट:—स्वामीजीने सच्चे सेवक भाव और नाम रटते हुए संसारी से बदल कर आनन्द रूप हो जाना माना है नाम की उपासना और सब मार्गों से ईश्वर की उपासना का एकी भाव माना है यह इस अंग से ही सिद्ध होता है ।

कहा अतोल का तोलिये, अलख अभेद अछेह ।
ग्यांन ध्यांन मति गति अगम, अजपा राम अछेह ॥
निराकार निरभै निडर, निरामूल निजनाथ ।
भुजा अनन्त[1] लोचन अनन्त, परं न पहुँचे हाथ ॥
जहा तहां हरि देखिये, वार पार मधि नांही ।
सकल वियापी संगि वसे, ताहि छांडि मति जाहि ॥
मोह द्रोह मेंते मनी[2], काम क्रोध भ्रम दूरी ।
मनि उनमनि लागारहे, तहां वसत भर पूरी ॥
चितचंचल निहचल भया, मनके पड़े न राय[3] ।
हरि निर्गुण निरभै मते, जहां तहां समिभाय ॥
हरि चिन्तामणि सवमेंवसे, जांणे विरला कोय ।
रामदया, तब जाणिये, साध कहे यूं होय ॥
गंग जमनि मधि मुकतिफल, सतगुरु दिया वताय ।
मन लोभी लालच पड़्या, तो सुख में रया समाय ॥
अनन्त साध आगें भया, परसि परसि भौपार ।
जन हरिदास सिरके सटे, जहां तहां दीदार ॥

॥ इति नाम निरूपण जोग ग्रन्थ ॥ ४ ॥

---

१ पुरुषसूक्त मन्त्र सहस्रशीर्षा इति २ मन ३ दरार

## ॥ अथ निरञ्जन लीला जोग ग्रन्थ ॥५॥

गाय[1] गाय गावै कहा, गायत्र माँहि अनेक[2] ।
एक गाय हरि दिसि गया, एका परस्या एक ॥

गुर[1] हमसूं ऐसी करी, जैसी गुरसूं होय ।
अगम ठौर आनन्द सदा, पला न पकड़ै कोय ॥

गुरु निरभै चेला निडर, गुरु निराकार सब माँहि ।
चेला तनधरि तहाँ मिल्या, सो तन धरि नावै नाँहि ॥

प्रकट परम गुरु पार ब्रह्म, परमसनेही सोय ।
आप दिखावै आप कूं, करमकिवाड़ी खोय ॥

राखण हारा राखि दे, आप आपसूं हाथि ।
भी फिरि मनवाळें नहीं[4], ऊठी और के साथि ॥

साखिनिवाखिनिरभैकरण, मरम दिया भेदूर ।
परम पुरुष परदुःख हरण, हरि जहाँ तहाँ भरपूर ॥

अरस परस आणंद सदा, यक्ष्या आन सब गोन ।
हरि समर्थ सुख निजरि[5] भरि, कीमति करै सु कौन ॥

---

१ वेदाध्ययन २ विचार ३ क मुण्डकोपनिषद् में १२।४ व १५ यहाँ प्राप्ति निवृत्ति के अधिकारी हैं ४ विघ्न ५ दृष्टि ।

निरगुणका गुण का कहूं, कथिये कहा अकथ ।
अकल तुम्हारे आसिरे, सकलभवन समथ ॥
गंग[1]जमनि मधि एकरस, सुखमें सुरति निवास ।
जोगारंभि लागा रहे, तिरवेणी[2] तटिवास ॥
परापरे परसिध पुरुष, मायारहित अभंग ।
सेवक की सेवा करे, साध तहां परसंग ॥
नांना विधि सुणि सुणि असुणि, बहुबिधि करो विचार ।
जन हरिदास लहि लहि अलहि, हरि अवगति अपरंपार ॥

॥ छंद बेखरी ( द्वयच्चरी ) ॥

त्रिविध ताप सासो न सूल, परमभेद आनन्दमूल ।
उदे अस्त आवे न जाय, सकल विधापि सहजभाय ॥
मोह दोह आसा न पास, वरण विवरजित सु प्रकास ।
काम क्रोध तृष्णा न ताप, ज्ञान ध्यान जोगी न जाप ॥
तात मात सासों न संक, साह वेद रोगी न रंक ।
घट घटा रसना न रीति, ऊंच नीच परसै न प्रीति ॥
निरालंब निरलेप राया, रसण डसण रूप नहीं ताया ।
धरणी गगन समंद न हीर, जल ज्वाला मछी न कीर ॥

१ इडा पिंगलाबीच सुषुम्णा २ प्रयाग

पुरुष नारी भवण न सास, स्वान पान छुदी न भास ।
गुण गीत नाद न्यारा न नेह, हरि पुरुष बाल छोटा न छेह ॥
तेजपुंज निहचल निवास, बाहिर भितरि ज्यूं आकास ।
जन हरिदास मनि सहजिभाय, सकल बियापी रामराय ॥

॥ स्तुति हदय छंद ॥

यतो हरि दूजा न दोसी न भावे, न माया ।
हितहीन चितहीन सुखा न भाया ॥ १ ॥

ज्ञानेन ध्यानेन वरखे न मैखं, अकथेन कायेन रूपे न रेखं ।
सिषहीन साधन सेवा न पूजा, गुरुहीन चेला न एके न दूजा॥
पटहीन पटहीन नटहीन बाजी, नेड़ा न न्यारा न रूपे न राजी।
नादेन बिन्देन सिंधेन गाई, छलहीन बलहीन मारे न खाई ॥
धरती न गिगने न चन्दे न सूरा, सिखराग सिषेन बोछान पूरा।
उपजे न बिनसे न छपे न थावे करुणान क्रोधे न काया न काबी॥
धरहीन वनिता न वस्ती न सूर्य रसिया न रोगी न पापे न पुण्य ।
जपहीन तपहीन कुलहीन लाजे मतिहीन गुणबैन छतिहीन गाजे ॥
मरिहीन मारे न जीवेन औरा, रंगहीन धनहीन काली न गोरा॥
आवे न जावे हीनें वार न पार, वीजे न मक्खेन मीठा न खारं।
बधहीन मुकता न कल्प न हैरं, निर्में न भैहीन सिसरी न जहरं॥

जरणा न जोगी नश्रंछा नवांछी, नरहीन नारी न हीरा न काचे ।
गुण हीन गाथा न मरमै न भेदं, तनहीन त्रासे न कंधहीन छेदं ॥
वपहीन बिनसै न गर्भ न मूलं, मंत्रै न वैरी न संसै न सूलं ।
रिणहीन राजा न सेना न साथी, मुलके न पाया न असही न साथी॥
रांचै न विरचै न रीझै न रोवे, मनहीन मौती न मैला न धोवे ।
रहता न वहता नफूटा न सार, सुखहीन दुख हीन चिन्ता न चारं॥
थितहीन थांने न आसा न पासं, बेठा न चलिहै न देवै नदासं।
सूद्रे न क्षत्रि न विप्रे न वैसे, गिरहीन तरहीन सुरहीन देसै ॥
जरणांन खीजै नकणही नछोही, इंद्री न घातै न मांसे न लोही।
चार पार मति गति अगम, परे न पहुँचे हाथ ।
जन हरीदास सो कोण है, भरे आभ सुं वाथ ॥
मसि कागज पहुँचे नहीं, अगम ठौड है लोय।
जन हरिदास ऐसी कथा, जाणे विरला कोय ॥
जन हरिदास अवगति अगम, जहां आन्ति नहि छोत ।
हम वात तहांकी लिखत है, कर लेखणि बिन दोत[1] ॥

॥ इति निरञ्जन लीला जोगग्रंथ ॥ ५ ॥

---

१ दवात ।

## ॥ अथ साधु प्राप्त जोग ॥ ६ ॥

### ॥ छन्द मोतीदाम ॥

पाँच झटकि उलटा चले, डोरे लागा जाय ।
एक दिहाड़े साधपे, सहजे रहे समाय ॥
आपा का ईश्वर करे, काम क्रोध पुनि छार ।
एक दिहाड़ साधमें, सहजि मिले भरतार ॥
आपेन पठयं, आपेन करणा, निरति लै धारिबा सुरतमूं बोलिबा ।
भ्रमकूं भासिबा, मिथ्या न बोलबा तीनि गुण व्यापवा रविससि भेदिबा ।
परमपद पायबा, नौनाथ नाथिबा सात सागर सोखिबा —
नौसे नदी उलटी चालिबा ॥
प्राण पुरुष पोखिबा, बोतरि छाया न बलिबा ।
दुख सुख मेटिबा, सुर तेतीस तारिबा ॥
अहं मन मारिबा, गगनि चढ़ि गरजिबा ।
अपाह थापिबा, अदृष्टिपिधारिबा इन्द्र उपदेशबा ॥
कोड़ीयं न खेलिबा, हीरा न हारिबा ।
अरधका नेत्र उघाड़िबा, अनरधका पाखिबा ॥
शील सन्तोष की सनाह[1], संगिय पहरिबा ।
सुमरण की साँग[2] लेबा, अगमई चालिबा ॥

---

१ कवच बख्तर जामिरा लिद ।

घरामै अघर दरसिवा, सुखके सिध पैसिवा ।
परम ज्योति पर सिवा, पांच परमोधिवा, मेर चढि वोलिबा ॥
काया गढ़ सोधिवा, मन कूं कंचन ज्यूं तोलिवा ।
सुरति सहजि धरि आणिवा, मान अपमान एक करि जांणिवा॥
काची सरापी खोटा न लेणा, मूंहगे मोलका मन हेरे अवधू सोहंगान देणा ॥
सतगुरु सवदों खेलिवा, [1]कलसमें[2]कूप आणिवा, नीर उलटेगा। पालि सोखेगा, तव परापरै परमभेद जाणिवा ॥
[3]विहंगम उलटेगा,[4] मालेमें आवेगा, वृछकूं ग्रासिवा, परमभेद पावेगा ॥
मैं ते मिटिवा, मेरमें वसुधा रोपिवा, गगनमंडलीकी गुफामें- पेसिवा, धोखेन धोखिवा ॥
मूल कमल दिष्टि रोपिवा, पीठका मिलाप कूं तरसिवा ।
अगमपियाला पीयवा, अलेख पुरस परसिवा ॥
अलेख अथाह ऊंडो अपारं, वसुधा न गगनं ज्वाला न धारं ।
पाणी न पवनं वारै न पारं ॥
चंद्र न सूरं द्यौसे न राति, काया न माया न पूजा न पाती ।
संसै न सोगं न भोगं न रोगं, जोगै न वांणी न जाग्यो न जाणी॥

---

१ नाभिकमल २ आत्मा ३ मन ४ अपने स्थानमें

नमो देव करता मई, परममेशायनमो । अलख थाप्यो-
न आप, अगममेवाय नमो ॥

पार उरवार तिस थाहनाही नमो, मोह ममता नहीं धूपछाही नमो ।
समन्द गिगनां नहि, जाहित जोगं नमो । मर गिरवर नदी-
मोम रोगं नमो ॥

दाया ठाकुर नहीं पायो थोडं नमो । ग्यान नहि ग्यानकी
कस थोडं नमो ॥

जनम अवतारनहि पुरुष वासेनमो, मायबापे नहि नर्सनासेनमो।
ऊठि बैठे नहि जागि सोवे नमो, मादिनहींभेवनहींचिहनहोवेनमो॥
फरसी पर भार नहि रोसरोगंनमो, निकट निरलेपनहि सापसगंनमो।
गहेरगुण रूप गुणातीत साहिनमो, संत मांहे सपतुम माहीनमो ॥
गहरगलतानिकरमोनकापानमो अगम असतानिनिरमदपावानमो ।
अमर असपृश्य वरयंनवासनमो, सकलसिरिसाच भाशानपासंनमो॥
सबदनहीं स्वाद सरबंग साईनमो, करण करतारयें तुमहाई नमो।
वाद बकवाद विटरूप नाईनमो, परम निरूप सरबंग साईनमो॥
खिखिनहि सृष्टिवेपे न दासं नमो, डासनहि मूसनहि नाशनासंनमो॥
अमर अभरा बनमें न आपानमो अखंड करुणामई रामरायनमो।
जन हरिदास अतरि अगोहि, परममेद निरूप ॥

वा हरिसागर अणसरया, ते उलटिन झांकै कूप ।

॥ इति साधु चाल जोग ग्रन्थ ॥६॥

## ॥ अथ अगाध अचिरज जोग ग्रन्थ ॥७॥

गोरख हणुमं भरथरी सुकदेव, सिध सनकादिक सुखसारम् ।
नारद शंकर मुनि ब्रह्मादिक, अगणित साधू परसि भये पारं ॥
चंद्र सूर किया दोय दीपक, करि तारामंडल करितारं ।
अनंत लोक विसपाल विशंभर, सकलसछाया तो सारं ॥
रूप नहि रेख भरम नहि भंजन, जाहि भजो भजि भ्रमजारं ।
वेद कतेब कहे दोय वातो, दोय आगे नर निस्तारं ॥
ग्यान न ध्यान पाप नहि पुनियर, अधर अलेख नहि चखचालं[1]।
भेद अभेद अरीझ अछेदं, सुन्नि सदारसरहतालम् ॥
राज न रीति प्रीति नहि परघत, कलपि न झलके करतारं ।
रमता राम सकलविसव्यापी, निरखि निरखर[2] निरधार ॥
निज निरसिघ अगह,अभि अनतरी, अकल अरूप नहि नृध वालं।
धरणी अकास न समंद,सुमेर, लखचौरासीप्रतिपालम् ॥

---

१ चर्म दृष्टि का अविषय २ निरक्षर

उपजि न बिनसै न जागि न सोवै, आलस नींद न आकारम् ।
पुरुष न नारि करे नहिं क्रीडा, अगम अगोचर ततसारम् ॥
गांव नं ठांव बिघन नहिं वास, सास उसास न नवे द्वारम् ।
पूरण ब्रह्म परम सुख दाता, आस उदास न आधारम् ॥
नौसे नदी बहोतरि छाया, इंद्रियांसन चित च्यारम् ।
पेट न पीठ नैन नहिं नासा, हाथ न पांव न घटधारम् ॥
कोटिन छोटि मुनिन्नहि संकट तेत्रसपुंभि न भुमारम् ।
मेरु अरेल अदेस अलख, आदि अखंडित अप आरम् ॥
वार न पार मुनि नहिं वकता अगह अकह तहां धुनिधारं ।
ऊंच न नीच वरण नहिं अवरण, कहर न व्यापे तस कालम् ॥
अवगति अगम अगेह अभिअन्तरी, नाथ निरंजन निरकार ।
गरजे गगन मगन मन उनमनि, निसदिन दरसै दीदारम् ॥
निज निरलेप सकल जुग करता, सकलसपोस सुख न्यारम् ।
सकल निरंतरि सरम न व्यापे, आनन्द रूप अगम धारम् ॥
दिष्टि न मुष्टि ध्यान नहिं पुष्टि, संकट भव न विचारम् ।
मेह न गेह भोग नहिं रोग अटान जोगी नम नालम् ॥
सीत न धूप मीन नहिं पाणि कीर न वारे किस धासम ।
स्याम न सेत रगत नहिं रेखम्, तरवर मूल न तिसडारम् ॥
मवया न गवया न पिता सहोदर, मोह न द्रोह न परिवारं ।
परम उदार परम निधि निरभै, निज चिन्तामणि चितधारम्॥

अरधन उरध जोग नहि जापं, अजर अजोनि तिसभालम् ।
अगम अथाह परम सुख सागर, नाथ अनाथन प्रतिपालम् ॥
ज्यूं आकास सकल भंजन जल, सबमें दीसे आकारम् ।
हात गह्यां कोइ गहत न आवे, यूं सब घटमैं घट धारम् ॥
निरमै निर्वाण अखिल अविनासी, अवरण वरण न विसतारम्।
दीरघ लघु लोभि खिमां नहि खीजे, हरि निरसिंघ निकटि न्यारम्॥
निरगुण निरधात गात गुणनांही, निज निरमूल सनिज सारम्
जोगन भोग पाप नहि पुनियर, पूत अऊत न परवारम् ॥
वल नहि अवल निरूप निरखिरं, सदा सनेही सुखसारम् ।
निडर निराट विराट अनंत हरि, सब कछु करि सर्वते न्यारम्॥
अधर अरूप अथाह अजूनि, अनंत अमूरति अवजारम् ।
दीन दयाल काल नहि करणा, त्रिवधि न व्यापे ततसारम् ॥
हरि पति प्राण सदासंगि संम्रथ, परसिपरम ततभै पारम् ।
उदै न अस्त आन नहि अटपट, तरवर मूल न डलधारम् ॥
सुभनहि असुभ गिणत नहि अगिणत, भख नहि अभख मधुरखारं।
विरकत नहि अकुलविकुलअभिअन्तरि, तन मनसों मन तहांधारं ॥

---

( नोट ) इस अंगमें—बृहदारण्यकोपनिषद तृतीयाध्यायके अष्टम ब्राह्मण के अष्टममन्त्रोक्त अक्षर ब्रह्मका वर्णन है देखो मंत्र "सहोवाचैतद्वैति" ।

अमृत नहिं महर कहर नहिं करवां, मर नहिं अमर न जीवारम्।
नर नहिं अनर अमर अखरानन्द, है पखि सारां शिर सारम्।।
छल नहिं अछल अचल नहिं चन्चल घर नहिं अघर न ईकारम्।
खालख नहिं क्षोम मरम नहिं तिहिं भ्रम नटवाजी करि नट न्यारम्।।
निरमल निरछोह निरास निरंतरि, निश्चल तहां निरंमन धारम्।
संकट नहिं सरम करम नहिं अकरम, मरम न व्यापे सिस मारम्।।
परम ज्योति परकास परम सुख, अगम अगम सोई उरधारम्।
ऊंच न नीच बरण नहिं अबरण, गतिनहिं अगतिन है कारम्।।
सकलबियापी अखिल[१] अपरंपर, ख्याल नहिं अख्याल न में मारम्।
अगम उदार अपार अखंडित, रटिरसनां रटि र रंकारम्।।
अगह अकह उरते अघआरण,[२] मुनि मंडल म सहज प्रकासा।
जन हरिदास पखि परसि परम सुख, अरिदल जीति अमैपुरि[३] वासा।।

।। इति अगाध अविरल जोग ।। ७ ।।

अथ जोग संग्राम जोग ग्रंथ ।।८।।

जोगी ज्ञान खड्ग करि धारे, मनसा जीति मनोरथ मारे ।
आसपास अरिदल नहिं आय, ता संगि रमे निरंजन राय ।।

---

१ विस्तार २ पापनाशक ३ मोक्षपुरी।

दीरघ रोग वियोग निवारे, कौडि सटे न हीरा हारे।
परधन हरे डरे न हिलोय, आपा डारे तो यूं होय ॥
विषय विष तजौ भजौ हरीवीर, सुनि मंडलमें निरभै नीर।
ऊंच नीच सबसूं समिभाय, मन वच करम नहो मनलाय ॥
नृभै नृवाणा परम सुखसार, आदि अनादि वार नहि पार।
जुरा न व्यापे काल न खाय, हमकूं सतगुरु दिया बताय ॥
अलेख अभेद गहर गुणग्रामी, प्राणनाथ हरि अंतरयामी।
(कोई) ज्ञानी लहे ज्ञान गुण और खीर नीर ज्यू सबही ठोर ॥
भजि भगवन्त असुर अरिमारि, सुनि मंडलमें मढि सवारी।
तांली लगि बैठा मांहिं, गंग जमन जल पीवे नांहि ॥
मोह दोह मैं तें करि दूरि, रमता राम रह्या भरपूरि।
व्यापक अगनि बसै सब मांहिं, गुरु विन गेला लाभ नाहिं ॥
अप्रमाण निधि अगम विचारे, आप तिरे साथि संगी तारे।
पवन पियाला उलटा धरे, भरि भरि पीवे अजरा जर ॥
नाथ निरंजन निरभै जोगी, जुरा न जन्म भोग नहि रोगी।
खरच्या घटे न दीया जाय, सोई वित चितमें रह्या समाय ॥

---

(नोट) स्मरण रहे कि ब्रह्मस्तुति. से लगाकर यहां पर्यन्त अक्षर ब्रह्मका ही वर्णन किया है।

काम न न्यास मीच नहि माया, नट ज्यूं घट मैंनघट धरि आया।
पूरण ब्रह्म परसिपति माप, दुर्भिख पड़े न जम छो दान॥
ग्रह वैरागन विग्रह वियोगी, पाप पुनि परवेसन भोगी।
उलटि सुरति सुनिमैं धारी, तब जाय दरसे देव मुरारी॥
थिर नहीं अथिर अरूप अछाया निरगुणनिराधार निरवरिपाया।
गरजै गगन मगन मन सोइ, हरि कूं भजै सहरि समि होई॥
स्थिरनहीं अस्थिर सरम नहीं सोग, थप नहि विथा वेद नहि रोग।
जहां[1] प्रकटे तहां ऐसी करे, अवरण अगनि विथा अभिचरा।
आस उदास मोह नहि माया, ज्ञान विज्ञान धूप नहि छाया।
भरम विकारी कलसूं खोय, है तो सही सभै मैं कोय॥
संकट नहि सरम नहि भेद, जठरा नहि जुराकथ नहि छेद।
सकल वियापी सबतें दूरि, अनगति जहां तहां भरपूरी॥
छल नहि अछल चित नहीं चाही, घट घट अघट भरम नहि ताहि।
तजि अभिमान भगति यूं गहणा, जागि लागि मन उनमन रहणा॥
डर नहि निडर निर्गुण निजरूम, उठ न अस्त सीत नहि धूप।
घर नहीं अघर पुरुष नहि नारि, परपंच भीति जीति नहि हारि॥

---

१ अर्थात् जहां अशोच रोग शोकादि प्रकट होवे तो योगी को चाहिये कि ध्यानध्यानि ज्ञानाग्निमें प्रवाहकर उनको भस्म करदेवे—

नर हरि भजन अहोनिसी करै, ताहि जालै अगनिन मारया मरे ।
संकट पड्या साथि रघुनाथ, जहां तहां जनके सिर हाथ ॥
उलटा खेलि अपूटा आवे, जैसी भूख तिसा भरिपाँव ।
निरभै निजनांव निरन्तरि रहणा, सापणि[1] डसै न परलै वहणा ॥
अनरथ अनन्त तहां जीव जाय, ताकूं सरप[2] सदा संगिखाय ।
जहर[3] दाढ कंठी लागी दोय, रामभज्यां नर निरविषहोय ॥
वैसि निरन्तरि अलख जगावे, आसण अमर अगम भरपाये ।
भूखा रहे न[4] धापि न खाय, मनसा चलै न परधरि जाय ॥
ब्रह्म[5] अगनिमै काया[6] दहे, मन चंचल निहचिल होयरहे ।
काम क्रोधका भडै जंजीर, परमसिद्ध जहां जालन कीर ॥
वार पार नहि अगम अछेह, धरती वरषे अंबर तेह ।
निर्मल धार अपार अनन्त, ता मुखि लागि रहे सब सन्त ॥
निगम अगम गुरु गम्यमगहोय, पवन निर्लेप अंवर धोय ।
रमता राम निरंजनराय, राखी वसत शाहकूं खाय ॥
पारस उदार अपार अनन्त, अवरण वरण अगहि भगवन्त ।
उलटी गंग जमन मै आण, तोहि पिछाणे ताहि पिछाण ॥

---

१ माया २ ससार व मोह ३ काम क्रोध ४ मिताहारी ५ ज्ञानाग्नि में ६ त्यागादि इन्द्रियग्राम व सूक्ष्म शरीर लिङ्गदेह ।

गृह बन नहि तहां मठ छाय, पंकनालिय अमृतरसम्याय ।
ग्यान गुफामें आरम करे, जोगी जीवे जोरों मरे ॥
भौ सागर डर अनन्त अपार, ता तिरबे को यहै विचार ।
मनविष छाड़ि विसंभरभजो काम क्रोध विषया विषतजो ॥
परमानन्द परम सुखसार, ताहि भजो भजि तजो विकार ।
जांमण मरणां जुरां भयरणां,(भव)भरि साहिब मारगि सरचरणां॥
काई सूरवीर का काम, कायर कथ कहे नहि राम ।
मदि सगराम माथ घल्सिहे, परदम जीति परम गति लहे ॥
जगमें यहै जोग संग्राम, कोई करो आपणा काम ।
ए पाशा चोपड़ि ए सारी, अबकै जीति भाई भावे हारि ॥
जन हरिदास कहै मतएह, बड़ निध हाथि चढी नरदेह ।
गोविन्द[1] भजो रामकी आस, बहोड़ि न लाग जमका वांस ॥

॥ इति जोग संग्राम जोग ग्रन्थ ॥ ८ ॥

## ॥ अथ अष्टपदी जोग ग्रन्थ ॥ ६ ॥

हमोरू भय गतिकूं हेरे, जाता मनकूं उलटा फेरे ।
महादेवका मता पिछाणो, मनदई तिसामू उलटा आणो॥

---

[1] यहांतक आत्मसंयम योग के अधिकारी प्रति उपदेश है ।

मनसा देवी सबकूं खावे, हमकूं मनसा सांच बतावे ।
हम जोगी जोग जुगति गमिजांणे, बहती नदी अपूठी आणे ॥
पवन गोटिका पारा बांधे, उलटी सुरति गगनकूं सौधे ।
काम क्रोधका मूल[1] उपारे, गगन मंडलमें आसण धारे ॥
अगम पियाला भरि भरि पीवे, अरूप रूप विचारत जीवे ।
हरि सुख सिंधु तहां भय नाही, हरिजन हंस बसे ता मांही ॥
परम ज्योति अंतरि मनराखे, हरि हीरा बिणि चूणि न भाखे ।
जन हरिदास निरखिये निज, मनकी ठोर उठाय ॥
सुरति सुलटि उलटा चढे, तो अगम तहां चलिजाय ।
लहिये अगम निगमते आगे, अंतरी नींद नेत जब जागे ॥
ससिहर[2] कै घरि सूर समावे, उलटि कवल कवलापति पावे ।
सब मै राम दूरि हरिनाही, ज्यूं ज्वाला काष्ट घृतपे मांही ॥
यहु निज सुख जाग्या सो जाणे, सूता अरथ कहां सु आंणे ।
अगम अथाह वार नहि पारं, ताका कैसा भेद विचारम् ।
बरण वियोग रोग नहि जांणा, परमभेद ऐसा असथांणा ॥
सकल समीपी सकल सुहावा, तीनि लोक त्रिभुवन पनिरावा ।
सुखमनि उलटि गगनमें आंणी, सुनि मंडलमें खेले प्राणी ॥
सुखमनि परम सिखरमें झूले, तारुति कवल केतुकी[3] फूले ।
नाभि सरोवर निज जल नेरा, मन मतवाला झूले मेरा ॥

---

[1] रजोगुण [2] चन्द्रमा [3] केतकी

भागा भरम भेद भय पाषा, तब मन उलटि सहज घरि आया।
गगन गरजि बिरखा भई, छीलर भया निवांण ॥
जन हरिदास हरि सिंधमें, खेले साध सुजांण ।
सो अगाभे जोगी नाथ अनन्ता, भय न जुरा पांच नहिं तंता ॥
सकल समीपि अकरत निजनांमी, आस अधार गहे गुणग्रामी।
आदि अंसि हरिकी हरि जांणे, सुनिरूप बहु बांणिक बांणे ॥
आदि न अंत लहे कोई भेवा, सुरति सबहि परम सुखलेवा।
जुरा न जन्म आय नहिं जाया, अगम अथाह थाह के पाया ॥
मेरू समंद निरख मत परिहैं, वार न पार कहां थूं तिरहे ।
पंखी उलटि गगन कूं ध्यावे, ऊंचा अगम कोण गम पावे ॥
ऐसा पांव भिक्षा मनि मेले, सो परम जोतिका परमें खेले।
परम भेद भागा सभु, हरि परम सनेही सोय ।
अब मन तहां बिलंबिया सो उलटिन पूठा होय ॥
तिस नांव निरंजन अवगति राया परम उदार परम सुखछाया ॥
तर बर अकल अगम फलहूवा पंषा[1] चोल रहे तहां सूवा ।
कामी काग बहां नहीं आवे, आसा कीचि उलटि तहां जावे ॥
सकल समीपि अकल निजपावा, अबरण बरण भिनाहि न भावा।
सबई एक रेक क्या गावा, दुख पाप ते करम अपारा ॥
करम अपाय बहुत दुःख पावे, षटपा[?] दिसावरि खोटा खावे।
खोटा खाय मूल मति हारे, रखेन[2] पूहिसि कलके गारे ॥

---

1 मास्तावम अमा हुआ 2 अग्नि

कुल करतूति कहांलो करिहौ, जामि जामि जामू फिरि मरिहौ।
परपंच प्रीति मोह नहि दोहा, सरणि उधार परमसुख सोहा ॥
हरिस फसका गहर गंभोर, नहि सो खीर नहीं सो नीरम् ।
निरभे निरगुण निज निरकारं, मीठा नहि नहि सो खारम् ॥
तिस परवार पिता नहि माया, ना ग्रहि करे न काहूं जाया ।
आदि अंतथा उपजि न आया, जो उपज्या सो सहजि विलाया॥
सहजी विलाया ते सति नाही, ऐसे समझि देखि मन मांहीं ॥६
नहि आवे नहि जायगा, आवे जापस और ।
निराकार निजरूप है, सो व्यापि रहा सव ठौर ॥
तहॉ सीत न धूप गांव नहि ठाम, परम सनेही मन विसराम ।
दिष्टि अदृष्टि भेद अभेदं, तरवर डाल मूल नहि छेदम् ॥
अंजर अरील आस नहि पासं, उत्पत्ति खपति नांव नहि नासं ।
व्यापक ब्रह्म मोह नहि माया, वेहदि पड़चा भेद भलपाया ॥
प्रकट गुपत गुपत गोपाल, शंकर इष्ट काल का कालं ।
अगम अरूप श्रंस नहि सोगं, नाम निरत्तर[1] भोग न रोगं ॥
हीर हेम वार नहि पारम्, समंद गगन नहि भेद विचारम् ।
मूल अमूल करम नहिं काया, अंतरि अगेह परम सुखपाया ॥

---

1 निरन्तर

सकल समीपी सकल सुख, सकल भवन पतिराय ।
अब मन तहाँ बिलंबिया, सो सुखमें रह्या समाय ॥
या औसर हरि का होमरहिये, भवर रम्या सो भूधर कहिए ।
नांव बिसंभर बिश्वपति राया, पूरण ब्रह्म सरसि पवि पाया ।
करता करण चरण चितधारं, दामणि दिपै जोति अपारम् ।
निम निरलेप निकटि निराकारं, अगम अलेखित अगम अपारं॥
ससि प्रकास्या तिमिर बिलाया, मनमगन भया परमसुख पाया।
देवाधिदेव तहां मनि धरिहूँ, मन गहि पवन पाइ मतकरिहूँ॥
हरि निरसिध निकुल निरधारं, अंतरि निरन्तरि निकटिनिन्यारं॥
निधपाई[१] निरये भया, निधि परम सनेही राम ॥
माखी नांहि पसि करि, मन पाया बिसराम ।
गहि गुरग्यान अगम कूं ध्यावे, अगम अथाह थाह कोइ पावे ॥
घटि घटि अघट सकल घटिसाई, गुरगम तास लहे धन कांई ।
घमदा लेसि सहज घरि आवे, सुनिमें ध्यान तहां मन लावे ॥
अगगति अगम अगम गम कीया, नौझर पमटि गगन रसपीया ॥
ता रसि मुनिजन रया समाय, ता रसि मनि उमटि न आप ॥
माया गलि मिटिया अभिमान अब हम जाणिया आन सुजान ।
दरिया रूप धार नहिपारं, तामें मछा माया हमारं ॥
काल न जाम नहीं म नेरा, झूले न खेले मांभ बसेरा ॥

---

१ पारधीसर १ प्राप्य वस्तु सच्चिदा राम ।

सहिजि पियाला परम सुख, भरि भरि पीवें प्राण ।
आत्म अंतरि देखिये, अवगति का अहनांण ॥
सो परमेश्वर प्रथमी प्रतिपालै, करम विपाक हरण अघजालं।
पार ब्रह्म चरणां चित्त धरिहूं, हरि पति छाडि औ नहि वरिहूँ॥
तात न सीत नहीं सो खारं, जुरा हरण जगदीश जुहारम् ।
गुणग्राही गोविंद गुण गावा, भजि भजि राम परम पद पावा॥
परम सिंध मैं प्राणी डारं, उनमनि लागा प्रेम वन्धारं ।
आत्म परमातममूं मेलो, परमहंस मूं दिलि मिलि खेलो ॥
परम जोति आचार विचारं, परम सुन्नि मिलि प्राण उधारं ।
जन हरिदास हरि अगम है, अथह घन[1] न थाप्यो जाय ।
तहां नामदास कवीरसा, केता रह्या समाय ॥

॥ इति अष्टपदी जोग ग्रन्थ ॥ ६ ॥

## ॥ अथ वंदना जोग ग्रन्थः ॥ १० ॥

नमो नमो पर ब्रह्म परमगुरु नमस्कारं, आत्मा अभ्यास, परमात्मा-प्राण नाथ, परम पुरुष, निरंजन निराकार, निरामय, निर-विकार, निराधार अविनाशी, निराधार, एकंकार, अपरंपार उदार, पारब्रह्म, करणहार करतार जगतगुरु, अंतरजामी

1 मर्याद ।

अजन्मा सर्व मायारु हार्रा अजपा जाप, ब्रह्म अगनि अकाश, अनेक असाध रोग जारणहार, अलिप अछिप निरालंब, निरलेप, निरदंद, निग्मूल निरसंघ, परम जोग, परम मोग, परमगति, निर्गुण ब्रह्म, परममति, परमज्ञान, परमध्यान, परमतेज, परम जोति, परम धाम, परम विसरांम अधर अमर, अहस-अमर, अतिर, अथिर, असिर, अपार असार, अधर मीठा मधुर अरंग अभंग, निर्भग, निमोह निछोह, निमोग निभोग, निकवि, निरोग, संमोग बिमोग न ससो भरि सोग, दुख न होसी न आवेनजाया, जनम न जीवे न माया न छाया न, जागे न सोवे न, भूखा न धाया ऊठे न बेसे न, राजेन कोपेन, जपहीन, तपहीन, ध्यानेन रोषे इन्द्री न तवहीन, गावन पाव, बनिता न सुवहीन, जनेंषु न धार्व ॥ दोहा ॥

असल पुरुष की आठों पहर, करे बंदना कोय ।
(जन हरिदास) काल बांधा लागे नहीं, हरिभजि निर्मल होय ॥
मनि उनमनि लागा रहे, कहा सन्ध्या कहा भात ।
जन हरिदास वा साधकू, जम करि सके न घात ॥
सिध साधक की बंदना, ग्यान ध्यान धरि देख ।
(जन हरिदास) एक अमर फल करि पढ्या अपर पार अलेख॥

॥ इति बंदना ॥ १०

## ॥ अथ निराकार वन्दना ॥ ११ ॥

नमो नमो परब्रह्म, परम गुरु आतम अभ्यास, परमात्मा अलो-कन, आनन्द परमानन्द, सिध साधक नमसकार, नमो नमो रमता राम, नारायण निरसिध, सकल निरन्तरि नरहरि, निरबांण निरविग्रह, नमो नमो निरामय, निरविकार स्वयं ब्रह्म सकल वियापी, निरंजन निराकार, जन हरिदास वन्दते एकं कार, अविनासी अपरंपार उदार ॥

॥ इति वन्दना ॥ ११ ॥

## ॥ अथ निर्पखमूल जोग ग्रन्थः ॥ १२ ॥

गुरु सिखसू समझाय करि, भजन बताया राम ।
या सेवा या बंदगी, यहु आरम्भ यहु काम ॥
झूठा सुख ससार का, कलई का[1] सा रग ।
होड़ा होडी पड़त है, तायें जीव पतंग ॥
काहे कूं पर दुःख सहे, दूरि पड़ेगा जाय ।
मनिषा जन्म अनूप है, मान सके तो (हरि गुण) गाय ॥

---

१ कलई जोकि धातुके बरतनों पर लगाई जातीहै

काम क्रोध तृष्णा तजो, त्रिविधताप गुण देह ।
साँई का सुमरण करो, परम समीप[1] एह ॥
मन अपणाम् कहत है, अपणा ज्ञान विचार ।
गोविन्द भजि भरमें कहा, पसि मसि मूढ़ धार ॥
विष पीवे अमृत कहे, कनक कटोरा माँहि ।
या मरबे की सौंज है, पीवे सो जीवे नाँहि ॥
निसबासर[2] आमे जुरा, मन सोवै कहाँ गँवार ।
आलस तजि मैं ते मनी, भजि रामनाम ततसार ॥
पाँचो इन्द्री फेरि करि, सुरति सबदि घर धारि ।
अनन्त साध आये चल्या, सोई रहा सँभारि ॥
मोह द्रोह की अगनि सुनि लागत है जीव जाय ।
असत जगत भरमत फिरत यूँही गया बिलाय ॥
सूता सरबस जात है, जागि र करो विचार ।
हरि परम सनेही परम सुख, अगमअपार नहीं पार ॥
जागी जागे जग सोप, मोह महलमें आय ।
मोह[3] महलमें सरप है जब साथे तब खाय ॥
सोवण का सुख और है, जागणका सुख और ।
जब जाग्या तब एकरस, तहाँ साधों की ठौर ॥

---

१ नजदीक २ रातदिन । ३ स्वनि विषम ब्रह्माण

जी वे जोगी जागे सदा, कबहूं सोवन जाय ।
यहि आरंभि लागा रहो, धुनिमें ध्यान लगाय ॥
माया के रस रसिक है, बात कहत हैं दोय ।
राम रसायण अजब है, पीवे रसिया होय ॥
कहूँ स्वामी कहूँ सेवगी, माया ही परमूंठि ।
लड़त जुड़त यूंही करत, गया किताहि ऊठि ॥
[1]मरकट का कर कब गह्या, मूंठि दई फल मांही ।
मूंठी छाड्यो छूटी है, तौ घरि घरि नाचै नांही ॥
[2]कुँजर के भै मैं डरूं, सो डर सह्या न जाय ।
काम हेत परबासि पड्या, वेड़ी लागी पाय ॥
काहूं के रस रहतिका[3], काहूं के रस काम ।
काहूं के रस जोगका, हरिजन के रसराम ॥
काहूं के रस ज्ञानका[4], काहूं के रसनाद[5] ।
काहूं के रस भांमणी, काहूं के रस बाद[6] ॥
काहूं के रस मान का, काहूं के रस भेख ।
काहूं के रस वैरता, सदा निरन्तरि रेख ॥

---

१ तग मुह घड़े में फल डाल कर जगल में रखा जावे उसमें, से बं
मुट्ठी से फल निकालने का पयत्न करे यदि छोडे तो छूटे, नही तो बन्धनहो
२ हाती के पकड़ने के लिये कृत्रिम हथनी जगलमें खड़ी की जातीहै
३ समाज समूह के नियम ४ चातुर्य्य कला ५ गायन ६ शास्त्रा

कोयला जलि काला भया, करोरि कसोटी न्यारि ।
अगनि दिवति पर जले, कसर[1] रही कछुमांहि ॥
कसर ज्योंनि जहाँ तहाँ बसे, जानों बिरला कोय ।
संध्या मांहै सुरग ज्यूं कंस न्यारा होय ॥
जिनसूं हरि कृपा करी, अपणो संगि लगाय ।
तिनके अन्तरि हरि बसे, हरि बिन कछु न सुहाय ॥
तन मांही तीरथ भला तहाँ मन निर्मल होय ।
पांचू इन्द्री फेरि करि, कूर्म बिरला कोय ॥
काया मांही कमल दल, तहाँ बस करतार ।
अपरचा बरखा अकल अगह, अगमअपार नहिं पार ॥
काया मांही कमल दल, तहाँ बस भगवन्त ।
जन हरिदास खेले तहाँ, कोई कोई बिरला सन्त ॥
पवन पलटी निरमे भया, गगनि पहुँता जाय ।
काल चोट चूक नहीं, अन्ति पड़ [3]भो जाइ ॥

---

१ इत्यादि उपरोक्त भाग और प्रतिलिपि के पूर्ण योग नहीं ।
२ उपरोक्त सम्पूर्ण केवल साथ कर । ईश्वर भक्त होकर रहने वाला ही पूर्ण अधिकारी जब होता है तभी पर हरि कृपा होती है । ३ मिथ्या

[1]धर्म नेम तीरथ वरत, अट पट पूजा मान[2] ।
जोग जिग तपस्या तुला, एजनकै जदे रस मांन ॥

दिष्टिरूप[3] दिसै जिको, एक शब्द[4] विसतार ।
ऊंच नीच अवरण वरण, मैं तै मोह विकार ॥

कहूं अमृत कहूं कहूं जहर, कहूं नाहर कहूं गाय ।
कहुं मारे कहुं मारिए, कहुं पीजे कहुं खाय ॥

कहुं हिंदु कहुं घटि तुरक, बाल वृद्ध कहुं कैद ।
कहूं नारी कहुं वटि पुरुष, कहूं रोगी कहूं वैद ॥

कहूं शूकर कहु श्वान मति, मोरमृध[5] उर काग ।
कहूं जोगी कहुं भोगिया, कहु रोषे कहुं राग ॥

शूद्र वैश्य चात्री विपर, कहुं मछली कहुं नीर ।
कहूं निरभै निर वैरता, कहु जाली कहुं कीर ॥

हैवर[6] खर कुंजर गहेर, कहूं कायर कहुं सूर ।
कहुं राजा होय रिणमें मड़्या, चहुं दिशि वाजे तूर ॥

---

१ भागवत ७ स्कन्ध ८ ध्या० श्लो० ५०–५१ नालंद्विजत्वं देवत्व मृषित्वंवाऽसुरात्मजा प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्त न बहुज्ञता ५१ न दान न तपा नेज्या न शौच न व्रता नि च प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम५२॥
२ अन्यदेव पूजा ३ दृश्यरूप जगत् ४ सदेव सौम्येदमग्रमासीत् ५ मुर्गा ६ घोड़ा

सीत उपन बिरला कहूं, अरु चेतन वहो आर्ति ।
कहुं दिन कर भैंवर भैंवर[1], कहु ससि हरे कहुं राति ॥
करामाति दे ले कहूं, कहुं पेगम्बर कहुं पीर ।
गुप्त प्रकट विपरीत फिरत, करि दीरघ सुक्षम सरीर ॥
अष्टसिद्धि नवनिधि शुभ अशुभ, कहुं कंचन कहुं काच ।
कहुं धीरजि हरि ध्यानमें, कहुं विकलप विषवाच[2] ॥
अरस परस अगम सुगम, सिधे साध गहि ठौर ।
राम भजन सुख अगमहै, पे संत[3] ऊभी दौर ॥
धर अधर तारा तिमिर गिर सर समन्द अपार ।
कहुं दाता कहुं सौंसिले, कहु मोटा कहु खार ॥
शब्द शब्द पैनें चले, शब्द शब्द कूं खाय ।
[4]अशब्द शब्द कूं पोषदे, शब्दै शब्द समाय ॥
दोय शब्द दीसे दुरसि, एक कहे सो होय ।
अक्षर[5] शब्द अपगति[6] मिले, सिपरदस[7] दिसंगोय ॥

---

१ यहाँ अर्क पाठ भी है २ यहाँ विपरीत पाठ भी है ३ गीता ७—२८ —७—२९ ४ इसपर गीता ७–२४ अथवा तत्त्वमसि निर्विशेषत्व अथवा अनुमतिका ब्रह्मा पवमिरेतस्य इत्यादि सेवक प्रमाणित होते हैं । ५ चेतना मोक्ष ६ परमात्मा में ७ प्रभृति स्वात्माराम प्रति

वेद शवद[1] का भेद है, ब्रह्म सवद सुख और ।
ब्रह्म [2] सवद पें व्रेद की, कहो कहांलो दौर ॥
वेद [3]सवद की मूठि मन, तहां जहां चसजाय ।
अगम सवद सूं मन मिले, तो अट प्ट कछू न सुहाय ॥
[4]सपत पुरी भरमत फिरे, नो ऊपर भ्रम और ।
राधा[5]रस गोपी[6] चिरत, यहै वेद की दौर ॥
अघट [7]कहतहै घटघरचा, घट[8]धर अघट न होय ।
वेद कथन सठ समझि मन, इष्ट कहत है दोय ॥
दुबध्या दिलतै दूरि करि, यहै जांण जीवमांही ।
मया का रंग अनन्त है, परमेसुर दोय नांही ॥
साध सुमरि [9] सद्गतिभया, परापरं पति एक ।
परमेसुर दोय कहत है, मन अपणा की टेक ॥
मन सज्जन तोमूं कहूं, समझि करो विचार ।
यहु कछु उद बुदि देखिये, दोय कहे करतार ॥

---

१ अस्पमहतो मूतस्य निश्वसित मेतद्यदृग्वेदी यजुर्वेद सामवेद. इतिश्रुतेः २ यतों वाचो निवर्तते अप्राप्यमनसा सहेति ३ भाग० स्क० ४–२९ ध्या, श्लो० ४४ अथानिवाचस्पतय स्तथो त्रिया समाधिभि पश्यन्तोपि न पश्यति पश्यत परमेश्वर ४४ । ४ शब्दब्रह्मणि दुष्या ेचरत उरु विस्तरे मन्त्र लिंगर्व्य घच्छिन्ने भजतो नविदु. पर ॥४५॥ ५ यज्ञों द्वारा सिद्धियों की प्राप्ति ६ परोक्षवाद कहना २.१० ११–ऽध्या० २६–८८ ७ गी० अ० ६–११ अव-जानन्ति मी० ८ पचभौतिक देह १२ गी० ४–६-७-८ ९ गी० ९-२२

भगति देति हरि मधुकरधा, भरम करण कूं दूरि ।
करता सकल कभरमथों, भरम रचा भरपूरि ॥
यह दैत्य दुनियां यहै, मारे खोस खाहि ।
समय की बाजी रची, घटे बध कछु नांही ॥
बाजी स बाजी रमे, करि करि नानारूप ।
कहूं भासे कहूं भासिए सदर सदा कहूं धूप ॥
[1]नहीं हिन्दुसूं वैरता, नहिं मुसलमानसू प्रीति ।
सब कछु करि सपरौं भमम, या साहिब की रीति ॥
तुरक कहे मक्का भला, महां साहिब की ठौर ।
हिन्दू आय मथुरा बस्या, यही हिंदु की दौर ॥
हिन्दू थापे देहुरा, मुसलमान मसीति ।
पखा पखी जग पचत है, यही दुहुं की रीति ॥
मुसलमान रोजा करे, हिन्दू ग्यारसी मान ।
मैं बड़ मैं बड़ होत है यहे बड़ा हैरान ॥
हिन्दू चाले तीरथां, तुरक पीर तहाँ जाहि ।
[2]दिल मांही दीदार था, गोता मान्या नांही ॥

---

१ पी ६–२६ २ भी ३–१७।

(नोट) ५० की साखी से ५६ तक "मिदमामासिव किन्नन" श्रुति के भाव को प्रगट किया है ।

जिबह [1]किया बकरी भिस्ती, लिखीकते वा मांहि ।
तो अपणा गलाकटायकरि, भिस्ति बमो क्यों नांहि ॥
अपणे करि कांटा चुभै, तब काढ्यां ही सुख होय ।
यूं साहिब सूं [2]बेरांन हि, बात कहत है दोय ॥
काजी का बेटा मरे, तब काजी के उरि पीर ।
यूं परमेसर सबका पिता, भला न मानें बीर ॥
गाय भिस्त मुरगी भिस्त, जिबह कियां जीव और ।
ये दो जिणमें दुरतहै, नहीं भिस्ति मैं ठौर ॥
मनिख मरे तब जालिये, जालीर न्हावण जांहि ।
हिन्दू की करणी कहीं, जै भारी मड़ा को खांहि ॥
भैरु आगे बाकरा, भैंसा मारे जाय ।
चबंड चिंता डाकणी, मांहै बेठी खाय ॥
पखापखि मन छाडिए, निरपख होय सुख देख ।
निरपख सुं निरपख मिले, तो पूरण ब्रह्म अलेख ॥
पखापखी सबको मिले, नीरपख मिल्या न जाय ।
जो कबहूं निरपख मिले, तो निरपख पख कूं खाय ॥
नही ऊपजे नहीं खपे, नहि आवे नहीं जाय ।
सब कछुकरि सबते अगम, जहां तहां रहा समाय ॥

---

१ मारना २ बेरान प्रति कूल ।

मन सबका असवार है, पैंडा करै अनेक ।
मन ऊपरि असवार है, विरला कोई एक ॥
जन हरिदास मैदानमें, मन आपण्यां दौड़ाय ।
दसूं दिशा दे फेरि करि, अगम तहां ले जाय ॥
जन हरिदास मन मांछली माया का जल मांहि ।
जबही बिछुरै तब मरै, तातैं बिछुरै नांहि ॥
कोई वासो नां रहै, या सो रह्या समाय ।
जन हरिदास भाई मरे, तहां रहो लौ लाय ॥

॥ इति निरपख मूल जोग ग्रन्थः ॥१२॥

॥ अथ प्राण प्रसिद्धि परमात्मा पूजा ॥१३॥

जोगू जोगी जुगते न्यारा, [1]घटन बध सदा ज्यूं का त्यूं ।
रहै सकलते न्यारा ॥१॥
पहली क्षुधा न पीड़ै जिनसैं, लागि तहां लिलि रहिए ।
जांमण मरण जुरा नै सम दैरु, काहूं सिरि सहिए ॥२॥

[1] बढ़ भाव विकारसे रहित ।

तरवर संसार विपिध[1]फललागा, जीव तहां सव जीवे[2] ।
[3]ऊपजे खपे वसे तांहीमे, मगन हुवा रस पीवे ॥३॥
[4]कहीं एकि हा कोंगा या माने, यहु रस सव कूं भावे ।
एक आघ सांपणी का सुत ज्यूं, अदिष्टि होय सुख पावे ॥४॥
यहु सुख तजै न वा सुखलागे, जागति जाय न जांणी ।
पहुँचे कोण दूरि वेगमपुर, बीचि गहर [5]गुण पांणी॥५॥
[6]सवद सुणे सुणि साच पिछाणे, जोग भूल गहिजागे ।
उलटा खेलि परमसुख पहुँचे, माया बाण न लागे ॥६॥
निरपप वस्त निजरि में राखे, पख दोन्यूं पर खोवे ।
सरमसिला अरि उग्ते षेसैं, अग्रला उदरि न सोवे ॥७॥
काया करम भरम करि कोने, निज विसरांम न लहिए ।
आतम के असथांनि न पहुँचे, तव लग परले वहिए ॥८॥
पख की पामी पचतहै सब को, सत पुरुषां सुख दूजा ।
या हरिभेख सदा तन मृतक, उरि आदर की पूजा ॥९॥

---

१ विधि निषेधरूप पाप पुण्यात्मक २ मुण्डकोपनिषद्दि तृतीय मुण्डके प्रथम खडे प्रथमोमत्र द्वासुपर्णाविति ३ प्रारब्धवंश ४मुण्ड कोपनिषद तृ० मु० प्रथम खड ? मत्र ५ इष्टानिष्टप्राप्तिरूप ६ मुण्डकोपनिषद तृ० मु० प्रथम खड मंत्र ३ ।

नर औतार जावही हरि बिना, चली सेज न सोय ।
यहां बातों काठ पार न पहुता, साध कहे सब कोय ॥१०॥
यह सुख छाडि और सुख मागे बात अगम की कहिए ।
है हरि अगम निगमतें न्यारा, गुरु गम व्है तो लहिए ॥११॥
जैसा कहे रहे भी तैसे, चितमें मरम न भाखे ।
पैदा करे मरे नही मान्या, पंथ पुरातन आखे ॥१२॥
पहुँचे बिना न बिपवलि[१] पैसे, मन तजि वस्त बिचारे ।
निरभै नाथ भजै मजि निरभै, बाजी दे खेलि न हारे ॥१३॥
बसि दरबारि मरसि मां हठकरि अगम वहां मन दीजे ।
राम बिसारि सोय मां हरिभजि अवधि घटे तन छीजे ॥१४॥
अंतरि और कहे कछु औरे, अरथ औरही पूछे ।
सबद कहे ताहि राह न चाले, साध सबद में सूझे ॥१५॥
ना दु ख गहे न सुख कूं सोचे, अगम अरथ उरिधारे ।
व्हे गुरज्ञान मोह तजि मैवे काम क्रोध रिपु मारे ॥१६॥
निरभैवस्त सकल बिसब्यापी, घट[२] तजि अघट बिचारे ।
जोगी मरे न औरा बांधे, हीरा जनम न हारे ॥१७॥

१ बिषयवन २ देहत्व याद छोड़कर।

सतगुरु सबद आथि संगि साथी, झूठ भरम न लागे ।
नौ खंड[1] होमि पलटि मन उनमनि, नांव निडर लै जागै ॥१८॥
आसण अचल मेरगिर ऊपरि, मन हमति गई बांधा ।
उलटा चल्यास बोडि पहूंता, पैंडे पार न लाधा ॥१९॥
सासि उसासि अगम अरि जीत्या, जागि परम गुरु पाया ।
अधर अरेख अथाइ अखंडित, नाव निरंजन राया ॥२०॥
वसुधा[2] जीति वास हम कीया, खबरी खालिक की जांणी ।
अरथ विचारि अंक भरि उलटा, सुखमै सुरति समांणी ॥२१॥
जोगी जागा सोवे निशदिन, ज्ञान गुफामें आया ।
भेरुं कीली कसर सब काढी, सूता वीर जगाया ॥२२॥
ज्ञान गुदड़ि सहजि निरालंब, पिसण पवन गहि बाधा ।
गंग जमन[3] मधि आसण ओधू, चैले सतगुरु लाधा ॥२३॥
अखिल अछेह निरूप निडरि घर, फेरि तहां मन लाया ।
[4]नलिनी का सूवा की नांई, आपे आप बंधाया ॥२४॥

---

१ नाडी चक्र शुद्ध करके ह० यो० दीपिकाया द्वि० उपदेशे ४१ मारुते मध्य सचारे मन स्थैर्यं प्रजायते यो मन सुस्थिरो भाव सैषा वस्था मनोन्मनी ४० २ चितवृत्तिरूपा विचिभनामा पचभूमिका ३ इडा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी विज्ञेया तद्योर्मध्ये सुषुम्णा तु सरस्वती त्रिवेणी सगमो यत्र तीर्थराज स उच्यते तस्मिंस्तीर्थे वर स्नात्वा स याप पै. प्रमुच्यते
४ भ्रमर की नाई वाशना वश

ना विष गरे न अमृत छाके, पाप पुनि दोउ दूजा ।
साच परम अन्तर नहीं पावे, तो भवगति की पूजा ॥२५॥
आलस करै न आरंभि लावे, ताकू जमराय न मारे ।
अजरा धरै अरीक रिझावे, जीतब है आपे न हारे ॥२६॥
निरभै भया गया डर डरता, सांच सबद में पाया ।
चेला ले नाथ गुफामें बैठा, तहां कछु अलख लखाया ॥२७॥
[1]चंद सूर सम सुरति सहज घर, परम अनूपा भाया ।
परम जोति परकास परम सुख तहां हमारा वासा ॥२८॥
मन निहिचल निरभै सुखसागर रहे सबनते न्यारा ।
गैंगा मूल अमूल अधर धर, तहां पंडित रचा बिचारा ॥२९॥
जहां जहां परख तहां वह अंजन, कालफन्द की छाया ।
अनहद अगम सुगम मन समझ्या, उनही में तत पाया ॥३०॥
सत रज तम गुण रचा रहत रस, तहां बिलम्बा जीवा ।
चेला पांच परसता आका, रस ही में रस पाया ॥३१॥
कहू न सुन न सुखदे सुखपावे, अगम सहर है कोई ।
तहां बसे तारि दाया न लावे, पहुंचे बिरला कोई ॥३२॥

---

१ हठयोग प्रदीपिका चतुर्थोपदेशे श्लो ७६-७७

(नोट) इस अभ्यास का खुलासा अर्थ जानना हो तो हठयोग प्रदीपिका में देखो विस्तार भयसे नहीं लिखा ।

मा मनतें मन और अगम है, सकल विथापी सारा ।
परम सुनि परवाण न कोई, निज विश्राम हमारा ॥३३॥
साध सबदि सहज धरि राखे, बंक नालि रस पीवै ।
इला पिंगला सुखिमनि[1] समिकरि, परचे लागा जीवै ॥३४॥
रामदयाल देव करुणा मय, परम तत पति पूरा ।
अरसि परसि आनन्द अभि अंतरि, बाजै अनहद तूरा ॥३५॥
परमजोति परकास परम सुख, आतम अंतरि लहिये ।
करम कपाट भरम करि कांने[2], अगम तहों मिलि रहिये॥३६॥
आसण छाडि परां चिन उड़िया, अलख विरख घर पाया ।
रस फल खाय बहोड़ि मन रसिया, रसही मांही समाया ॥३७॥
उलटा पवन आकासि पहुंता, अकरत हां करदिया ।
परम उदार अपार अखंडित, बास तहों हम कीया॥३८॥
आसा मेटि निरास निरन्तरि, गुरु गमि गेला लाधा ।
बादल विन बिच बीज व्योममें चमके, घन वरिषा बन दाधा॥३९॥
इन्द्री मन प्राण अरथके आसणि, अगम तहां फिरि लाया ।
धुनि मै ध्यान परसि पद निर भै, भरम गया भै भागा ॥४०॥
मन निहचल निराधार निरन्तरि, मच्छ मूआ विन पांणी ।
पख दोऊ परला में बूडा, धुनिमें धजा समाणी ॥४१॥

---

१ त्रिवेणी त्रिपुटी २ दूर करके ।

(नोट) इस अंगका अर्थ हठ योगप्रदीपिका में देखो ।

आसण अनत फिरे ता फेरया, गावे था सो गाया ।
पारस परसि भया मन कंचन, निज बिसराम समाया ॥४२॥
जोग न भोग छुरा मैं सीसा, भूखि पख्या भै नांही ।
सुनि मंडल में सकल बियापी, प्राण बसै ता मांही ॥४३॥
संकट नहि भ्रम कर्म नहि अक्रम, घर अघर पर पाया ।
ता सुखि लागि सहज धरि सुनी, बोले नहीं बुलाया ॥४४॥
ग्यान ध्यान नहीं जोग न जोगी, नहीं तहां गुरु नहीं चेला ।
घटे न बधे सदा ज्यूं का त्यूं, अरपित नाथ अकेला ॥४५॥
पूरण ब्रह्म अखंड हरि भरि चित, रूप अरूप अछाया ।
खीर नीर ज्यूं सकल निरन्तरि, ना तस काल न काया ॥४६॥
राग दोष रस मैं ते नांही, जीव जनम नहीं जोगी ।
जग न भंग निरंम निर खार, ना तहाँ बेद न रोगी ॥४७॥
अरध अपार उजागर अरि रिपु, तत गुरु साथ बतायां ।
मनसा चलै न जाई मन छाडे, भोम नाथ पति पाया ॥४८॥
बाप नहीं मिमा बरण नहीं अबरण, ज्ञान ध्यान नहीं दूजा ।
नाथ निरंजन निरभै जोगी, तहां हमारी पूजा ॥४९॥
ज्ञान बिचार बिवेक अगम गति, वार पार नहि लहिए ।
हरि दरि छाजे देखि दसूं दिसि तहाँ उनमाला रहिए ॥५०॥
जब जस जहाँ तहाँ करणी में, रहे सकल तैं न्यारा ।
जन हरिदास मन ता सुखि लागा, गुरु गम अगम बिचारा ॥५१॥

सब देवां सिरि देव दया निधि, छिपै न काहूं छाया ।
जन हरिदास मन ता सुखिलागा, सत गुरु साच बताया ॥५२॥

॥ इति प्राण प्रसिद्ध परमात्मा पूजा योग ॥१३॥

## ॥ अथ समाधि योग ॥ १४ ॥

अवधू जोगी जुगते न्यारा, पद निरबाण निरन्तर बैठा ।
चिंता का करि चारा ॥१॥
सबद विचारि सहज घरि खेलै, नांव निरन्तरि जागे ।
मनसा डाकणी मारन्ती मारे, तौ नगरी चोर न लागे ॥२॥
इन्द्री कसे धसे मन दिहि दिस, मनकूं अटकि न राखे ।
तन पाटण तहाँ मनमें वासी, नाना विधि रस चाखे ॥३॥
चिन्ता कूं चिंता फिरि ग्रासे, अगनि अगनि कूं सोखे ।
जल बिन न्हाय निरन्तर खेले, अब मन पड़े न धोखे ॥४॥
तन जीते ताकूं तत दरसै, तत रहे गुणां ते जूवा ।
जाणेगा कोई जोगेसुर, जा घटि परचा हूवा ॥५॥
अधर अगम कोई विरला पहुंचे, सत गुरु साच बताया ।
जा सुखकूं हम न्यारा कहता, सो सुख नैड़ा पाया ॥६॥
दांणी मार दांणमें दीया, अपणा मूल न हारं ।
पूंजी रहे विणज ज्यूं विणजूं, पैंड़ा अगम अपारम् ॥७॥

ना गृह करूं न बन बसी भाई, घरमांही घर पाया ।
सो घर सकल भरां से न्यारा, ता घरि प्राण समाया ॥८॥
प्रकटी सुषुपि सुषुपि कथ्या सूंग, भरम भया मैं हारी ।
अंजन मांही निरंजन दरसै, मथभै कथ्या बिचारी ॥९॥
नीच करम न्यारा हम न्यारा, भया अगोचर भारी ।
पैंडे पर्‌डू न कांटा लागै, उलटी पंख सवारी ॥१०॥
गुणागत गया मिल्या मोहि निरगुण, निरगुण सूं सब अपरंपारा ।
सहज समाधि पवन गहि पोषो, हम दोई पखते न्यारा ॥११॥
मैं मेरा मन सकल उजाले, अगम तहां लौ लाया ।
उलटा पवन्या मनसका सूं बन्ध्या, सहजैं सुनि समाया ॥१२॥
पैंडे पाप स पारि पहुंचे, बैठि रहे सो हारे ।
करम कियां अनरथ सब छूटे, ऐसा भरम बिचारे ॥१३॥
सील सन्तोष दया हर बाती, खिमाह मारे दाई ।
ग्यान बिचार बिवेक सिंघासन, सुख में सुरति समाई ॥१४॥
निरभै डंड निरास अधारी, कथ्या अजर अपारं ।
भिक्षा अगम निरन्तरि सीधी, भाखण सुनि हमारं ॥१५॥
जोग बिचारि स्तुरा हम सीति अगम बस्त सो पाई ।
निरभै भया निरन्तरि भक्ता, उलटी तासी लाई ॥१६॥
पूरब छाड़ि पछिम नहि सेऊं, कजली बन बिच बारी ।
देरा कांवड़ कर गहि तोड्‌यूं सीभी सुम हमारी ॥१७॥

आसा का ईंधण हम किया, चिन्ता अगनि बुझाणी ।
नदी निवासै बहती थाकी, चढ्या अपूठा पांणी ॥१८॥
काम हमारे कागद बांचे, आखर अगम विचारे ।
यहु मत गहे सो पारि पहुंचे, बैठि रहे सोई हारे ॥१९॥
मंझ देश तहां मठी हमारी, तन बाघम्बर कीया ।
धूंई ध्यान सहज की मुद्रा, अगम पियाला पीया ॥२०॥
मेर डंड का मारग लाधा, उलटा पवन चढाया ।
दसवें द्वार निरन्जन जोगी, हम गुरु गमतें पाया ॥२१॥
तेरहे तीन प्राण घरि चोथे, परम सुनि मन पूरा ।
सोखी भया पिसण भया सोखी, गढि पड़ि सके न चूरा ॥२२॥
[1]दच्छिण देस दूरि हम छोड्या, उत्तर हमारा वासा ।
निरभै भया निरन्तर मेला, अणभै पद अभ्यासा ॥२३॥
जोगी सदा सहज घरि खेले, वसुधा गहि वस्त विचारे ।
जा गिरवरतें गंगा निकसे, ता गिर गुफा हमारी ॥२४॥
इला पिंगुला सुखमनि मेला त्रिवेणी तटि न्हाया ।
जोग समाधि प्राण ले सूता, जागे नहीं जगाया ॥२५॥
भरथ विचारि अगम में पैठा, नऊनाथ संग लीया ।
आये सबल अंगीठी तापे, ऊपर आसण कीया ॥२६॥

---

१ दच्छिणायन उत्तरायण गीताऽध्याय ८ श्लो॰ २४–२५ ।

सात समद मोती फिरि मोस्या, मछ मूमा बिन पांखी।
मोपी तखि कान्ह अगम कू चाल्या, मध्य मैं कपा पिठांखी ॥२७॥
मरकट पै बाजीगर नाचे, सबद निरन्तरि बाजा ।
पूरा पारख लखे न मरमके पे मरमके हौ भाषा ॥२८॥
[1]धीवर [2]खाज पगोतलि रूपा, छाली सिंघह चारे ।
[3]गूंगा अरथ अगम का बूझे, [4]बहरा अरथ विचारे ॥२९॥
[5]पंगुला ऊठि चला बिन चाल्या [6]आंधे लोचन लाधा ।
[7]तरवर पात फूल फल डाला, बीज समूला लाधा ॥३०॥
पूठे पवाक उलटि सर लागा, लोग समासे माया ।
मुरगी बपरी बिवह मुसाना, काथी नौन बुझाया ॥३१॥
[8]चींटी के मुख [9]मेर समाना, [10]मूंसे गिली [11]मजारी।
[12]दादुर [13] सरप समदमें डारया, लौकी परि अमवारी ॥३२॥
[14]मकड़ी का सिर [15]मारवा तोड्या, [16]अंधुक सिंघ [17]भगाया।
[18]कुंजर [19]मगर दंत तल चूरया [20] हिरणी[21]चीता खाया ॥३३॥

---

१ काम २ मन ३ ममाचित्त ४ शब्द विषय से रहित ५ आवागमन आदि क्रिया से रहित ६ अंधेला ममता रूप पैरों के सम्बन्ध रहित ज्ञान वैराग्य नेत्र ७ संसार प्रारब्ध कर्म ८ ममता ९ मन १० अन्तःकरण ११ इच्छा १२ मन १३ संसार १४ माया १५ ममता १६ अंधकार रूप १७ अहंकार १८ मन १९ कामदेव २० ममता २१ चित्त

रवि ससि पकड़ि दाढ तलि राख्या, नकटी नाथि नचाई ।
सुसा हमारे खेती राखे, धाड़ी मृग नहि खाई ॥३४॥
मान अमांन अगनि दोऊ दीरघ, सुर नर असुर सिधार्या ।
जो मारग जीतण कूं खपता, सो पैंडा हम हार्या ॥३५॥
अकल अभेद अछेद अखंडित, निरा मूल निरधारं ।
यहां न वहां निकटि नहि न्यारा, अगम वार नहि पारं ॥३६॥
सोई निरभै निजनाथ सदा संगि (मेरे), जुरा मरण भै भागा ।
अनहद सबद गगनमें गरजे, मूल कवल मन लागा ॥३७॥
उपजि न बिनसै जुरा न थापे, नांसो मरे न मारे ।
खिजै न खेले जागि न सोवै, सोई निरगुण इष्ट हमारे ॥३८॥
नांतस मोह द्रोह पखि नांही, नां तस काल न काया ।
नासों पुरुष नारि पणि नांही, नां तस धूप न छाया ॥३६॥
जोग न भोग निकट नहि न्यारा, उदै अस्त दोय नांही ।
मैं ते तजे भजेगा सोई, व्यापि रह्या सब मांही ॥४०॥
बणां कहूं तो कहणि न आवे, थोड़ा कहू तो खारा ।
घटे न बढे सदा ज्यूं का त्यूं, रहे सकलते न्यारा ॥४१॥
जन हरिदास पति परसि परम सुख, झड्या सहज में ताला ।
जोग समाधि जुरा नही व्यापे, जा घट अगम उजाला॥ ४२॥
जुरा न व्यापे जोगियां ?, चिन्ता काल न खाय ।
कर्म भर्म धूई किया, सुखमें रया समाय ॥४३॥

सुख अगाध समंद अगम, पहुँचे विरला कोय ।
जन हरिदास तहाँ खेलिये, तब ही आनन्द होय ॥५४॥
जोग भेद सतगुरु दिया, आतम को उपदेश ।
जन हरिदास मन तहाँ बसे, जहाँ संतन का परवेश ॥५५॥
जोग समाधि अगाध मत, पार ब्रह्म प्रीति ।
जन हरिदास तहाँ खेलिये, तन मन तृष्णा जीति ॥५६॥

॥ इति समाधि जोग ग्रन्थ ॥ १४ ॥

॥ अथ जोग ध्यान जोग ग्रन्थ ॥ १५ ॥

हरिदेस तहाँ सौदा भरा, सतगुरु आप लगाया ।
पैंडे पाँव न काँटा लागे, उलटा राह बताया ॥१॥
मन धरि प्राण प्राणमें मनसा, बंक नालि में आई ।
अगम अरथ सोई कथा कहताई सतगुरु बात बताई ॥२॥
तन पाटण तहाँ वास हमारा, नौ[1] दरवार बनाया ।
सुनि मेरुमें जोती चमके, उलटा पवन चढ़ाया ॥३॥
[2]आयुध बिन संग्राम करम बिन आरंभ [3]त्रिगुण सखी सुलझाया ।
घटा पंखि पाँणी में पैठी, मीन थल घर पाया ॥४॥

---

१ शरीर के नौ द्वार २ शस्त्र ३ त्रिगुण (सत्व, रज तम) माया

राजा भयो [1]रैति रैति भईराजा, ऊपरि आसण कीया ।
ऋतु पलट्या रस फीका लागे, एकै रसि बसि जीया ॥५॥
मीठा जहां तहां मन लागा, फल करि गहूं न खारा ।
घरि घरि चैन राज रसि एकै, निरभै नगर हमारा ॥६॥
निरगुण निज भेद सकलतें न्यारा, सकल निरन्तरि दरसै ।
घटि घटि अघट करम पट लागा, विरला कोई परसै ॥७॥
ऊंनणि आय आकास गरास्या, बिण वर्षा ऋतु आई ।
ता ऋतु साख सहजमें निपजै, खेती [2]बाव न लागे काई॥८॥
कांटी उड़े प्राण कण निपजै, बिण परचे कण छीजै ।
डूबै उदक न अगनि न ग्रासे, ऐसा आरंभ कीजै ॥९॥
गिरवर में धात धातमें गिरवर, गिरवर धात न खाया ।
मेख भरोसे भति कोई भूलो, जबलग योमत [3] नाया ॥१०॥
चौमासे दोय चात्रिग ग्रास्या, निरपख निजरि समाया ।
सात समन्द मोती में वास्या, मरजीवा ले आया ॥११॥
नव घण घटा वरसती थाकी, भार अठा रह पाई ।
चिन्त खिवणी गाजे गत आयो, वसुधा गगन समाई ॥१२॥
गागरि का पांणी कूंआ पीवे, हुवा अचंभा भारी ।
उलटी नेज अगम सूं लागी, पड़ी फूटी पणिहारी ॥१३॥

[1] प्रजा [2] वायु [3] नहीं समाता है।

मेर डंड चाई चढि छेद्या, अलख मन्त्र भगनि गरास्या ।
मिटि गया त्रिविधि तिमिर या तनथे, परमहर पर कास्या ॥१४॥
सीमरता सगळा जग सूता, पडदा परहा न होई ।
उदै १ बास तहां अगनि पजळहै, आगन देखै कोई ॥१५॥
सतरज तम गुण काम क्रोध मद मोह दोह कस दीया ।
पानी जले भगनि जळ सोखे, ऐसा आरंभ कीया ॥१६॥
मुद्रा शब्द सुषुधि कंठ मींगी, ज्ञान चक करि धारे ।
पेंडा पांच सगा सिर मरथा, आसया सुभ दमारम् ॥१७॥
पैंडा अधर अगम घर अंतरि, उद सुभ कथा अमेरम् ।
खिमा खड्ग ले एसे खेलूं, जनम मरण सिर छेदम् ॥१८॥
अजपा आप मंत्रमें सीख्या, क्षोभ लहरि सब आसम् ।
कालो नागणि डसण न पावे, सिधि गिधि डाद उपासम ॥१९॥
पांणीमें पेसि न परसु पांणी अधि बसि अगनि न प्रासम्
गुणां पेसि निरगुण बोध निरखूं, आसा बसि रहूं निरासम् ॥२०॥
आरम्भ करूं रहूं निरारंभ, जीवणा कूं सर्पूं न वारूं ।
छाडूं साथ न साथी राखूं, ना मैं मरूं न मारूं ॥२१॥
भट चला रहूं न भांपया भाऊं, चाखूं नहीं चखाया ।
सोऊं सहज न हठ करि मांगूं, सूला रहूं न धाप्या ॥२२॥
ज्यूं आकास सहम गुण मासे, गुण कोई व्यापे नांहीं ।
अवधू तन मन ऐसे रासे, ज्यों चन्दा जल मांही ॥२३॥

साहिब अघट साध सबघट घर, कीमति कहत न आवे।
वार पार कोई मध्य न जाने, सब कोई अगम बतावे ॥२४॥
परम पुरुष पर ज्ञान परमसुख, परा परें पति पाया।
जन हरिदास मन उनमनि लागा, सहजें सुन्न समाया ॥२५॥
पार ब्रह्म पति परम सनेही, समद रूप सब मांही।
जन हरिदास साध सुख लागा, वार पार कछु नांही ॥२६॥

॥ इति योग ध्यान योग ग्रन्थः ॥ १५ ॥

## ॥ अथ प्राण मात्रा जोग ग्रन्थः ॥ १६ ॥

ओ३म् प्राण मात्रा सुणो हो साधो! हरिभजन का भेद कामक्रो
का करिबा छेद एक पहिराखिबा पांच साथी।
मनमें मंत मारिबा हाथी ॥१॥
मैते मोहदल जीतिबा जोगी, जुग मे मेटिबा पबनरस भोगी।
सबद की गूदडी साम सम धागा, अचाहि की सूई ले सींवण लागा
निरास में मुद्रा सील सन्ताप सति चेला।
ध्यान की धुंई तहां सिद्धां का मेला ॥ ३ ॥
दया धीरज डड साच गहिबा।
विचार के आसण उनमनि रहिबा ॥ ४ ॥
सबद की सींगी सहज की माला।
जतकी कोपीन तहां जोग का ताला ॥ ५ ॥

निरमोह मढी निहचल वासा, मरणां की सटाशिर देखिवा तमांसा ६
निरास उवांणी भकलकी छाया, अधर उठि चालिवा, तजिवा काम क्रोध काया ॥ ७ ॥
वेद सिर टोपी तन वाघंबर, निरगुण वो घोटा मुनि चसतीन घर ८॥
पाताल का पांणीं अकासकू चढायवा।
कलपना सरपणी पवन मुख खायवा ॥ ९ ॥
सतगुरु सबदले अगह अगम उरधारिवा।
ज्ञान का चक्रले कालकूं मारिवा ॥ १० ॥
बारह सोलह कला ले एक धरि आंखिवा।
जोग का मूल यहु जुगति सब आंखिवा ॥ ११ ॥
गुर का सबदलै मीरा जगायवा।
सरप बैंचि ठमि अगम तहाँ चालिवा ॥ १२ ॥
देखि पग धरिवा दया पंथ करिवा।
उद्र भरि न सोयवा घात करि न धरिवा ॥ १३ ॥
मैं मीत नमरी मोहनी माया कामना मिटी तब जोग पथ पाया॥१४॥
रहता सो माई बहता सो बच्चा।
अवधू उलटा गोता मारि आकास मैं रहयां ॥ १५ ॥
अरथ की अच्यारि मिथ्या न मांखिवा।
निरन्जन मात्रा जतन सूं राखिवा ॥ १६ ॥
छिवी[१]सबूरी और कूं न देवा, आकाश की मिथ्या मांयलेवा १७

[१] ममता

चाई न झलके भगमसत्र, छब्या परम तत परसतां मेर मधिगाब्या १८
मसि निरन्तरि आरंभ कारिवा, कायाकमंडल अमीरस भरिवा १६
चिन्ता डाकणी फिरि गई लाजे, अनहद गींगी गगन सुर वाजे २०
जीवतो मरे सू जुग जुग जीवे, अगम पयाला छक्या रस पीवे २१
ऊरम धूरम सुख मनां भोगी, अकल तरवर बसे प्राणनाथ जोगी २२
जन हरिदास सतगुरु सबद श्रद्धा त्यूं कीया ।
अकल के आसिरे अगम गढ लीया ॥२३॥
साध सबही बसे तहां भय नांही ।
जन हरिदास मन सुरति प्राण बसे तां मांही ॥ २४ ॥
जन हरिदास चेत्या सतगुरु चितावे ।
सोवे सो खोवे जागे सो पावे ॥ २५ ॥

॥ इति प्राण सात्रा योग ग्रन्थ ॥ १५ ॥

## ॥ अथ आत्म अभ्यास योग ग्रन्थ ॥ १६ ॥

व्योम नही वसुधा नहीं, पवन जल तेज न लाइ ।
अगम ठौड़ करसण तहां, चोर कटि लगै न कोई ॥१॥
पांणी विण पांणी अतिर, हाथां विण तिरणां ।
वारिन रहणां थाकि पारि जाय, बहोड़ि न फिरणां ॥२॥
एके साथी साथ गया, साथीगत दूजा ।
देवल देवल पैसि कर, परमि मन करै न पूजा ॥३॥

हारी प्रीति दोष देश, तहां सब जीव का वासा ।
देखि तमासा डरप्या, बहोड़ि मोहि भावे हासा ॥४॥
चिन्ता की लाग न चाट, चोट सतगुरु की भाया ।
सतगुरु साहस धीर, सुतौ सतगुरु स पाया ॥५॥
ज्ञान सिघासण बैसी, एक भारम्भ हम कीया ।
भ्रम भगनि परि जारि, पवन मुखि परवत दीया ॥६॥
गया पाप पर पंक त्रिविध में स भ्रम भागा ।
उलटा गोता मारि, प्राण निमें सुखि लागा ॥७॥
पांच सखी ले साथ, परम सुख सागरि झूल्या ।
बिविध बेलि फलफल्या, कंवल बिण पाणी फूल्या ॥८॥
डाल समाया मूल, काम बहि सतगुरु कीया ।
त्रिवेणी भस्नान अघोंमि पावक दीया ॥९॥
गंग जमन मधि बैसी, चन्द घटि सूर समाया ।
परम ज्योति परकास अगम गुरुगम त पाया ॥१०॥
धन ध्यान पर हरया, पसरि पांणी नहीं पीवै
परम सुनि घर भस्यो, उपाइ करता न जीवै ॥११॥
अरचित अरय अभंग, नाथ निरमें निरभेद ।
जहां तहां भरपूर परिजै, भास उभेदम् ॥१२॥
मार पार मधि नांही, छिपे नहीं काहू छाया ।
भदिष्टि भनरि भरूप, भगहि उटि भवरि पाया ॥१३॥

तहों सांपणी नहीं संचरैं, डहकि दोय डंकन धारे।
प्रथम नहीं चढे जहर, मंत्र गारुड़ी न मारे ॥१४॥
भैरूं न लगेन भोग, सीस भोपी नहि तोले।
देवल विण देव अभेव, तहां कुलफ जड़े न खोले ॥१५॥
अधर छाडि उरधे चढ्या, राग विण रागनि बाजे।
ब्रह्म अगनि आभरण, सबद बिन सींगी बाजे ॥१६॥
तुल्य नहीं तुहां तुल्या, बिप्रां विण वेद पढाया।
अगनि बिना अस होम, पुनि बिना पुनि समाया ॥१७॥
आरम्भ विण आरम्भ, करम विण करम सब कीजे।
बिण तपस्या तप तहां, पाठ बिण पाठ पढीजे ॥१८॥
ईंधण विण ईंधणा, अगनि विण अगनि सजारें।
बिण ही निद्रा नींद, भूख बिन भूख संभारे ॥१९॥
नऊं नाथ ले साथी, मेर चढि आसण धार्‍या।
जोगरंभ बिण जोग, भोग बिण भोग बिचार्‍या ॥२०॥
नीर न झलके पारा मार्‍या, यहु अरम्भ हम कीया।
ठग ताजि के सुतो ठग ठाबा, पकड़ अगनि मुख दीया ॥२१॥
जन हरिदास सतगुरु का चेला, डरे न सोवे जागे।
उन मनि रहे निरन्तर निसदिन, तौ नगरी चोर न लागे ॥२२॥

॥ इति आतम अभ्यास जोग ग्रन्थ ॥ १६ ॥

## ॥ अथ सतपति १हेतु योग ग्रन्थ ॥ १७ ॥

व्योम नहीं वसुधा नहीं, पवन अरु तेज न पांणी ।
दिवस नहीं नदि राति, नहि कहि कौन बिनांणी ॥१॥
सात समन्द मरजाद, नहिं गिरि भार अठारा ।
चौरासी लख जाति, नहिं नदि मयडल तारा ॥२॥
आदि शक्ति शिव सेस, विष्णु ब्रह्मा नहिं माया ।
जन्म मुरा नहिं मोत जीव नहिं काल न काया ॥३॥
पुण्य नारि रस पांच, हाट पाटण न पसारा ।
होमखि गगन न गाम नहिं बिरखा धाराधारा ॥४॥
यन्द नौ कुलि नाम मन्त्र मारुडी न गहरम् ।
हलया नहि मह छेक, नहि अमृत नहि जहरम् ॥५॥
नीर निरोध न पोख, भूत डाकणा नहि भेदम् ।
भेक जोग न भोग रस रोग रसना नहीं कन्चन छेदम् ॥६॥
सातवार रवि तीन घड़ि मई रति नहीं कोई ।
पहर दिन पल मास, बरस युग बरखन कोई ॥७॥
क्षुधा तृषा नम नींद, सेज सुख सोम न धरही ।
नहि वैरि नहि मित्र, नहि निर्मै नहि डरही ॥८॥

---

१ जिसकी उत्पत्ति में कोई हेतु नहीं ।

शूद्र वैश क्षत्रि विप्र, विद्या विस्तार न वांदम् ।
नहि हिन्दू नहि तुर्क, सरा नहि सबद न साधम् ॥९॥
नहि चन्द नहि सूर, हा हरि हठ जीति न मनहि ।
मुक्ति सिद्धि नव निद्धि, चिन्त नहीं चाहि न धनही ॥१०॥
सिध साधक जोगी जती, पीर नहीं पैगम्बर ।
नही कुतब नही ओस, दत्त नहि देव दिगम्बर ॥११॥
नहि तपस्या जिग जाप, नहीं करता नहि कीया ।
नहीं जोर नहि जेर, जोग गोरख नहि लीया ॥१२॥
नहीं सूर नहीं गाय, जब्रह तन तेगन टूटा ।
नहीं हेत मुख हाथ, तदि स्वाद कहूं लिया न छूटा ॥१३॥
नहीं पाप नहीं पुन्य, दया निरदै नहि माया ।
नहीं मोह न दोह, दूत दुसह नहि दुःख सुख छाया ॥१४॥
नहीं सील सन्तोष, गहर मति गुरू न चेला ।
नहीं ग्यान नहि ध्यान, आपत दि अलख अकेला ॥१५॥
नहीं विरह न वैराग, नहीं सेवक नहि स्वामी ।
खट दरसण पखनाही, (तहि) आदि अरचित बहु नामी ॥१६॥
महल दरगह सेजसुख, नहि वहो नारी छन्दा[1] ।
नहि जोध जर कम्म, नहि गै[2] गोड़ी करन्दा ॥१७॥

१ आभूषण २ हाथी

नहीं पालक नहि फौम, भूख नहीं प्यास न मैरी ।
सुम व्यापि गयासार, नहीं छोटी नहीं कहीं ॥१८॥
रैति नहीं रामा नहीं, नहीं पत्री ना खड्ग ।
घर रिघ सून कायर, देख नाहीं पैसा घर ॥१९॥
नहीं नाद निसांण, है न बरता गैबावर[1] ।
नहीं सावत[2] नहीं सर[3], मी छरिया हाकन कायम ॥२०॥
हरिस मसाविस्त रामा व्यापि सब साथी सोई ।
सब जीवों का जीव, तास गति लखै न कोई ॥२१॥
जहाँ तहाँ गोपाल, गोप सब में गोपाल ।
नहीं जोर नहीं ज्वान, नहीं बूढा नहीं बालक ॥२२॥
सिरजन हार अपार, नांव नारायण लीजै ।
निरालंब सुमिर तहाँ फिरि सर बस कीजै ॥२३॥
यह सब करि समवे अगम, (हरि) जन हरीदास निरमै निर्भर ।
भाग्य हंस मोती चुगे, मान सरोवर मंझधार ॥२४॥
जन हरीदास एक गुर कथ्या, परम गति गुरं गमि लहिए ।
घर वन गिरिवर कंदरा, राम रातै तहाँ रहिए ॥२५॥
॥ इति ब्रह्मविवेक योग ग्रन्थ ॥ १७॥

---

१ हाथ मोखा २ बहादुर ३ मरी

## ॥ अथ शब्द परीक्षा योग ॥ १८ ॥

मगत जंगम जोगी जती, सोफीकाहा सन्यास ।
माया की छाया छक्या, निरभै ठौड निरास ॥१॥
वाद कियां विद[1] घटत है, अपत परमदत जाय ।
मनिष जनम धरि हरि भजो, मन फिरि मनहि समाय ॥२॥
राग द्वेष मै तें मनी, जहों तहों मन देत ।
प्राणनाथ पति छाडकर, भार मके सिर लेत ॥३॥
ज्ञान आंखि माया मुदित, जीव[2] जागि सके तो जाग ।
अपना पला छुडाय कर, पतित परम सुखि लागि ॥४॥
विप्र वेद काजी यलमू, दोउ पख दोय तात ।
विचि समद ऊभा अथा, कहे तहां की बात ॥५॥
जैन धरम कांटा करम, भ्रम करि सके न दूरि ।
चिदानन्द सबतें अगम, जहों तहा भर पूरि ॥६॥
चारि बरण का मूल कहा, हरि परम सनेही पीव ।
हारि जीति भुरकी पडी, तहा अलूधा[3] जीव ॥७॥
खट् दरसन सोध्या सबे, सुतौ और ही रीति ।
ऊला[4] माली जहों तहो, पखा पखि बिप्रीति ॥८॥

---

१ वित घटत पाठसी है २ यह सम्बोधन है ३ फसा हुआ ४ मन पर्यंत

गावण मैं रोवण मला, रोवण गावण मांहीं ।
राम बियोगी पंथिक, तलफि तलफि मरिजांही ॥६॥
स्राख ग्रन्थ का भरम यहै कोटि पढ़ो पढ़ लेख ।
साहिब सर्पं सन्मुखि सदा, तूं सन्मुख होय देख ॥१०॥
अनन्त साख साखों कही, मांहि रतन पति राम ।
उलटा गोता मारि करि, करो अपणां काम ॥११॥
तजि तन सुख चौवा चन्दन, (सखौ सब अंग)हीरा हम उजास ।
सुणो सिंगार कोई और है, जहां मिटे कालकी त्रास ॥१२॥
सिखा बैसि तपस्या करै, कंद मूल फल खाय ।
सा तपस्या कोई और है, जहाँ त्रिविध ताप सब जाय ॥१३॥
बहु विधि भोजन लेत है, दुरी वेद की ओट ।
वो भोजन कोई और है, जहाँ मिटै काल की चोट ॥१४॥
धरम नेम तीरथ बरत, प्रीति हेत मन मांहि ।
सो तो कोई तीरथ और है, जहां सबै पाप झड़ि जाहि ॥१५॥
पारतत्व मेदि देखे, मन मांखिल करि खात ।
सो तो पारिख कोई औरहै, जहाँ काम क्रोध भ्रमजात ॥१६॥
पांच अगनि तापे सुणो, फलवा के वहां जात ।
भ्रम अग्नि प्रकटि बही, वाउमूल सब खात ॥१७॥

देह देखे खेह निरगुण दशा, अनफा सूं निरगुण लेत ।
निरभै पद पहुंता नहीं, लग्या कोण सूं हेत ॥१८॥
विविध धरम तपस्या विविध, चलत देह के माय ।
सुतौ पंथ कोई और है, जहां सात समद लंघि जाय॥१९॥
सतगुरु सबदां मन घड्या, घाटि उतार्या आथि ।
दूजा लाइ दुरि गया, एकै लाइ हाथि ॥२०॥
चिन्तामणि दरई तहां, सो तो सब सुख लेत ।
वा चिन्तामणि कोइ और है, प्रगट परम पद देत ॥२१॥
धाह अगनि मुखि प्रजले, तांबा लीया ताय ।
सो तो तांबा कंचन भया, जब पारस परस्या जाय ॥२२॥
स्याह लाल जरदा सफेद, गिरिवर सुत हाथि हजूरि ।
लोह पलटि कंचन करे, सोतो पारस कहू दूरि ॥२३॥
हीरा की शोभा कहां, सोतो चोर लेजाय ।
वो हीरा कोई और है, उलटि चोर कूं खाय ॥२४॥
मानि अगनि दोय गरबगत, प्रकट परम पद हाथि ।
कामधेनि सुरही सबै, सोतो कामधेनि तहां साथि ॥२५॥
मन मरजी वा तन समंद, उलटा गोता खाय ।
हीरा ले न्यारा रह्या, खरा जल न सुहाय ॥२६॥

चंदन तरवर की संगति, पसै स चंदन होय ।
अरस परस गति एक है, नांव धरन कू दोय ॥२७॥
चन्दन तरवर विविध बन, चंदन मिलै न काई रंगि ।
और वृक्ष चंदन भया, मिलि चन्दन के संगि ॥२८॥
कमलपत्रेस सबतें अगम, सतगुरु दिया बताय ।
जा परस्यां लोहिंग[1] दूरै, काम क्रोध भ्रम जाय ॥२९॥
दृष्ट आवै दासिद गर्म, मनका खोटा दूरि ।
सोतो दाता सबतें अगम जहां तहां भरपूरि ॥३०॥
आठ लगी जोगी ठग्या, भजन करत सब साध ।
सब देवां सिर देव है, हरि अपरम्पार अगाध ॥३१॥
सुख सींचत अमृत सुधा, मन करत प्रेम धरि पान ।
सोतो चंद कहाइ और है, प्रकट हर अभिमान ॥३२॥
कैलास बिलसि भ्रकुटि त्रिकुटि, अगम अघट उजास ।
पश्चिम दिसा ऊगा अरक, नख सिख नाभि प्रकास ॥३३॥
आठ पहर इम्रत सुधा, बरस परस रस पई ।
सोतो इन्द्र कोइ और है, दूजा इन्द्र अनेक ॥३४॥
अनभ पुरी पर पर नहीं, जमकी लगै न गाम ।
सोतो राजा कोइ और है, जाका सब परि राज ॥३५॥
सब देवां सिर देव है, सब शाहां सिर शाह ।
सब सुलतानासिर सुलतान है, हरि पुरुष अगम अथाह ॥३६॥

---
१ [illegible]

लख चौरासी जीव जहां, जहां नाना विधि दीदार।
एक सब करि मवनै अगम, अनन्त लोग विस्तार ॥३७॥
बसै कहां नाही कहां, कौण पंक औ गाहि।
वार पारकी मति नहीं, नांव थरन है नाहि ॥३८॥
नांव धरू तो मैं डरूं, हरि अपरम्पार अछेह।
सुत तात मात वनिता नहीं, गांव देश नहि देह ॥३९॥
जन हरिदास पति का बरत, अपणा हिरदै धारि।
पर पांणी लागै नहीं, उलटी पंथ मंझारि ॥४०॥
परमसिव पर वाणा कहां, वहो कीमति करन गए हारि।
जन हरिदास निरभै मते, तहां निरभै जमन विचारि ॥४१॥

॥इति शब्द परीक्षा योग ग्रंथ ॥१८॥

## ॥ अथ वीरारस वैराग योग ॥ १६ ॥

क्या कहि एक हणी कहा, रजमां रहणी मांहि।
सो साहिबकै हाथि है, देतो अचिरज नांहि ॥१॥
रहणी तो जे हरि भजे, रहे निरन्तरि लागि।
वलता बुझै अंगार सब, वहोड़िन झलके आगि ॥२॥

१ हायले मकता है।

को धरपे को बंदिये, का नींव गहि छार ।
जैसे साध समाधि में, कलपै नहीं अगार ॥३॥
जो कलपे सो कसर है, कछू किरषि मनमांही ।
अगम तहां पड़दा पड़ै, निज तत परस्या नांहि ॥४॥
ज्यूं हम दैसे त्यूं कहैं, ऊंचा करि करि बांहि ।
कुरम सिष जैसे नहीं, एक पलकी छांह ॥५॥
दुनियां सूं चाई रही, परमेसुरसूं प्रीति ।
साधों का सुख अगम है, यह कछु उलटी रीति ॥६॥
करम कठिण रहणी कठिन, कठिन साधकी टेक ।
ज्यों बातां सबै मिले, सो कोई कठिन विवेक ॥७॥
विरह चोट लागी नहीं, साध सबद सुख दूरि ।
काम क्रोध में तैं मनी, पल दे सबपा न चूरि ॥८॥
या वेदनि कटिबो कठिन बांचे विरला कोय ।
दया जहां आरम्भ नहीं, आरम्भ दया न होय ॥९॥
दया देस तहां बास करि, निरभै पद भजि राम ।
धीरज में धन मिलेगा, यहि औसरि यहु काम ॥१०॥
मन चंचल निहचल भया, गया ज्ञान की पाखि ।
आगया सो मरमें नहीं, पंखा पड़े अंजालि ॥११॥
पांखि मांहि पैसि करि, धरै निरन्तरि ध्यान ।
मन मछली चित बिन रहे, बड़ी विपति यहु जान ॥१२॥

अगम तहां पहुंता नहीं, गुण इन्द्रि प्रतिपाल ।
गुरु भींवर[1] वर सिख माछली, तकि तकि मेल्हे जाल ॥१३॥

साध तहां सुरमख सदा, हरि सुमरण सूं हेत ।
ख्याल पड्यां खर खातहै, जा का सूना खेत ॥१४॥

प्राण सनेही मोयमां, सुमरि सनेही राम ।
अलख आव आलस यहां, सुपनां कासा काम ॥१५॥

बार बार तोसूं कहूं, तूं करै न अपणां काज ।
गोविन्द भजि जीवणायइसा, जिसा बीज[2]का राज ॥१६॥

काल कहर चित बतर है, तकि तकि रोपे डांण ।
दाव पड़तां कहि कहाकरै, अज्या सिघमु मांण ॥१७॥

गोरू[3] ग्वाल हि छांडि करि, खेत विडांणां खाय ।
मार सहे संकट पड़े, संकट पड़ि पछताय ॥१८॥

पाप सरा है आपकू, चाहै मान सुहाग ।
साहिब साधन आदरै, योंही बड़ा अभाग ॥१९॥

साध तहां निरबैरता, जहां बैर तहां प्रेत ।
परमेस्वर पति छाडिकरि, नरक जांणसूं हेत ॥२०॥

१ मच्छी मार २ आग्नि के का प्रकाश ३ बैल

मन[1]मरकट मति[2] छाँडनहि, नहीं करम[3] मति सोंजुरि ।
ऊखल मांहि मस्त्रोपहैं, तो दोष कहा करि धरि ॥२१॥
चिन्ता की डाली भई, सुसा प्रीष्य ता मांहि ।
काम क्रोध मांसों मस्या, मरणो सूझ नांही ॥२२॥
पांच स्वान पांचु दिशा, माय पहुंता वीर ।
कुबुधि काल चित स्तरहैं, तकि तकि मारे तीर ॥२३॥
मोह पासि करि कालके फंघ्या सब संसार ।
मृग तहां पग मति धरे, मोही मरण विकार ॥२४॥
[4]रामसनेहू मन मति मिले न करि कैसम्मैं प्रीति ।
माया का घर छाडिदे, शंकर का घर बीति ॥२५॥
तिया धरि किणकी को सकौ, अंधिया दसो आयाते ।
राम सनेही सुमरि मन, सुरति सहज धरि मांहि ॥२६॥
विष तरवर सूं फल फले सो फल विषही होय ।
ताकू साप न मारदे, कोटि करे जे श्राप- ॥२७॥
मरम छाडि मरमैं कहा, मरम कठि छिन भाव ।
राम कहत झडि जायगा, ज्यूं तरवर का पात ॥२८॥

---

१ हे मन का बीज २ चंचलता ३ विषयों पर हरिलीलामा हरिसमति मो दूर क्या पाठ हो ता व्यर्थ विषयों के मार्ग पर मस्तर रति हो जाना। ४ अंत कर मौत की तरने वाला बद पामी होकर पाया भारी अथवा चामी दुरभारी मीहभस्त्व लोगों को डरा व जाना ( मसमान्य ग्रिमर्दे लोगों )

निसप्रेही निरंभ मतै, सुन्न सुधारस खाय ।
उलटा खेलि अकाशमें, सुखमें रहै समाय ॥२९॥
लोका रंजन होतहै, मनुप जनम का भंग ।
हिरस धक्का देजात है, अहैस काचा रंग ॥३०॥
जहां आयो तहां ऊरमी, हिरस तहां बिभचार ।
ए दोन्यू मोटी बिथा, संतो करो बिचार ॥३१॥
राम रसायण अजब है, दूजा रस करि दूरि ।
या वेदनि हरि जडि, है हाजरा हजूरि ॥३२॥
नेड़ा है न्यारा नहीं, अरु नैड़ा न्यारा नाहि ।
परमेश्वर सर्वत्र अगम, व्यापि रह्या मन मांहि ॥३३॥
मन मैला हरि निरमला, मन चचल हरि थीर ।
मन थिर होय न हरिमिलै, सामलि आतम वीर ॥३४॥
अवगति भजि आलस कहा, यहै बधिक फंद जाणि ।
राम बिसाऱ्या होत है, मनुप जनम की हाणि ॥३५॥
ज्यूं मकडी माखी गहै, पकडि काठि ले जाय ।
यूं निगुणा वा जीव कू, काल विधूंसे आय ॥३६॥
माया दीपक देखिये, राम न सूझै पीव ।
आय अन्धारे आपके, पडि पडि दाझै जीव ॥३७॥

जन हरिदास कहि क्यों दुरे, राम भजन रस रीति ।
भ्रकुटि माही देखिये, जाके जैसी प्रीति ॥४६॥

॥ इति वीरारस योग ग्रंथ ॥ १९ ॥

## ॥ अथ भ्रम विध्वंस योग ग्रन्थ ॥ २० ॥

आलम खलक रूपं खालिक, करता करण वरण विसतार ।
वसुधा तुया अगनि तत वाट, रवि शशि शोभा भार अठार॥१॥
चवदा भवन गवण गुण ग्रामी, तारा मंडल रचण त्रिलोक ।
सागर सपत अष्ट गिर परवत, नदी निवासे वद अलोक ॥२॥
शिवसजि शक्ति विष्णु ब्रह्मादिक, नव घन दामिनि इन्द्र कुमेर ।
खांणी च्यार च्यार विधि वांणी, घटि घटि अहूं मंडाणा मेर॥३॥
सुर नर असुर खमे आपंम, माया दड़ौ सममता जेर ।
खेल खिरच्या के अजहु खेलसी, गाया वटैन ममता फेर ॥४॥
ब्रह्मा के वरस अनन्त जुग वीचे, मोटे ब्रह्मा डर विरन वप काल।
ओछी आव अणड़ा खोटा, ये झूठे सृखि झड़ा भोपाल ॥५॥
वांणी तजि कठिन कुबुधि करिकान,सुमरि सुमरि अतरिनिजसार।
निजपुरूषनिरखिनिरखिनिजनेडो, जन हरिदास हरिपरमउदार६
दोहाः-- है [१]वर गैवर गाय गढ़, महेल मगन रसराज ।
छत्र सिघासण सेज सुख, वाजों गहरी वाज ॥७॥

---

१ हयवर गजवर

नरपति माँपति दवार खड़ा, सिमड़ा तन नामन्त ।
जाडिस दल सो नवें, हुकार नामन्त ॥८।

नरवन खड़ा कोंड़ा खाली गता कार्षं रंस
भरक भगनि में ऊमभा को हरि हीरा नहीं मग ६

माम सुमक पगड़ा पडोम स्वग पतिव्रता नारी ।
कर ओवयां भाग न्हाड़ी, भरस परस हरिमारि ॥१०॥

राग कसायन्न दुकदर्शी, काजी मिमर विपक ।
भगम वरक भस्तारि नहीं बैसी कथा मनक ॥११॥

यहाँ विधि बाजा वहाँ सखी वहाँ मूँघो बहु पान ।
यहाँ विधि माजन वही रतन हीरो जड़त पखान ॥१२॥

हम अड़व दय सों कमा गल मोतिन की माल ।
या अममें में पूड़ा पक्षी उड़ो मनत मनाम ॥१३॥

हरि तजि पर कीरति रता, सावन मान कोप ।
क दाभा के डाजिमी, या हीवा की मोय ॥१४॥

पाँच कही तरके सदा, विविधि ताप का माल ।
क मारया क मारिसी, काठि ऊभो काल ॥१५॥

---

१ सीमा

लंकापति रावण कहां, कुंभ करण कहां वंस ।
हिरणाकुश हिरणापि कहां, महकासुर कहां कंस ॥१६॥
जरासिंध शिशुपाल कहा, दसा सण कहां भींव ।
कैरुंदल पांडो कहां, खगां जुपड़ती सीव ॥१७॥
छ चकवे, मुचकन्द कहां, कहां विक्रम कहां भोज ।
सांवत पृथी चौहाण कहा, कहां अकवर नौरोज ॥१८॥
येती मन तोसूं कहूं, सुणि सति शोभा कांनी ।
मैंतै तजि तूं राम भजि, कह्यो हमारो मानी ॥१९॥
खूणे बैठा क्या करे, करि कछु वेगी उपाय ।
अलख पुरुष के आसिरे, चोंडे मडे न आय ॥२०॥
दुख दारण दुरमति हरण, मै नैं हरण गुमान ।
त्रिविध ताप तृष्णा हरण, भजि भूधर भगवान ॥२१॥
गरव गुमान आपौ हरण, तारण तिरण मुरारि ।
ओछा मन पूरण करण, हरि भजि भेद विचारि ॥२२॥
काम क्रोध पांचूं पिसण, दुख सुख नदी विकार ।
ए दीरघ बोछा करण, भजि भौ भंजन हार ॥२३॥
साच कहूं तो मैं डरूं, कह सूं रह्यो न जाय ।
राम संतोष्यां सकल सुख, भांवै दुनिया रहो रिसाय ॥२४॥
राम रसिक हरि रस खुसी, आंन रमि करि साहि ।
हरीदास जन यूं कहै, मै हरि छाडों नाहि ॥२५॥

राम न छाड़ीं मैं हरूं, ऊंट भसी पलाय ।
पतिव्रता पति कूं तजे, तब ही खोया साय ॥२६॥
प्यासा सब ही अमरपीवै, तब ही आनन्द होय ।
विषकी किरची मेलि करि, पीयां न जीवे कोय ॥२७॥
[1]भास बास करता फिरै साध डींगकी सोम ।
वैसे मनि दर्पै पतित, मन अपयसां की खोम ॥२८॥
जन हरिदास दुनियां तरक, रांम भजन की टेक ।
लागि रहा ते ऊबरया, दाभा और अनेक ॥२९॥
जन हरिदास दुनियां तरक, विकलरूप विषभाम ।
साध कहैं तो भाडि पड़ै, मिल्यि भैमू सो काम ॥३०॥

॥ इति भ्रम विध्वंस योग ग्रन्थ ॥२०॥

## ॥ अथ चिंतावणी उपदेश ग्रन्थ ॥ २१ ॥

ध्यान ध्यान गुरज्ञान बिन, पसत देह के भाय ।
अपस्या खोया ही मरा, करि खोगी खोय स्याय ॥१॥
मन मछली करि कीर के, गिलयां मरत है सास ।
मोम भाम लागा रहै, विपति नहींमें बास ॥४॥

---

1 भाषैरी ठहर उपर साधु का भद बस के लिए फटकता है ।

अपर अथिर खर करतहैं, चिर सुख पल न सुहात ।
इत उत चितवत विविधि रस, अलप सुख छिन मात ॥३॥
चालक काल [1]ना डरे, देत सरप सुख हाथ ।
कै चाल्या कै चलैगा, भरि अनरथ उर वाथ ॥४॥
छाया छनि काया उठे, देह दिवासा होय जात ।
बड़ा हुवा दीया बुझ्या, बिपति बड़ाई बात ॥५॥
झटकि पटकि आसा अटकि, भटकि धरत उर काच ।
त्रिविध ताप मे सोय रह्या, समझि न देखे साच ॥६॥
चञ्चल चपल जम चोट सिर, दुरथा देह की ओट ।
आठ पहर अचवत जहर, कहि कोण जनम का खोट ॥७॥
खट मद छक उदमाद छक, छक माया छक आंन ।
पांव धरत छाया नगत, [2]परसि करत परवयांन ॥८॥
डिंभ सिंभ इन्द्री अटकि, चलौ लहौ एक लोभ ।
लहौ गहौ गहि मिलि रहौ, है हरि सब संतन सोभ ॥९॥
[3]जमकि थमकि तत गति पतित, काल ठगत ठग तोही
मोह मंढी मै सोय रह्या, एह अचंभा मोही ॥१०॥

---

१ काल से भी । २ पसरि ३ हेजीव ठग तमक करि एक दम तेरे को काल ठग लेता है इसि लिये कि तू तत्व गति से गिरा हुआ है ।

(अर्ई)माइ म कसि कही पकरा, सुतौ कौंस उपदेस ।
मनुप जन्म नग परम दत, ¹कुपद करत क्यूं पस ॥११॥
तूं बीव जि सति गनित, समत भमत अप मोम ।
सीरत तकत,[illegible] थस्या, अई याद चढतहै सोम ॥१२॥
चमकि चेति चमक्त भया, जहाँ तहाँ जमपूरि ।
आसा वसि चिन्ता डस्या, सोतौ पान कई दूरि ॥१३॥
हरि करौ दया धोम हर परि, उरपरि ऊंदो भाज ।
पीव भीव मरि भागगा, सुमत समत्र की गाज ॥१४॥
विवधि अवधि गति मति भई, है बाकी मी मात ।
चिन्ता चित्त चितमें बसै, चितमें मी चिंता की बात॥१५॥
उगत उगत ठग ठगिगया, पुग उमस बेठा भाय ।
गत जोबन मीति जुरा, पस्या देह छबि छाय ॥१६॥
तन जीरण धूमत हरत मर मुदित अभिमांन ।
सोक साम सुधि बुधि गई, परसि करत पख पांन ॥१७॥
पमकिन धर पाव परिसके, नैन जरत धुनि सीस ।
करि कर्म्म अवरणं अमुखि, अजहूं ममत न ईस ॥१८॥
धा रौरी बैठो रहै, बोलै तो मुसि ²कार ।
कटुक बचन सब सिरस है, बधा मोह की धार ॥१९॥

---

१ मनुष्य जन्म रूप अमूल्य रत्न कुपंथ में क्यों खो रहा है । २ [illegible]

सबद कहत रसना अटकत, नटत घटत नहि घाट ।
लटकि लटकि लुटि लुटि डठत, तकत टटोलत खाट ॥२०॥
जीव हल चल धरती धरया, मरत कुटम्ब मूं हेत ।
यूं करियो यू मनि करो, सीख अजहू या देत ॥२१॥
यह विरनी सब जीवकी, देत काच समि हेम ।
जीव काया तरवर तजि पछी चल्या, वहौडि कुटम्ब मूं पेम ॥२२॥
ग्रान ध्यान गोविन्द विमुख, दुख्या कालकी छाह ।
तात मात नौतम कुटम्ब, नौं नन भाटे वांह ॥२३॥
जागि वूझि वौरा भया, दे न मिला तलि हाथ ।
जन हरिदास नूंभे मते, भजौ निरन्जन नाथ ॥२४॥

॥ इति चिनावणी उपदेश ग्रन्थ ॥२१॥

## ॥ अथ मन चरित योग ग्रंथ ॥ २२ ॥

गुरु की जैं कछु ज्ञान कू, सत गुरु ज्ञान बताय ।
किस विध निरभै आत्मा, निज तत परमे जाय ॥१॥
सतगुरु चरणां सिर धरूं, मैं सति पूंछूं तोहि ।
परम सनेही कहां बसै, कहि समझावो मोहि ॥२॥
को मुरीद माला कहा, लीजे कौंण बुलाय ।
कहॉ रहिए कहॉ गाइए, सतगुरु भेद बताय ॥३॥

अवधू मन मुरीम माला मतों, मुरति सहज भगि लाय।
आत्म के अस्थान रहो, अब घास्या कछु गाय ॥४॥
स्वामी जी मनहि धरिव मन सामहरि, फतासिया तुहाय।
मन ऊंडे ले अख सर, सतगुरु भेद बताय,
अवधूं मनहूं पासिबा अगम कूं घामिबा ॥५॥
अगम क आसिर आम लाय,
रूप बिन राखिबा मन बिन माखिबा,
तौ कालकी चोट में कौण आवै ॥६॥
मन है सफुट मांड का नीर है, फुसकी आगि है,
स्वान रूपीरूप करता है फटकि मणि ज्यूं फूट जावे, मनके
मते न खेलि यार अवधू, मनके मते खैल न स लाय लाय ७
स्वामि जी सति का समद विचारिबा, फूटै भांड का निरते
कौण मन बोलिए, कौण मन फटकि मणि ज्यूं फूट जाय
स्वान रूपि कौण मन बोलिए, कौणमन अमरा ना मन्याय ॥८॥
अवधू फूट मांड का नीर वो लीप ज पांचूं घूरां घेर
फुसकी आगि बोलिए जे ठग तिसा अगर्म
स्वानरूपी रूप करता परम भाई पडे, फटिक मणि ज्यूं मनि
फूटि जावे उसटगा मन मन कूं बंधगा, तब याही मन
हीरा कहावे ॥९॥

स्वामीजी! मनके कौण राह, कौण चाल? कौण मूल, कौण डाल,
परमभेद ते कौण मन लहैं, सतगुरु होय सवू[1]झया कहै॥१०॥
अवधू मनके मनसा राह अनन्त चाल, बीरज मूल मोह डाल।
उलटा खेलि मन मनकू गहै, तौ मनकै अग्र परम[2]गतिलहै॥११॥
स्वामीजी मनके कौणरूप कौणचाल, कौण रंग कौण काल।
कौण अवस्थानि मन उनमनिरहै, कौण अवस्थान मनअगहागहै १२
अवधू मनके वहि[3]तररूप, दोय[4]चाल, तीन[5]रंग, सहज काल।
गगनं अस्थान मन उन[6]मन रहै नाभि अस्थान मन अगहाग[7]है? ३
स्वामीजी कोण समैगल कौणसभोई, कौण महावत कौण सछोई
वेडी परसि काण मन जीवे, प्यासा कौण कहां मन पीवे॥१४॥
अवधू मनस मैं गल धीरसभोई, ग्यान महावत ध्यान सछोई।
वेडी प्रेम परसि मन जीवे, प्यासा प्रेम शुन्य रसपीवे॥१५॥
स्वामीजी कौण कूं राखिवा, कौण कूं ग्रासिवा
कौण करिवा नौ खंड, कौण सबद ले निरन्तरि खेलिवा,
कौण खड्ग ले मेलिवा रवि चंद ॥१६॥
अवधू मन कू राखिवा मन साकु ग्रासिवा, त्रिविधि करिवा नौखन्ड
सतगुरु सवद ले निरन्तरि खेलिवा,
ज्ञान खड्ग ले मेलिवा रवि चन्द ॥१७॥

---

१ समझा कर २ परान्तर–परम निर्वाण ३ अनेक ४ सीधी उलटी। ५ सत्व, रज, तम ६ स्वाम्थ ७ तृप्ति

स्वामीजी कौण कू मारिबा कौण कू धरि आणिबा,
कौण विधि राखिबा धारी[१] कौण क पहरे जागिबा।
कौण अस्थानि मिलि मेलिबा सारी[१] ॥१८॥

अवधू मन कू मारिबा सहज घरि आणिबा
काया बन राखिबा धारी, सील सन्तोष के पहरे जागिबा,
गगन अस्थान मिलि मेलिबा सारी ॥१६॥

स्वामीजी कौण कूं पकड़िबा, कौण कूं चूरिबा,
कौण का मेटिबा पसारा, कौण शब्द मैं निरख रखिबा,
कौण सबद गहि बांधिबा पारा ॥२०॥

अवधू मनकु पकड़िबा मंप[३] कू चूरिबा,
मोह मद मेटिबा पसारा, निरसबद[४] सबद लै निरख लेखिबा,
मन पवना गहि बांधिबा पारा[५] ॥२१॥

स्वामी जी कारण गया न गया, कौण जाता रसवर्णा,
चमति सुरति कौण रस चाखणा, कौण रस पीवणा स जीवणा
कौण रस लेणा कौण रस बिष करि छाड़णां
सो अमृत करि न पीवणां ॥२२॥

---

१ भार (भार) २ बाजी ३ मर्दिबा ४ मवन ( ड़ा) ५ प्रतिमनाह।

अवधू मन गया स गया, जातारखणा, उलटी सुरति अगम रस चखणां, पीवेगा स जीवेगा, तत[1]रूप लेणां पांच इन्द्री रस विष करि छांडणां, सो अमृत करि न पीवणा ॥२३॥

स्वामी जी विष रूपते कौंण बोलिये, अगनि रूपते कौन छाया, सुखरूपते कौंण बोलिए, परम भेदते कौंण बोलिए. तहां काया न माया ॥२४॥

अवधू विष रूपते ज्ञान दग्धी[2], अगनि रूपते कांम छाया। सुख रूपते परम संगी, परम भेदते निरंजन राया ॥२५॥

स्वामीजी कौंण तत्व पलटिवा, कौंण घरि आंणिवा, कौंण पुरुष लेवा पाली, कौंण अस्थान मन उनमनी रहिवा। कौंण अस्थान ला वा ताली[3] ॥२६॥

अवधू पांच तत्व पलटिवा, सहज घरि आंणिवा, प्रांण पुरुष-लेवा पाली[4], अरध अस्थान मन उनमनि[5] रंहिवा। परम अस्थान लायवा ताली ॥२७॥

स्वामीजी भरम का भांडाते, कौंण बोलिए, त्रिविध तापते कौंण बोलिए, कौंण बोलिए इला पिंगला नारी, लोभलूते कौंण बोलिए, बंक नालिते कौंण बोलिए। कहां देखिवा झिलि मिलि जोति उजाली ॥२८॥

अवधू भरम का भांडा भाजिवा, त्रिविध ताप मेटिवा, इला[6] पिंगुला राखिवा नारि. लोभ लूते कौंण बोऐ बंकनालि[7]बालिवा। तहां देखिवा जिलि मिलि जोति उजारी ॥२९॥

---

१ तत्व रूप २ वाचिक ज्ञानी ३ ध्यान ४ रोकना ५ शान्त ६ इड़ा ७ सीधी

अवधू भरम का मांडा है अथक[1] बोलिए, त्रिविध ताप तीन गुण बोलिए मन पवन बोलिए, इला पिंगुला नारी, सोम सूर कलंक कांमणी बोलिए, बंक नाभि सुखमनां बोलिए, उलटैगी सुखमनां परम[1]सिव भैदैगी। तहां देखिबा झिलि मिलि जोति उजाली ॥२०॥
अवधू दुख सुख मेटिबा, सन्तोष मनि गहिबा, सहज समायबा ते जो।। हंस ले परम हंस मथायबा तहां लागि काटिबा काल रोग ॥२१॥
स्वामीजी दुख सुख का घर कौंण बोलिए ? सन्तोष का घर कौंण बोलिए, सहज समायबा ते कौंण जोग।
परम हंसत कौंण बोलिए, कहां लागि काटिबा काल रोग॥ २२॥
अवधू दुख सुख का घर मनमद बोलिए सन्तोष का घर ममता बोलिए, सहज समाय बाद परम जोग। परम हंस पार ब्रह्म बोलिए, तहां लागि काटिबा काल रोग ॥२३॥
स्वामीजी पांच इन्द्री पचीस प्रकृति कौंण अस्थान राखिबा। कौंण अस्थान राखिबा बाई, कौंण अस्थान मन कूं राखिबा, कौंण अस्थान रहिबा समाई ॥२४॥
अवधू पांच इन्द्री पचीस प्रकृति उनमन अस्थान राखिबा बंक नाभि में बाई, ब्रह्म अस्थान मन कूं राखिबा। सुनि अस्थान रहिबा समाइ ॥२५॥

---

१ त्रिगुणात्मक माया २ परम शिव।

ज्यूं कुंभ जल सूं भरया जलमांही धरया, अन्तरि निरन्तरि नीर भाया। यूं भरमि भूलायम् भेद पावे नहीं, सकल व्यापी कहे राम राया ॥३६॥

स्वामी जी कौण पुनि पुनि खिरे, कौण भरमत फिरे, कौणके आसिरे सच कौण पावे, मति का सबद बोलो हो स्वामीजी कालकी चोट मे कौण आवे ॥३७॥

अवधू काया फुनि फुनि खिरे हंस भरमत फिरे, हंस परम हंस नहीं पाया। हंस परम हंस पावेगा तब नहीं भरमेगा जब साच पाया ॥३८॥

स्वामीजी भौ जलतो ऊंडो अथाह, अजर सब्द विकार, माया मोहनी पांचप्रबल बहे, कहां लागि उतरिबा पारम् ॥३६॥

अवधू मै तें मेटिबा सन्तोष धरिबा, अजर सबद करिबा अहारम् परम ज्योति के परचै खेलिबा, उनमनि लागि उतारिबा पारम् ॥४०॥

स्वामीजी कौण तुह्मारी जाति बोलिए, कौण तुह्मारा कुल बोलिए, कौण ज्ञान ले भया उदासं। कौण देश कौण दशा कौण तुह्मारा प्राण पुरुष का वासं ॥४१॥

अवधू अनिल[1]पुरुष हमारी जाति बोलिए, करतूति हमारे कुल बोलिए, ब्रह्मज्ञान ले भया उदासं, दया देश एक दशा बोलिए परम[2] सुनि तहा हमारा प्राण पुरुष का वासं ॥४२॥

---

१ प्राण पुरुष २ परम शून्य स्थान।

स्वामीजी कौंण तरवर कौंण छाया । कुण कहां के पंखी कहां आया, कौंण उडांणां कहां समाया ॥४३॥

अथ अकल[1] तरवर अकल छाया, हम परम सुनि के पंखी अरध सुनि आया । उलटा उडांणां परम सुनि समाया ॥४४॥

स्वामीजी कौंण लखित कौंण अरूप कौंण स सीतल कौंण स धूप, कौंण सकलप[2] कौंण सायवई । कौंण सविनसै कौंण सरह[1] है, कौंण अस्थान मन उलटा आय । कौंण स्थान मन रहै समाय ॥४५॥

अथ ब्रह्म अलखित मनस अरूप, मन समीसल पवन सधूप, चित्त सकलपै मनसा बहै दिष्टि बिनसै अदिष्टि रहै, गगन अस्थान मन उलटा आय । सहज सुनि में रह समाय ॥४६॥

स्वामीजी कौंण अधार कौंण उसास, कौंण अस्थान निज किरण प्रकाश, कौंण अस्थान मन रहै समाय, कौंण अस्थान मन सूखा आय ॥४७॥

अथ त्रिविध[4] अधारा ज्ञान उसास, नाभि कंवल निज किरण प्रकास, ता अस्थान मन रह समाय । इन्द्र्यां अस्थान मन सूखा आय ॥४८॥

---

१ कहा गहिन अथ  सकल्प कहों ३ स्थिर ४ त्रिगुणात्मिका माया।

स्वामीजी कौंण स तरवर कौंण स छाया, पखी कौंण कहां विल माया पंखीति कोण फल खाय । सति सति स्वमीजी कहो समुझाय ॥४६॥

अवधू अकल तरवर सकल छाया. पंखी प्राणी तहां विलमाया उलटा खेलि अगम[1] फल गहे, सतगुरु मयदां निरभैरहे ॥५०॥

स्वामीजी तुम अगम भेदं कि वारपारं, अगम अरथ की ध्यान धारं, दया दरगहकि महर दमंत, विज्ञान पंठकि ज्ञान गुटं । जुरा[2] जीति कि दस वे द्वारम्, उरध फूटा झड्या तालं ॥५१॥

अवधू हमं अनन्त भेदं अजब स्वाद, परम दिष्टि अगम नादम्, दया दरग ह महर दस्तं, विज्ञान पैठे ज्ञान गुटं, जुरा जीति दसवे द्वारं, उरध फूटा झड्या तालम् ॥५२॥

स्वामीजी तुम कौण ग्राही कहा सिष्या, कौण मोती कहां बांधा, कौंण उलटि खेल्या कौण पीया, सेस के मुखि कौण दीया, कौंण मेला कहां बैठा पांच जोगी कहां पैठा ॥५३॥

अवधू हमें सार ग्राही सबद सीष्या, मन मोती निज अर्थ बांधा, मन उलटि खेल्या पवन पीया, शेसके मुखि सिव[3] दीया, रवि शशि मेला चोकि बैठ्या, पांच जोगी गुफा पेठा, नवनाथ निहचल देखि भाई, गंग उलटि गगन आई ॥५४॥

---

१ अगम्य २ बुढ़ापा ३ समभाव

स्वामीजी कौण धागा कहां लागा, कौण निरंजन मरम भागा,
कौण जोगी अवधूत बाला, कौण आसण कौण मृगछाला ॥८५॥
अवधू सुरति धागा सहज लागा मंड पाया भरम भागा, प्राण
जोगी अवधूत बाला गगन आसण मन मृगछाला ॥८६॥
स्वामीजी कौण टोपी कौण कंथा कौण पत्ता कौण पंथा
कौण झोली कौण सिंग्या, कौण डीबी कौण भिस्या[1],
कौण आप कौण माला कौण जागी कौण पियाला ॥८७॥
अवधू तत टोपी अपरि कंथा पांच पत्ता अगम पंथा।
ग्यान डीबी[1] अखर भिखया अजपा जाप मन माला,
उरध झोली सबद सिंग्या प्राण जोगी पवन पियाला ॥८८॥
स्वामीजी कौण धूंई कौण पलीता, कौण अगनि कौण बलीता
कौण चौपड़ी कौण सारी कौण खेले ध्यान धारी ॥८९॥
अवधू धुनि धूंई प्रेम पलीता ब्रह्म अगनि काम क्रोध बलीता,
त्रिष चौपड़ी पचीस सारी, प्राण खेले ध्यानधारी ॥९०॥
दोहा—मन धरित निज ग्यान है सतगुरु दिया बताय ।
जन हरिदास हरि अघट है घटि घटि रह्या समाय ॥९१॥

॥ इति मन धरित जोग ग्रन्थ ॥ २ ॥

---

१ भिक्षा [illegible] २ अजपा।

## ॥ अथ मन मद विध्वंस योग ग्रंथ ॥२३॥

सत गुरु कह्या म आरम्भ करिहुं, अलख निरन्जन हिरदे धरिहूं ।
हर्ष सोग चिंता मन जाय, मिरघो[1] पकडि सिंघकूं[2] खाय॥१॥
मनसा घटा गहर जल पूरि, चेला पांच अगनि[3] मुख चूरि ।
पांणी जले मीन मन मरे, ऐसा आरम्भ जोगी करे ॥२॥
आसा नदि अपूटि बहे, अमृत झरे गगन रस रहे ।
नौसै नदी निवासी निहचल भई, आसा तृष्णा सूखी गई ॥३॥
आसण अधर पवन मन हाथि, सुरत जोगणी जागे साथी ।
परम ज्योति आनन्द अभ्यास, निरभे भया कालका नास ॥४॥
आसा के घरि चिन्ता बसै, काल रूपिणी जीवहि डसै ।
गंग जमन मधि बैठे जाय, तब जोगी चिन्ता कूं खाय ॥५॥
सत रज तिमिर[4] मोह तजि माया, मन निहिचल निरभै घरि आया ।
पूठा फिरह्या छाडि घट घाट, ज्ञान ध्यान गढ लग्यां कपाट॥६॥
त्रिकुटि कोटमें आसण मांडे, राजा तीनि दंड दै छांडे ।
खोली कपाट घाट घटलहै, पर हरि डाल मूलनिजगह है॥७॥
इन्द्रिय पांच पर[5] पंच करि घेरे, जोग मूल के धागे जेरे ।
जुगत विचारै अजरा जारै, गुर गम ध्यान निरन्तरि धरै॥८॥

---

१ कुबुद्धि २ ससार ३ विकाराग्नि चार प्रकार की। ४ तम (तमोगुण)
५ पांचों इन्द्रियों के प्रपच रूप हाथियों को घेरकर जोग मूल जो नाम स्मरण रूप रस्सी से जकड देव

भजसि गरीबी आपा हारै, मारया हार कहा ले मारै ।
घनै घरि बिस्वंभर कहाँ खाय, मन दूबै घरि रमा समाय ॥९॥
हारि जीति कामासा डारया, पाजी जीती हाव बिचारया ।
खेलण हार गया मुख गो१य, ताका पला न पकड़े कोय ॥१०॥
जोग मूल गहि लागी लाये, पैंडे पल न कांटा लाग ।
धूंई ध्यान ज्ञान की छाया, मुद्रा सबद निरन्तरि पाया ॥११॥
पांच तत्त की मढी संवार, मनक हाथ कालकूं मारै ।
सतगुरु कहै स सोई समझ, (तब) अगम गाय घर ही में सूझै ॥१२॥
अलख निरञ्जन साथी भरा, परम आग पद पूरा ।
कायर उलटि बाट सदा का तहाँ पहुँचे कोई सूरा ॥१३॥
ज्ञान गदा लै मन कुं मारै भाव अगनि दे लंका जारै ।
होम जिग अंतर धुनि होय, पाप पुण्य तहाँ लगड़ी दोय ॥१४॥
भवतो एक एक सूं लग्या, जब लग्या तब मन मन ठग्या ।
दीनदयालु सतगुरु की छाया, सहज समाधि परम पद पाया॥१५॥
पैंडा अधर उलटि परि धरै, नहीं घाट कटक का करै ।
(सारा मण्डल) पैंड घर सशि ऊंचा जाय, परम जोति में रहै समाय ॥१६

१ मग किया कर ।

मोलि मूलि ममता सबगई, अब तो गात और ही भई।
परम उदार अवगति कीदया, करता राज रैति सो भया ॥१७॥
जोग मूल का जांणे भेद, जनम न जुरा कंथ नहीं छेद।
छिपी बात अभि अंतरि लहे, सबद विचारि उनमनि रहे ॥१८॥
मन गहि पवन मेर गिरिचूरे, भंवर गुफा में आमण पूरे।
ससि हरके घरि आंणे सूर, सबद अनाहद बाजे तूर ॥१९॥
मन भया मगन परम सुखमांही, ज्ञान गुफा मन छाडै नांही।
अरस परस अनंद रसएक, हारि जीति की रहीन टेक ॥२०॥
त्रिवेणी तटि ताली लागी, मन थिर पवन सुखमनां जागी।
दसवें द्वारि बस्या मन जाय, बंकनालि अमृत रस खाय ॥२१॥
सुनि मंडलमे सींगी बाजे, मानूं घंटा दसूं दिस गाजे।
सहज पियाला भरिभरि पीवे, मन मति बला जोगी जीवे ॥२२॥
ब्रह्म अगनि सबही बन दह्या, तरवर एक अखंडित रह्या।
ता तरवर में मेरा वासा, परम जोति पूरण परकासा ॥२३॥
तहां काम क्रोध जोग नहीं भोग, मांनि अमांनि हरष नहीं सोग।
अलख निरंजन निरभैनाथ, राग दोष हेत नहिं हाथ ॥२४॥
राजन गीति अंग नहीं भंग, गृह कुटुम्ब बनिता नहिं संग।
ता दरबार लेखक को रहे, दिल मालिक सब दिलकी लहे॥२५॥
सबमें बसे सकल की लहे, मुख सूं फेरि जा बनहिं कहे।
वार पार नहीं अगम अगाध, तहां एकसाध कोई पहुंचे साघ॥२६॥

रसना मुख सीस हाथ नहीं पांव, घट नहीं प्रगट पैर नहीं भाव ।
रूप मरप भेस नहीं जहां, माया प्रगनि न म्यारे तहां ॥२७॥
काया जुरा देह नहि दीन जीवन जन्म पुष्ट नहि खीन ।
ताकि कीमति कोई कैसे कह, कहत कहत भोरा होय रहे ॥२८॥
मन हरिदास तहां काल न जाल, पुरष प्रम अनत प्रतिपाल ।
रमता राम निरंजनराय, प्रम सो मन तहां रह्या समाय ॥२९॥
(दिल मालिक खालिक साहिब मेरा मन हरिदास घर आयाचेरा ।
पकड़ी हाथ फिन छाडो मेरा, पड्या रहु पायांत नेरा ॥३०॥
( काल जाल न करै न बेरा )

॥ इति मन मद बिर्घ्वंस योग ग्रन्थ ॥२३॥

## ॥ अथ मन हट योग ग्रन्थ ॥२४॥

बांधा पकड़ी ऊभा रह्या, मन फिरि लागा झूठि ।
नीसांण्या न्यारां रह्या मन फिरि लागा मूठि ॥१॥
साच सबद मांने नहीं, झूठ तहां चलि जाय ।
मनसा बाचा कर्मणा, गनिका को ब्रत ताय ॥२॥
मन हमग्र पदि कूप[1]ज्यूं, रसे दिखावे छेह ।
बाई का गुण छाडिये, बहुधा का गुण लेह ॥३॥

---

1 स्व पिरुवाचि

गम तहां पहूंता नहीं, रही भरम की रेख ।
र का मारऱ्या मर[1]हगा, कर करि ना ना भेख ॥४॥
या का कादू[2] मख्या, कल्या सु निकसे नाहीं ।
रस परस होय मिलि रह्या, ज्यूं माखी गुड़ मांही ॥५॥
सिंध स्याल वन वन वसे, वस्ती सके न चूरि ।
वस्ती के बन बध्या, साध दहूं सूं दूरि ॥६॥
'साध बंध्या हरि अंबंव सूं, हरि बन्ध्या साथ के भाय ।
परम सनेही परम सुख, तहां रहे लव लाय ॥७॥
हरि सुमिरण मन हठ मतो, सो मै छाडो नाही ।
राम रतन धन अज बहै, ले राख्या मन मांही ।'८॥

१ हे मन तू कुंभार के कच्चे घट की समान जलके डाढते ही फूट जायगा कदाचित् स्मर्थ के सत्य आश्रय के विना भूटे हठसे छेद भी देवैगा इसलिये चञ्चलता छोडकर क्षमा गुण ग्रहण कर २ कीचमे लिपटे हुए। ३ शून्य वन में रहे वो वस्ती मे नही आसकते और ग्राम निवासी वन मे नही रहते अर्थात् साधुओं के कोई एक नियत स्थान का बन्धन नही नगर वन एकसा ही मानते हैं ४ हा साधुओं का वन्ध न एक हरी जरूरहैं।

(नोट) मै पहले नोटमें लिख आया हुं कि महाराज का सेव्य सेवक भाव सम्बन्ध और राम नाम स्मरणात्मक भक्ति सिधान्त है वोही महाराज ने इस मान हठ के अङ्गसे प्रतिज्ञा पूर्वक स्पष्ट करदिया है ।

रंक हाथि हीरा चढ्या, सत गुरु दिया बताय ।
गांठ में छाड्यो नहीं, छाड्या सर बस जाय ॥९॥
बादसाह बस करि कह्या, नामा केहां सुराय ।
छदाईगी गऊ बछ ज्यूं, मन के राम सहाय ॥१०॥
राम धणि सनमुखि सदा, सकल काल का काल ।
बादसाहन मौंक है, तूं मति पडै जंजाल ॥११॥
तब नामैं मन हढि कीया, गहि गुर ज्ञान बिचार ।
मैं हरि सुमिरण छाडोंनहीं, सिरपरि समथ सिरजनहार ॥१२॥
पैसा पाया पाम्यांच कूं देवल फेरया देह ।
माथा बस मेदे नहीं, छानि छपाई एह ॥१३॥
सेज मंगाइ चलां सं, सो पडी जिन जलमें जाय ।
तब नामै मन हठ किया, मुइ जिवाई गाय ॥१४॥
एक पोहि हिन्दु तुरक एकै दास कबीर ।
मन हठ ले ऊमागया, सिर पर साहस धीर ॥१५॥
टेक रहो तन मति रहो, टेक गयां पत जाय ।
ऐसी टेक कबीर की, पौंडे रहे बजाय ॥१६॥
पुनि बात सुण्यौं प्रह्लादकी, कहि समझाऊं तोय ।
मन हठकरि गोविन्द भज्या, पकड न लागा कोय ॥१७
गिरि धवा ज्वाल ते बच्या, विघ्न गया पचहार ।
नहीं साप कूं छाड्यो, पौडी परव बिचार ॥१८॥

ध्रू बालक कैसी करी, धर्‍या न कोई भेख ।
मन हठ करि मांड्या मरण, जहां हट तहां देख ॥१९॥
अगम शब्द शुकदेव सु पाया, शंकर कह्या सुणाय ।
तन दीया राख्या सबद, यूं मन हठ सूं घर जाय ॥२०॥
इन्द्र लोक सूं ऊतरी, रंभा करि सिंगार ।
तब सुकदेव न्यारा रह्या, धस्या न नहती धार ॥२१॥
जनक जनक मन को कहै, अमरलोक सूं साथ ।
जनक मता कछु और था, दुःख सुख रहत अनाथ ॥२२॥
पाव अगनि मुख ऊपरै, जनक कहावै सोय ।
यहा दाधा वहा दाझिहै, यह भरोसा मोय ॥२३॥
जाय मछंदर पडि रह्या, माया १तरकी छांह ।
गोरख कछु भोला नथा, जिन गुर काढ्या गहि बांह ॥२४॥
राज पाट तज भरतरी, किया आंपणा काज ।
जोग ध्यान राजा लहै, तौ पै क्यूं छाडै राज ॥२५॥
हस्ती घोडा गांव गढ, सुत वनिता परिवार ।
कहै माता मैंणावती, तजि गोपीचन्द यहु खार ॥२६॥
यहु सुख विषसम देखिये, लाधी सौंजन हार ।
अगम वस्त अंतरि बसै, उलटा गोता मारि ॥२७॥

१ कामरूदेश

पल छाड्या निरपख भया, गहि गोपीचंद गुर ग्यान ।
सुनि मंडल में रमि रह्या, अगम ठौड़ अस्थान ॥२८॥
छत्र सिंघासण छाड़ि भया, ऐसी व्यापी आय ।
माया संग साईं मिल्या, तो [1]बालख छाड़ि क्यों आय ॥२९॥
सीस तुलाइगी लगी दया, ऐह रंक के ईद ।
पत्थर दाबे विछाय करि, साईं भज्या फरीद ॥३०॥
[2]रतन पारखू मन हठ किया खोजया सारी भेख ।
तब पायो गोरख मिल्या ए मन हठ का गुण देख ॥३१॥
अन्य नाम मन हठ भयो मन के मन हठ होय ।
एकै मन हठ हरि मिले, एकै पड़दा होय ॥३२॥
काम क्रोध में रैं रती, पावै सकवा न धूरि ।
या मन हठ मन पूछिए, हरिसूं पड़िए दूरि ॥३३॥
गुरु सीसे गोविंद भजे, निरमै निज घरि आय ।
या मन हठ मन नीपजे, कोई पड़े न काय ॥३४॥
काल कहर गरभउ फिरै दिन दिन व्यापे रोग ।
जन हरिदास हरिभजन बिन, जहाँ तहाँ विपति वियोग ॥३५॥
जन हरिदास गुरमुख तहाँ, जहाँ न हरि च हेत ।
ये नर लग्या न हरि हठि, जम मारे दंड देत ॥३६॥

---

१ एक मुसल्मान-बादशाह था २ एक राजा जो साधुओं की परीक्षा करता था ।

जन हरिदास गोविन्द भजो, भूलां भली न होय ।
अब भूलां ते फिरहगा, ऊजड़ पैंडा होय ॥३७॥

॥ इति मनहट योग सम्पूर्ण ग्रन्थ ॥ २४ ॥

## ॥ अथ मन पर संग योग ग्रन्थ ॥ २५ ॥

मन पर संग सुणो हो साधो, तुम सूं कहुं सुणाय ।
कबहुंक मन बीषिया तजै, कबहुक विषफल खाय ॥१॥
मनसा का लाडू करै, कछू न आवे हाथ ।
मन भूखो भरमत फिरे, गुण इन्द्री के साथ ॥२॥
या मनकी या रीति है, जहां तहा चलि जाय ।
कबहुक लौटे [१]छार मैं, कबहुक मलि मलि न्हाय ॥३॥
यहु मन पुरुष नारी सुत मात, यहु मन बंधू यहू मन तात ।
यहु मन मूरख यहु मन देव, या मनका कोई लादै भेव ॥४॥
यहु मन शक्ति रूप होय जाय, यहु मन भजै निरंजन राय ।
तुला बैसि कंचन दे काटि, यहु मन विकै निडांणै हाटि ॥५॥
यहु मन दाता होय दतकरे, यहु मन भूखा मांगे मरै ।
आरम्भ करे[२] रहे निरदंद, यहु मन मुक्ता यहु मन बंध ॥६॥

१ भस्म २ दान

यहु मन द्वादश[1] पैठा करे, पसु ज्यूं खेत बिरायां चरै।
आप आप कू राखै पास, यहु मन करै आप का नास ॥७॥
लख चौरासी घट[2] यहु मन धरे, पलक पलक में जामें मरे ।
कबहुक भूखा कबहुक धाया, मनही मन कूं चेटक लाया ॥८॥
यहु मन साह चेद ठगराम तकर ध्यान सिधगै[3] बाम[4] ।
स्याह लाल पीलो मधि रेख यहु मन करे फिरघ्टा[5] भेख ॥६॥
यहु मन तर घर यहु मन छाया यहु मन विरक्त यहु मन माया ।
राति[6] धोस मन रहै उदास, यहु मन करे गुफामैं वास ॥१०॥
यहु मन सुरत असुर अतीत, बरख रींछ मिरगा मय मीत ।
सत गुरु कहैस यहु मन करे, छाडे कुपथ सुपथ पग धरै ॥११॥
साध सबद मनैं सुखसार, गा मन का कछु अगम विचार ।
यहु मन रन बन लहर यहु मन अमृत यहु मन जहर॥१२॥
तीरथ बरत कर सम भाय, यहु मन अगम तहां पतिजाय ।
यहु मन अन्तरि बजरी करे सबद कुरस कृपा विधि करै ॥१३॥
पैसता अनत न आवे बोह[7], कहौ कहां सो दीवे बोह ।
जोग ध्यान धुनि यहु मन धरे, यहु मन मख पर्वोतरि करै ॥१४॥

---

१ ब्रह्मरन्ध्र २ शरीर ३ हाथी ४ घोड़ा ५ विरक्त ६ रात दिन । ७ पार

जन हरिदास के याही रीति, अरम परस हरिहीसूं प्रीति ।
जन हरिदास या मनसूं डरै, राति घौस हरि सुमिरण करै॥१५॥

॥ इति मनपर संग योग ग्रन्थ ॥ २५ ॥

॥ अथ मन मत प्रकार योग ग्रन्थ ॥२६॥ छप्पय छंद

फिटि फिटि रे मन चिकटि, बहुत नाटक कहां नाचै ।
कबहूं दाता होय दत करै, कबहु याचक होय जाचै ॥१॥
मन जोगी जंगम शेष, मन बहौ भेष बणावे ।
दूधा धारि होय फिरे, भरमै दुख पावे ॥२॥
मनगहि बैसे मौन, निज[1] सुन्न की खबर न पावे ।
[2]माथो मूंछ मुडाय, छाया बहु तिलक बणावे ॥३॥
चोका देवे चाहि, रसनां के हाथि रन्धावे ।
मन विषीया संगि रमे, मन माया सूं लावे ॥४॥
मन सूरा तन सबल, मन मुख मोड़ करि भागे ।
मन ईन्द्रिय आधीन, दौड़ि काया गढ लागे ॥५॥
मन बहौ जोधा बलि वन्त, मन बहौ रंग त्रिरंगा ।
मन रूपक प्रज्वल लै, दीप ज्यूं जले पतंगा ॥६॥

१ स्थान २ बनावटी साधु वेष

मन गिरवर मन कूंप, मन गम्भीर मन गैरा ।
मन भभा मन थोर, मन सीतल मन चन्दा ॥७॥
मन नीकै मन नीच, मन फलै मन फूलै ।
मन फिरि मरै पियास, (मन) परम सुखसागर झूलै ॥८॥
मन मारै मन तिरै, मन लै पारि उतारै ।
मन चौरासी का जीव फेरि ऊंडै दह मारै ॥९॥
मन अंबुक मन गृद्ध, कौवा का रूप धरावै ।
मन सूकर मन स्वान, मदा पलै धाइ आवै ॥१०॥
मन पांपी मन नाथ, मन कौडी मन हीरै ।
मन कंचन मन कांच, मन [1]मुरीद मन [2]पीरै ॥११॥
मन मैलो मन निर्मलो, मन साचो मन झूठो ।
मनन[3] कूं मन नीच, मन उत्तम मन ऊंचो ॥१२॥
मन मोती मन सीप, मन बड़ो दीप दिखावै ।
मन [4]सलिता मन सिंधु मन फिरि मनहीं समावै ॥१३॥
सुख मनि उलटि फेरि, साच मन निकटि बतावै ।
बङ्कनालि विश्राम, फेरि नाभी सूं आवै ॥१४॥
पांपी मांही पैठी, अगम का हीरा ल्यावै ।
मन फिरि ग्रासै काम, क्रोध की ठौर उठावै ॥१५॥

---

१ चेला २ गुरु ३ विचारहु । ४ नदी

मैं तैं गरब गुमान, निमख तहां रहण न पावे।
गगन[1]मंडल मठछाया, अगम सूं सुरति लगावे ॥१६॥
आगे अगाभै मीर, गगन रस कूं उलटावै।
जन हरिदास मन विकटहै, वहोत रूप करि जाय ॥
पकड़ीजे तो परम सुख, ढीलो छोड्यां खाय ॥१७॥

॥ इति मनमत प्रकार योग ग्रन्थ ॥ २६ ॥

## ॥ अथ मन उपदेश योग ग्रन्थ ॥ २७ ॥

कबहूं फाड़े कबहुं जोड़े, कबहूं सीवे कबहूं तोड़े ॥१॥
कबहूं सोवे कबहूं जागे, कबहूं जोग ध्यान सूं लागे ॥२॥
(कबहूं) अलप अहारी थोड़ा खाय, कबहु कट्का लेइ अघाय ॥३॥
कबहुंक हेत प्रीति अणागगी, कबहूं सुरति निरंजन लागी ॥४॥
कबहूं चिन्ता के घरिरहै, कबहूं अटकि अपूठा रहे ॥५॥
कबहूं ज्ञान ध्यान उरधारे, कबहुं उलटि आपकूं मारे ॥६॥
कबहू जरयां अजरा जरे, कबहू मन्नद कह्यां खिजि मरै ॥७॥
कबहूं पांचु इन्द्री दबे[2], (कबहूं) मेर तेर ले ऊंचा भावे ॥८॥

---

१ आत्म कमल २ वश करै।

कबहू मोह बिरह पछताय, कबहूं साधु संगति चलि जाई ॥९॥
कबहूं त्रिविधताप में बसै, कबहूं ब्रह्म अगनि में धसै ॥१०॥
कबहूं हरि तरवर तहां आई, कबहूंक बैठे पूठा भाई ॥११॥
कबहूं कल्पो के पैंडे आवे, कबहूं अगम पियाला पीवै ॥१२॥
कबहूं हरि छीलि रस रीति कबहूं राम भजन सूं प्रीति ॥१३॥
कबहूं काया कामयि कसै, (कबहूं) कायाऊं मिलि खेलेहसै॥१४॥
कबहूं चन्द सूर सम करै, कबहूं ध्यान अलख का धरै ॥१५॥
कबहूं त्रिवेणी संग न्हावे, गुर गम वस्त अगोचर पावे ॥१६॥
(कबहूं)उल्टा खेल काया सब सोध, सुन मंडल में पवन निरोधे॥१७॥
हठ करि मर न बैसे हारि, अगम ध्यान धरि सहज बिचारि ॥१८॥
[1]षट् चक्रमें एके डोरी सत गुरु सबद् गया मन चोरी ॥१९॥
एक मेक अन्तर कछु नाहीं, पूरण ब्रह्म बसे मन माहीं ॥२०॥
चक नाभि अमृतरस खाय, (मन) माया छाया बसै न जाय ॥२१
मेर दंड मधि डोरी लइ ब्रह्म अगनि काया [1]धन दहै ॥२२॥
दसवें[1]द्वारि बसे मन रामा सब्द अनाहद बाजै बामा ॥२३॥
जन हरिदास मन बस भया, गया भरम सब भोर ।
एक मेक सूं मिलि रहा (तप) पाइ निर्भै ठौर ॥२४॥

॥ इति अमरपदेश जोग ग्रन्थ ॥ २७ ॥

१ मूल चक्र गुदा चक्र मणि चक्र मना हृदय चक्र विशुद्ध चक्र पंच चक्र। आरम्भ वर्मे सूक्ष्म शरीर २ ब्रह्म रंध्र

## ॥ अथ ब्याहलो योग ग्रन्थ ॥ २८ ॥

दिखण[1] देस सहर कुंदनपुर, पवणि[2] छतीस सुखारी ।
राजा[3] भलौ लोक नित निरभै, कन्या[4] राज कँवारी ॥१॥
रांणी[5] कहे सुणो राजाजी, बिलमन कीजे काई ।
बाई बड़ी बड़ो वर हेरो, आदू आदि सगाई ॥२॥
निज[6] पुरि नगर बसै कंवला[7] पति, सकल सिरोमणि स्वामी ।
वरवे आदि बिघन नहिं बेगम, घटि घटि अन्तर जामी ॥३॥
घटै न बधै सदा ज्यूं का त्यूं, बिरचि न बुरो लखावे ।
राम भरतार परम सुख दाता, सो म्हारे मन भावे ॥४॥
सकल भवन करता करुणा मय, बिथा न व्यापे कांई ।
राजा कहै सुणो[8] रुकमैय्या, तहां दीजे रे बाई ॥५॥
रुकमईयो कोप कह्यो न माने, आन सगाई हेरे ।
राजा कहे देखि वर बरस्यां, अटकि अपूठा फेरे ॥६॥
चंदेरी सिसुपाल असुर अरि, लगन तहां लिखि दीया ।
हैवर गैवर पायक पाला, बहो जोधा संग लीया ॥७॥
क हरि कह्यो वस क्यूं चरिहै, आंणयो असुर बुलाई ।
जीवण नहीं मरण सिर ऊपरि, जीम पांड विप खाई ॥८॥

---

१ शरीर २ छतीस पूर्ण इन्द्रिय ग्रामादि ३ जीवात्मा ४ सुमति ५ बुद्धि
६ शरीर ७ परमात्मा ८ मन

[1]सांसो सिसपाल चन्देरी चिन्त्या, सो वर वहां वसीजे ।
गरब गुमान देत बहो तेरी, ममता को रस पीजे ॥९॥
परम सनेही प्राण नाथ हरि, सद गति सदा सगाई ।
भ्रमल पुरुस भगति वर सिरपरि, कृत्रिम वर्यों न जाई ॥१०॥
क्रितम तिको सकल सवि विणसे, अविनासी मारो साँई ।
आदि अन्त हरि सदा सनेही प्रीत बसे वा माँही ॥११॥
विप्र बुलाय भमला पाई लागी, राम तहां चलि जाई ।
मीम मलो काँय दोस न दीजे, रुकमैयो दुख दाई ॥१२॥
अब हरि [2]रस्ते हाथ तैं छाडो, पति म्हारा है थारी ।
व्याकुल भई [3]भावनिवि हेरूं, दरसो देव मुरारी ॥१३॥
आसया विरह भीव मे भारे, क्योंति काम न भाव ।
रुकमैयी रोस कयो नहीं मानें, मूंढो मरम उठावे ॥१४॥
घड़ी महूरत भाअसु दिन दिन पतिवरता पै भास्व ।
चीरि लिखी विप्रेने दीन्ही, रखे विप्र विधि राखे ॥१५॥
मन सुध गयो विप्र वेगमपुर, खिस्या सलेख पहुचाया ।
देख देख हरि कागद वांच्या, पत्रो विप्र मैं भाया ॥१६॥
साथा सन्द राखि सिर ऊपरि, आनन्द अंगि न मावे ।
(भासया) हरि सुख देरि बधाई मांगे, मेरी भान वतावे ॥१७॥

१ संसार । २ हाथ । ३ मार्ग

अनन्त कोटि ब्रह्मंड मौंज संगी, इन्द्र कुबेर घणेरा।
ब्रह्मा अनन्त महादेव अगणित, चन्द सूर बहौतेरा ॥१८॥
ए नौ नाथ सिद्ध चौरासी, सुर तेतीस मनाया।
नारद मुनिजन साधु सकल सगि, हरि ईसा भेदसूँ आया ॥१९॥
सील सन्तोष सत दया सबूरी, करम कपूर उडाया।
यूँ सै ऊठि [1]सहैलो दौड्या, पवन तूरि चढ काया ॥२०॥
आरती करि करि चरण पलोटे, [2]कैं चरचैं कै गावे[3]।
प्रेम प्रीति चन्दन घस बहु विधि, परसि परसि सुखपावे ॥२१॥
साथि सखी ले खेलण के मिसि, निजवर हेरण आई।
बड़ कंवारी हरि देखि निजरभरि, नख सिख रह्या समाई ॥२२॥
वड़ विसराम तहां हरि उतरें, आतम अन्तरि नेरा।
सखी सहेली मंगल गावे, मनसा चांवर फेरा ॥२३॥
नैणां राम वसौ हरि वैणा, सकल सुखां सुख लाधा।
सुर तेतीस घेरि घर आया, सतगुर डोरा बांधा ॥२४॥
अरधैं उरधैं चोंरी चर चै, तहां हथलेवा दीया।
अति उछाह अबला मन आनन्द, हरि सूं फेरा लीया ॥२५॥
रली रंग राग नाना विधि, सुनि मंडल के छाजे।
पति सूं प्रीति जीति गुण दूजा, [4]वेणु गगन में वाजे ॥२६॥

१ सनमुख २ कई एक पूजा करैं ३ स्तुतिकरैं। ४ वशी धुनि

ज्ञान गुलाल असरि यहाँ करयाँ, भरय अबीर उडाया ।
भाज सखी हरि महल पधारया, मन भारे मन माया ॥२७॥
सुन्दरि सेम साथ उर अन्तरि, समता सौड़ि विछाई ।
रोम राई तहां भाप बिराजया, सो सुख कथा न जाई ॥२८॥
गाव गुफा में गम करि राखु, सेज सनेही आया ।
बिन दीपक दहु दिस उजियारा, भांगणि चोक पुराया ॥२६॥
घरि घरि मंगल चार सदासुख, बर बरयो बनमाली ।
सुख में सीर अखिल अविनासी, परम जोति सुं ताली ॥३०॥
परयि परसि हरि संगि करि लीन्हीं पति की पलोन मेलूं ।
सनहरिदास निस दिन अति आनन्द, ता आनन्द में सेलूं ॥३१॥

। इति ब्याहलो योग ग्रन्थ ॥ २८ ॥

॥ अथ टोडरमल योग ग्रन्थ ॥ २६ ॥

अनहद बाणि बजाय, टोडरमलजी तोजी ।
हरि भजि उतरे पार, टोडरमलजी तोजी ॥१॥
मनगहि पवन अगम गम किया, परम सनेही पाया ।
पांच सखी मिलि मङ्गल गाये, भांगणि चौक पुराया ॥२॥
चित चौकी हरि चरणां राख्या, कंवल त्रिदासण दीया ।
इला पिंगुला अर धारमी प्रम कलस उरि लीया ॥३॥

गगन मण्डल मै रच्यो मांड हो, पाच तणी ल्यौ तांणी ।
आत्म पर आत्म हथलेवो, पांच संगि खेले प्रांणी ॥४॥
जन हरिदास हरि अरसपरस होई, नैंनो नेह वंधाया ।
जाकी थी सो महल पधार्या, राम सनेही आया ॥५॥

॥ इति वोडर मल योग ग्रन्थ ॥२९॥

## ॥ अथ अमृत फल योग ग्रन्थ ॥ ३० ॥

असलि भाव जब अन्तरि आवे, ज्ञान विचार [1]विवेक बतावे ।
दया सबूरी जरणां जोग, त्रिविध तापका लगै न रोग ॥१॥
सील सन्तोष पुनि अजपा जाप, पर हरि गया पुरातम पाप ।
सत अर सहज पवन मन हाथी, मनसा पांचों चेला साथी ॥२॥
इत उत सके न कोई फूट, मूल गया ममता का छूट ।
समता सुबुधि विद्या मन साथ, भगति जोग दोय लाइ हाथ ॥३॥
काम [2]गयंद [3]चींटि फिरि घेर्या, पकड़ि सील सांकलसूं जेर्या ।
निरभ भया नगर में राज, [4]तीतर के मुखि देख्या [5]बाज॥४॥
पवन पियाला अमृत पान, एकादसी अखडित ध्यान ।
हेत भाव प्रेम का वन्ध, मनका छूटि गया सब दंद ॥५॥

१ विज्ञान २ मस्त हाथी ३ भक्ति ४ आत्मक मन ५ मन

सतगुरु एक [1]अमृत फल दीया, सो हम हत प्रीति मूं लीया ।
मीठा अजब अकल अभिमाय, ताकी [2]फंक दिया सब खाया॥६॥
यहु अमत फल आप होय, ता का पता न पकड़े कोय ।
पेंडा अघर अपूठी चाल, अब के सतगुरु किया निहाल॥७॥
हारि जीति का पासा गया, ऊजल निर्मल निरभै भया ।
आंखि बुजि आमे सो जीवे, सहज समाधि सदा रस पीवे॥८॥
अजपा जाप अजन बसि आंम, [3]ऊभड़गया पस्था फिरि गांव[4]।
सो अमृत फल हिरदे धास्या, हिरदै धारि कालम मास्या ॥६॥
माया दीन्हों मोक्षिन लहिए, सर बसवे ता का होय रहिए ।
प्रासे शुरा अवधि तन छीजे, तन मन दे खाभे त्यूं जीवे ॥१०॥
रूप न रेख भार नहीं पारा, या फल का कछु अगम विचारा।
तरवर डाल फूल फल नांही, साखीभूत बसे सब मांही ॥११॥
मात पिता गांव नहि ठांव, अलख निरंजन ता को नांव ।
पिया नगर बसै सबलोग,(मनका)छूटि गया सब सांसा सोग॥१२॥
जन हरिदास अब ऐसी भई, मनसा उलटि अगम तहां गई
[5]स्योकीडोरि सुरति मधिधागा मन निहचल निरभैसुखलागा॥१३

॥ इति अमृत फल योग ग्रन्थ ॥ १० ॥

---

१ राम नाम २ फांकी देने से ३ संसार की तरफ ४ मण्डल, परवा ५नाम स्मरण ।

## ॥ अथ ज्ञान उपदेश योग ग्रन्थ ॥ ३१ ॥

पांच तत्व गुण तीन, घात तहां सात समोई ।
जाग्रत सुपन सुखोपति, पांच ज्ञान यंद्री पचीस प्रकृतलोई॥१॥
हेत अहेत अलसाक, निद्रा चित चन्चल निहिचल नांही ।
पांच करम इंद्री दुख सुख, मन प्रांण वसै ता मांही ॥२॥
राग दोष अभिमान, डिंभ पाखण्ड अहंकारा ।
काम क्रोध भ्रम मोह, आसा हठ लोभ अज्ञान अंधारा ॥३॥
सीत उपन [१]खुध्या तृषा, मांनि अमांनि पख पोखे ।
ममत मनोरथ सोच पोच, संगि सांसों सोखे ॥४॥
कुबुधि अविद्या कलपना, चिंता तृष्णा तहां लहिए ।
चारि अवस्था खट् चक्र, घटसें ओ घट यूँ कहिए ॥५॥
घटमें गोरख ज्ञान, ब्रह्मा बिचार, हणवत हेत, विष्णु विवेक, भरथरी भाव, महादेव मन, जलन्धरी पाव जोग, नारद नेह, लखमण कंवार लखण बत्तीस, सुख देव सन्तोष, गोपीचन्द आनन्द, सींगी रिष सील, चिरपट चित, प्रेम प्रह्लाद, परम गुर प्रकास, [२]धू धुनि, अजैपाल अरथ, जनक [३] जांणपणो, चौरंगीनाथ चौथी दसा, अम्बरीक अचाहि, सती कणेरी साच,

---

१ क्षुधा २ ध्रुवके समान अचल ३

सनक स्वाति, नाग अर्जुन भेद, सनक सनन्दन सहज, हठवासी हठ. [1]नेम कंवार निहकम, [2]हालीपांव होतम, [3]निहकम्प कबीर, मींडकी पाव परमोद, नाम देव नेठाव, धूंधली मल ध्यान, रहति रैदास, औघडनाथ अघट. पय पीपौ पृथ्वीनाथ प्रांण समझि सोफी, रहणी रामचन्द्र, दत्त दया, मगरधन मौनी, सब भरत भेद, घटि घटि गोरख ग्यान सुधौ सबघट की देखे, दया करे ताहि कहै, और के पद न लेखे, नाथ पकड़े हाथ, पकड़ि हरि चरखां राखै, मत्रो निरञ्जन नाथ, सबद सतगुरु यूं भाखै, पिंड ब्रह्मंड में दोय सिध ग्यान भरत गोरख कहिए, जन हरिदास भ्रम छाड़ि ग्यान गोरख तहां रहिए ॥

॥ इति ग्यान उपदेश योग ग्रन्थ ॥ ११ ॥

॥ अथ वार योग ग्रन्थ ॥ १२ ॥

वार वार मन कूं परमोधूं, मन गहि पवन सहर सबसोधूं॥
आदित अगम ग्यान उरिधारे, सातवार का भेद बिचारे ॥१॥

---

[1] निष्कर्मी २ मायी ३ निष्कम्प ।

जोग मूल गहि जोगी जागे, धुनि मे ध्यान तहां मन लागे ।
हरि सुख वार पार मधि नाहि, निर्भै घर लाधा घर माही ॥
सोमवार सहज मन जागे, पवन निरोध आरम्भ लागे ।
अरध उरध मधि खूंम चढावे, वहोत भांति सूं वेगर लावे ॥
काया करम मैल सब खोवे, धूप लगावे अम्बर धोवे ॥२॥
मङ्गलवार वार है नीका, और सकल रस लागे फीका ।
मनगहि पवन अटकि घरि आवे, गङ्ग जमन मधि पैडा पावे ॥
वरषै अमी अखण्डित धारा, सुखमनि सींचे वाग हमारा ॥३॥
बुधवार अगाभै वुधि वाणी, अगमवस्त अभि अन्तरि जांणी ।
त्रिवेणी तटि ताली लागी, इन्द्री पांच सुबुधि ले जागी ॥
वंकनालि अमृत रस पीवे, परचै लागा जोगी जीवे ॥४॥
वृहस्पति विषवनमांहि न रहिए, विषफल खाय[1] वहोडी दुख सहिए ।
बिषवन वार पार मधि नांही, सुरनर असुर बसै ता मांही ॥
पैंडा अधर परमगति भूला, पूठा फिरे न जम वन्ध सूला ॥५॥
सुक्रवार सहज घरि लाधा, नीर न भलकै पारा वाधा ।
मार अठारा[2] पसरि न पोखै, नभ वहणि पवन धरती नहिं सोखे ॥
निरभै भया भरम सब भागा, [3] ल्यौ की डोरी उनमनि लागा ॥६॥

---

१ मार घार २ फराल ३ स्मरण ।

[1]थावर थिर सतगुरु समझाया, पुरष अप्रस तहां कासन काया ।
परम जोति परकास बिराजै धुनि मयखमें सींगी बाजै ॥
सो धन सुन्न कुपथ का हीरा। देखि देखि मन राखूं धीरा ॥७॥
सात वार का भेद विचारूं पैंड चलूं न बैठा हारूं ।
जो घट घाट तहां मन आवे भया [2]अपक पद नहिं लागे ॥
जन हरिदास सतगुरु की छाया, सहज समाधि परमपद पाया ॥८॥

॥ इति वार योग ग्रन्थ ॥ ३२ ॥

॥ अथ हंस प्रबोध योग ग्रन्थ ॥ ३३ ॥

स्वामीजी पड़दा कौंण परम निधि भाडा, कहाँ लेखि दुखपाव ।
पहरया सांग सांच नहिं दरसे, सो फिरि कहां समावे ॥१॥
अवधू त्रिविध तापमें झूले खेले, परम भेद नहिं पाया ।
अन्तरि अगनि गोपी ज्यूं कीन्हीं, पखा देखि [3]दुराया ॥२॥
स्वामीजी कांटा कौण कहांथें लागा, कौण सूई ले काढ ।
वांणी कौण अगम घरि खेले, [4]मर कहां ले बाढ़ै ॥३॥
अवधू कांटा कुबुधि गल्या उर अन्तरि, ज्ञान सूई ले काढै ।
वाणी ब्रह्म अगम घरि खेलै, भर गगन सुखि बाढ ॥४॥
स्वामीजी [5]उदबुद कपा कहा कही बरनूं त्रिविधताप की छाया ।
दिष्टि पड़ै पथि निकसे नांही, या कांटे सब खाया ॥५॥

---

१ अविचार २ निर्मल ३ छिपाया ४ मेरुदण्ड ५ अद्भुत

अवधू सोपा भूका भार उतारे, भैरू का मैं न्यारा ।
अनहद सबद एक रस अन्तरि, छांडि गया पूजारा ॥२२॥
त्रिविध ताप तिण तूल तरक तजि, मूल कवल दल फूलै ।
ज्ञान चक्र ले [1]अरिदल जीते, त्रिवेणी संगि झूलै ॥२३॥
स्वामीजी कौंण जोग तामें मन निरभै, रोग रती भरि तोडे ;
आसण कौंण कहां सो बैठा, सुरति कहां लै जोडै ॥२४॥
अवधू मन निहचल निज वस्त बतावे, रोग पलटि होय जोगी ।
ज्ञान तखत बैठा रस पीवे, परम सुनि रस भोगी॥२५॥
स्वामीजी आतुर छाडि अगमघरि खेलै, अंतरि अलख लखावे।
ता का रूप कहां धूं कैसा, समझि बिना सुख नांवे ॥२६॥
अवधू हरि परस्या तबही मन निरभै, कै हरि परस्या नांही ।
उनमनि लागी भया मन हीरा, [2]बहोडि न व्यापै कांई ॥२७॥
सतगुरु सबद साच करि मानौ, सतगुरु साच बताया ।
[3]ब्रह्म जीवका ज्यूं है मेला, त्यूं सतगुरु समझाया ॥२८॥
[4]जलमं अगनि अगनिमें जलहै, सब कूं दीसै पांणी ।

१ शत्रु समूह ( कामादि ) २ फिर ३ जीवमें ब्रह्म ब्रह्म में जीव है ४ जीव ही दीखता है जब ज्ञान रूप अग्नि की ज्वाला प्रगटी तो ब्रह्मरूप ने जल रूप (अहप्रत्यय विशिष्ट) जीव का सोखन किया तव जल में जो विशिष्ट जीव रूप (ममै वाशो जीवलोके) ब्रह्माग्नि ब्रह्म रूप हो गया एसे हो दावाग्नि भी जानों ।

(नोट)–यह साखी संसार और जीव पक्षमे तथा अन्य-में भी चरितार्थ हो जाती है परन्तु ऊपर की साखी जीव का यूं है मेला) को देखते हुवे जो अर्थ प्रतीति होवा लिखा है ।

स्वामीजी दीरघ घटा कौंण मुखि सोखै, बादल बिचन बिछावै।
साध समन्द अखतिरण कठिन है कैसे परचा होवै ॥१३॥
अवधू मनसा घटा, पवन मुख पीवै, मोह मनोरथ मारै।
मनगहि पवन गवन बेगमपुर सुरति सहज धरि धारै ॥१४॥
स्वामीजी कौंण वस्तु कर से गहि डार, प्राण कहां सुख पावे।
मन कूं कहां कसै कंचन ज्यूं सोल्है कला दिखावे ॥१५॥
अवधू गरब गुमान परख तज पूरे, अरथ अबीर खिडावे।
मन कूं अगम अगनि में होमें सुषुमि सुहागा लावे ॥१६॥
स्वामीजी कौंण घटे तब कौंण प्रकासे नौषा मगति न भावे।
सीतल ठौर सदा रस पीवे, निर्मै निज घरि आवे ॥१७॥
अवधू रजनी घटत उदै भया [1]घर [2]दोय दोय घरम दुराया।
खले प्रांण निगमतें आपे, निज तरवर की छाया ॥१८॥
स्वामीजी जोगी कहां कौन रस छाडै कौन जड़ी ले जीवे।
कौंन गुफा म निसदिन खेलै, कौन पियाला पीवे ॥१९॥
अवधू निरभै नौ दरबार न आवै, अमर जड़ी लै जीवे।
ज्ञान गुफामें निसदिन खेलै, अगम पीयाला पीवै ॥२०॥
स्वामीजी सब [1]अग मांहि मढी बिराजै, सुर तैंतीस पिछाणै।
पार्षद के सिरि चोट लगावे, मंसा रासे थांयँ ॥२१॥

१ [illegible] २ [illegible]

अवधू सोपा भूका भार उतारे, भेरू का भें न्यारा ।
अनहद सबद एक रस अन्तरि, छाडि गया पूजारा ॥२२॥
त्रिविध ताप तिण तूल तरक तजि, मूल कंवल दल फूले ।
ज्ञान चक्र ले [१]अरिदल जीते, त्रिवेणी संगि झूले ॥२३॥
स्वामीजी कौण जोग तामें मन निरभै, रोग रती भरि तोडे ;
आसण कौण कहां सौ बैठा, सुरति कहां लै जोडे ॥२४॥
अवधू मन निहचल निज वस्त बतावे, रोग पलटि होय जोगी ।
ज्ञान तखत बैठा रस पीवे, परम सुनि रस भोगी॥२५॥
स्वामीजी आतुर छाडि अगमघरि खेले, अंतरि अलख लखावे ।
ता का रूप कहां धूं कैसा, समझि बिना सुख नांवे ॥२६॥
अवधू हरि परस्या तबही मन निरभै, कै हरि परस्या नाही ।
उनमनि लागी भया मन हीरा, [२]बहोडि न व्यापे कांई ॥२७॥
सतगुरु सबद साच करि मानौ, सतगुरु साच बताया ।
ब्रह्म जीवका ज्यूं है मेला, त्यूं सतगुरु समझाया ॥२८॥
[३]जलमें अगनि अगनिमें जलहै, सब कूं दीसै पांणी ।

---

१ शत्रु समूह (कामादि) २ फिर ३ जीवमें ब्रह्म ब्रह्म में जीव है सब कू जीव ही दीखता है जब ज्ञान रूप अग्नि की ज्वाला प्रगटी तो ब्रह्मरूप अग्नि ने जल रूप (अहप्रत्यय विशिष्ट) जीव का सोखन किया तब जल में जो माया विशिष्ट जीव रूप (ममे वाशो जीवलोके) ब्रह्माग्नि ब्रह्म रूप हो गया और एसे हो दावाग्नि भी जानों ।

(नोट)—यह साखी संसार और जीव पक्षमे तथा अन्य-पक्षों में भी चरितार्थ हो जाती है परन्तु ऊपर की साखी (ब्रह्म जीव का यूं है मेला) को देखते हुवे जो अर्थ प्रतीति होता है सो लिखा है ।

प्रकटी ग्यान अगनि जल सोस्या, तब अगने अगनि समांणी॥१९॥
या तो अजर कहो क्यों जरिए, सुण्या बिना क्यूं भावे ।
पांणी अगनि किसी विधि सोखे, मन प्रतीति न आवे ॥२०॥
सतगुरु सबद अगम की पैड़ी, ता चढि झंपो पारा ।
काया कष्ट अगनि में जारया, तब जलि बलि मरा अंगारा॥२१॥
स्वामीजी सन्जम कौण कहां घसि भूखे धोति कौण मंगावे ।
निरभै डोरी कहां ले राखे कौण कलस भरि ल्यावे ॥२२॥
अवधू संजम सील ग्यान घसि भूखे, धोती ध्यान लगावे ।
सुखमनि डोरी गगनमें रोपै खिमा कलस भरि ल्यावे ॥२३॥
स्वामीजी कौण बस्त जामूं मन परसे, कैसे चोका देवे ।
कौण बस्त ले भाग भरपे, कौण जतन सूं सेवे ॥२४॥
अवधू आतम परमातम पति परसे मनसा चोका देवे ।
प्रेम प्रीति ले भाग भरपे, महोत जतन सूं सेव ॥२५॥
स्वामीजी देवल कौण कहां सा मूरति सेवग क्यूं सुख पावे ।
चोकि कौण एक हसो राखे, पाती कौण चढावे ॥२६॥
अवधू ऊंभा कैवल मुलनि करि सुधा, बटपे वस्त, मतावे ।
चित चोकी हरि परयां राखे तन मन पाती लावे ॥२७॥
स्वामीजी पड़ा कौण किसी विधि चाखिबो, निरखि निरास बिचारे।

पक रचै न घरि[1] घरि नाचै, जुरा जोगणी हारे ॥३८॥
वधू पैंडा अधर पगां विन चलिवो, आंखि अनूप उधारै ।
आनन्द सहत एक रस पीवै, [2]करम कणूका डारै ॥३९॥
स्वामीजी अवला कौण अगम घरि खेलै, पूत परी खित जाया ।
जामत सवै सकल कुल सन्मुख, परम सुनि सूं लाया ॥४०॥
अवधू [3]वांझ भई तब बेटा जाया, बेढै वन खंड जारा ।
रसना पखै प्रम रस विलसै, परचै प्रांण अधारा ॥४१॥
स्वामीजी तीन लोक ना ना रस विलसै, अंति कालि दुःखदाई ।
तीन लोक आगे सुख स्वामी, सो सुख देहु बताई ॥४२॥
अवधू दिष्टि न मुष्टि ज्ञान नहि गाथा, रहे सकल तैं न्यारा ।
तीन लोक आगे सुख ऐसा, ता का वार न पारा ॥४३॥
स्वामीजी सो सुख कहो किस विधि लाधे, करम न व्यापे काया ।
जन हरिदास सतगुरु कों पूछे, समझावो गुर राया ॥४४॥
अवधू आत्म के अस्थान लहीजे, मन थिर रहतो पावै ।
परसत सवी देह गुण भूले, पिव मै प्राण समावे ॥४५॥

---

१ अनेक योनियों में २ प्रारब्ध कर्म जो शरीरों की उत्पत्ति में बीज रूप है ३ काम्य कर्म परि त्याग पूर्वक अनन्य चिंतवन से ज्ञान रूप पुत्र हुवा उसने अमूल वासना कर्म रूप वनों का नाश किया

स्वामीजी आतम का अस्थान कहाँ है, आमें अलख लुकाना ।
मैं स्वामी सतगुरु सति पूछूँ, तुम हो बहोत सयाना ॥४६॥
अवधू सबद जहाँ से ऊठि चलत है उलटा पवन समाई ।
सोंज सहत सुखमनि नदी, तहाँ मिले जो जाई ॥४७॥
दोहा—स्वामीजी मन मतिवाला प्रेमका पीवे प्रेम अघाय ।
रोम रोम तन मन [१]खिले, एक मेक सुख थाय ॥४८॥
अवधू अन्तर कछु दीसे नहीं, ज्यूँ जल जलहिं समाय ।
तब हरि हरि मन एक है, जन हरिदास सतिभाय ॥४९॥

॥ इति हंस प्रबोध ग्रन्थ ॥ १३ ॥

॥ अथ बड़ी तिथि योग ग्रंथः ॥ १४ ॥

ज्ञान सबद सति मरब बिचारे, मावस मन का मैल उतारे ।
सुरति सबाहि बसै निरदाये[२], साच न छाडे झूठ न भावे ॥
मैं ते मोरचा मोन्ग मोही तिल तिल काडे राखे नाही ।
सोऽहं कथा समझि घर आवे, अरधै उरधै सास्वी लावे ॥
करम [३]कालमिष काने करे, ब्रह्म अगनि में जारि ।
जन हरिदास अमावस बरत, कोई करमी साच बिचारि ॥१॥

---

१ विलीन २ मलिनता रहित । ३ अन्धकार

पड़िवा पलटि सुपह पंथ जागे, मूल मता मैं मनसा आगे ।
भरम न भेदे अन न डुलावे, गुरु परसाद परम पद पावे ॥
सत जुग आदि जागि जुग जोवे, पवन निरोधे अम्बर धोवे ।
जुरा न व्यापे जुगि जुगि जीवे, सहज समाधि सदा रस पीवे ॥
पड़ता पासा छाड़िदे, वैसे अजर जिहाज ।
जन हरिदास पडवा सुयह, सकल तिथां सिरताज ॥२॥
बीज विविधि विष वांणि चुकावे, मन गहि पवन गगन मठ छावे।
यहुपणि साहि पिसणि पड़ि पेलै, अगम उजास तहां मिलि खेलै ॥
हरि सुख हेरि हजूरि वतावे, आनन्दमें गोविन्द गुण गावे ।
कांम न झलके कलपि न जांणे, ए नौनाथ हाथमें आने ॥
बीजि इसी विधि कीजिये, ज्यूं सतिमानें साह ।
साहिब सूं मिलि खेलिगे, आगे वस्त अथाह ॥३॥
तीजस तृष्णां [1]तिल तिन खांडे, तीन गुणां आगे पग मांडे ।
इला पिंगुला सुषमनि मेलै, वैसि निरन्तरि चौपड़ि खेलै ॥
साध मंडलि साथि विराजे, अन हद नाद अखंडित वाजे ।
चन्द सूर समि अरथ विचारे, धुनि में ध्यान कमल दल धारे॥
तीज रमतो पिवँ डरूँ, पीवरूठां कहां ठोर ।
जन हरिदास आनन्द भया, छूटिगया भ्रम ओर ॥४॥

---

१ तिलक समा। धार २

चौपदस [1] चाहूं चोट चुकावें, मध्य सुं देस बसे सुख पावे ।
कर मन काडे मूलन हारे, [2]धनार न जावै राम जुहारे ॥
मांई साखि समझि परिमावे, यह सुख साहि सदा सुख पावे ।
करम कमाट अख्या सब ताला, भारम भतरि जोति उजाला ॥
चौपदसि चौपड़ी सेलिए दोय दोय चोट चुकाय ।
तीन्यु तजि सारी मेलि ए, चौथा घरमें जाय ॥५॥
पांच पांच पलटि यह आपे, बसि ह्वै इक्षीषै लोक बुलाये ।
साजन सैया पिसन को नाहीं, भरम भवर पख्या सब मांही ॥
ज्ञान गुरु कसरि मदो करयां भंगि लगाय चढो हरि चरयां ।
एकहि समता उटि मसि काई, सखी सदेसी सापि मुलाई ॥
पांचे पीव परसया मया, मेद सहित मगवन्त ।
रास मवरस में होत है, परि परि राग बसन्त ॥६॥
छठि छक्या छक छाया मारी, महलि पधारे देव मुरारी ।
गगा उलटि समन में मांवी, बाहिर भीतर एको पांवी ॥
गिरवर गरक गया ता मांही, अगम अथाह थाह कछु नांहीं ।
रूप अरूप मोह नहि माया, निज निरलेप निरंजन राया ॥

१ कामादि २ दूसरा ३ भैलीवा

चांदणि ऊठि आई सखी, मिटि गया मोह अन्धार ।
अरस परस मिलि खेलिए, अब औसर या बार ॥७॥
सातें समझि पड़ी सुख पाया, आनन्द सहत अरथ में आया ।
निरभै सीर नीर निज नेरा, ता सुख लागि रह्या मन मेरा ॥
बहोत दिना तें या ऋतु आई, वस्त अथाह न जाय छिपाई ।
जांणि बूझि ऐसा कछु कीया, अब हरि हम अपणां करि लीया॥
सातें सातूं समि सदा, निजपुर नगर निवास ।
बिन बादल बिरखा सदा, छह ऋतु बारा मास ॥८॥
आठें आठ काठ करि कांने, छलबल छाड़ि एह हरि मांने ।
[1]जंबुक [2]स्वान [3]सिंघ दोय मास्या, [4]हिरणी आगे [5]चीता हास्या,
[6]मूषा के मुखि चढि [7]मंजारी, [8]तीतर [9]बाज करां विचिधारी ॥
पंख संवारी समंद में पैठा, आला अटल तहां जाय बैठा ।
आठें अरथ विचारिया, फूली सब बण राय ॥
[10]भँवर [11]कँवल रस खात है, पर दोय दई उड़ाय ॥९॥
आज सखी ने नींद न आवे, जागेन सोऊँ कंत रि सावें ।
बंक नालि म गरजे बाई, सेज सुहाग मिले सुखदाई ॥

1 ओंकार 2 पवन 3 संसार 4 मनसा 5 चित्त 6 मन 7 माया
8 ज्ञान 9 मन 10 मन 11 आत्म कमल का आनन्द रस

बरसे भरणि गगन रस आवे, रांम भरतार मजूँ मोहि भावे।
परम उदार सकल सुखराशी, अगम अलेख अगाहि अविनाशी॥
नव द्वारां मन नाख है, दसवें रह्या समाय।
जन हरिदास आरत मिटी, आनन्द में दिन जाय॥१०॥
दसमी देव दया करि आया, सीतल नैन बैन सुख पाया।
नखमें कुंभ कुंभ में पाणी, सकल बियापी यूं सवि ज्यांणी॥
अकल उमाले मेर उड़ाया, भंवराका रस पैसी खाया
[1]ज्ञान निमरि भरि देखे लोई, सब घटि राम और नहिं कोई॥
दसमी हरि दरसण दीया, हरि परम सनेही पीव।
सब सेजां सांई बसे, जागिन देखे जीव॥११॥
ग्यारसि करत बहोत दिन बीतां, एकादसी न आवें रीता।
सब लग निज सत निस दिन आवे, दुबध्या खोसि बहत दुखपावें।
कंचन छाडि काच बसि काचा, [2]खडचरसमा नहीं सत वाचा॥
या सुख वा सुख अवरि मारी, कहा दिन कर कहा राति अंधारी
अंवरि धुनि एकादसी, अंक नासि रस खाई॥
मन उन्मनि लागा रहै, मो नां नेह चुकाय॥१२॥

---

१ सर्व प्रभु हरि ज्ञान २ सत्य भाव्य पर विश्वास न करके चंचल भ्रमर के समान अनेकों पर मन फिरता रहा। अथवा पशु।

वारसिं दान पुन्य क्यूं कीजे, मनुष जन्म धरि यहि सुख लीजे।
गरब गुमान खरचि निरदावे, अगम अथाह सहज सुख आवे ॥
सत रज तम गुण मोह पसारा, यह दत्त द्यौ नर जागि संसारा।
पति सूं प्रीति जीति गुण दूजा, हाथ पसारि करो यह पूजा ॥
हरि सुमरिन हिरदे सदा, पाप पुनि दोय दान ।
वारसि तहां मिलि खेलिए, जहां न दूजी आंन ॥१३॥
तेरसि तहां वसे मन मेरा, नही सो दूरी नहीं सो नेरा ।
नां कोऊ लहै न काहू लाधा, हिन्दु तुरक दोऊ पख वाधा ॥
वेद कते व कथे रुचि मांनी, यहु पण साहि रहे अभिमानी ।
अपने अपने रस मतिवाला, सब जग छक्या दूध कहा वाला ॥
तेरसि तहां पिछाणी रे, निकटि निरंजन राई ।
परम सनेही संगि वसे, मांन तहां मठ छाई ॥१४॥
चवदस राम चरन नहि छांडो, जूवारी ज्यूँ तन मन आडो ।
दरसण देखि रेख तजि राई, जहां पडदा तहां आन संगाई ॥
रटतां रांम अव्या अरि हारा, मूँवा जीवां या जीवत मारचा।
मन निहचल निरभे निधमांही, जहां तहां राम दूरि हरिनांही ॥
चवदसि चितवणि सब मिटी, अण बोल्या कछु गाय ।
जनहरिदास । चंचल गया, निहचल रहा समाय ॥१५॥
सुर तेतीस घेरि घर आया, पून्यूं फिरि मन मनहि समाया।
सकल समीप सकल तें न्यारा, पूरण परमानन्द पियारा ॥

दुरमति दूरि दूरि हरि नांही, सबतें अगम बसैं सब मांही ॥
परम सिंधु सुख वार न पारा, ता सुखि लागा प्रान हमारा ।
जन हरिदास सोलाह सुतिथि, सद्‌गति [1]सुपद लगाय ॥
पूर्न्युं पीव परसण भया, अन्तर जामि आय ॥१८॥

॥ इति बड़ी तिथी योग ग्रन्थ संपूर्ण ॥१४॥

॥ अथ लघु तिथि योग ग्रन्थ ॥ १५ ॥

अमावस मन उलटा चल्या, कला सवारे चन्द ।
फिरि लागा उनमन सूं, छूटि गया सब दंद ॥१॥
पड़िवा परापर सब तजी, सुतौ औरदी बाट ।
गगन मैंडल आसण किया, सांध्या औघट घाट ॥२॥
बीज सबीजन खोइये, राखा बीज अबीज ।
जन हरिदास गरर्भ गगन, सहज चमके [2]बीज ॥३॥
तीज त्रिगुण रस घेरिके, ध्रम अगनि में जारि ।
दौं लागी दरिया जले, [3]तुरीया भेद बिचारि ॥४॥
चौथि चाहि चकव भया, उलटी लागी लाय ।
गंग जमन मधि बैसके, मीन मगर गइ खाय ॥५॥

---

१ सुपन्थ २ बिजली ३ चौथी अवस्था

पांचै पांचू फेरि मन, सुरति सहज घरि घारि ।
मन तारा मण्डल छेदि गया, उलटी पंख संवारि ॥६॥
छठी अछिप घटमें छिप्या, पूरण परमानन्द ।
परसि परसि पावन भया, जहां तहां आनन्द ॥७॥
सातैं सर [1]ऊषर भया, पुहम पलटि गत नीर ।
मछली बसै अकाश में, लगी प्रेमकी सीर ॥८॥
आठैं अरि सब परिहरि गया, असलि उदै भया ज्ञान ।
आठ पहर अमृत सुधा, वाज पयालै पान ॥६॥
नौमी नवै संवारिए, अनड न मोडे अंग ।
मन फेर्यां तन फिरत है, मनिख जन्म का भंग ॥१०॥
दसमी देह दुरंग गढ, दहि दिस सोर लगाय ।
मैवा सीकर सा भया, मिल्या रैंति होय आप ॥११॥
एकादशी अभंग है, जहां दुवध्या तहां दोय ।
जन हरिदास ऐसा वरत, जांणे विरला कोय ॥१२॥
[2]दोय राह तजि द्वादसी, जोगी देख्या जागि ।
ब्रह्म अगनि में घर किया, रह्या निरंतरि लागि ॥१३॥

---

१ विषय रस रहित होकर संसार को छोड़ ज्योति रूप को प्राप्त हुआ ।
२ शुक्ल कृष्णो गतिह्येते ।

तेरसि तनमें परम तत, प्रीति पर्वे ते और ।
बसे कहां । नांहीं कहां, जहां तहां सब ठौर ॥१४॥
चौदसि मन चौथी दसा, गया लोक तजि लाज ।
चन्द मिल्या आनन्द सूं, अनहद सबद अवाज ॥१५॥
पून्यूं पख । पूरा भया, सहज सर्‌या सब काम ।
जन हरिदास आतम अंतरि, परम सनेही राम ॥१६॥

॥ इति लघु तिथि योग ग्रन्थ सम्पूर्ण ॥३२॥

अथ चालीस पदी योग ग्रन्थ ॥ ३६ ॥

आत्म, अभ्यासनि है सखी, हरि भजि बिसम न जाय
निरभै नांव निरंजनां (व) ताहू तासी जाय ॥१॥
अकगति की गति लखै न कोई, साधां सुख कूं गाया
मगन मंडलमें गुफा सीधि सौं, तहां निरंजन राया ॥२॥
प्र०–अष्टरूप करि भेद उपारया, ऐसा अविरल कीया ।
भक्ति हेत हरि आप पधारया, ले अन्ना कूं दीया ॥३॥
उ०–मूसा सो से [१]कूप [२]सिंघ कूं, कूपसिंघ [३]चन्द्रम कीजे ।
कूप [४]बसै सागर अविनाशी, अविनाशी रस पीजे ॥४॥

१ तन २ कृपा ३ चक्षुर ४ समाना

प्र०—[1]कूरम रूप मध्या मैणा रंभ, मधि [2]मधु-कीट भ मास्या ।
अकल आप अविनाशी आया, जनका कारिज सास्या ॥५॥
उ०—अविनाशी कहूँ आय नहीजावे, हम देख्या सब मांही ।
[3]जठर अगनि ते रहे निराला, विपता जांणया नांही ॥६॥
प्र०—भगतिहित वाराह विधूस्या, धरणि दाढ धरि राखी ।
हरि अपणा आप का निवाजै, [4]शिव सनकादिक साखी॥७॥
उ०—शिवसनकादिक अपणा मुखकू, उनमनि ताली लावे ।
मर जीवा हीरा लै आवे, वार पार नहि पावे ॥८॥
प्र०—जन प्रह्लाद बहौत दुःखपाया, छूटि नाही ताली ।
तब हरि[5]नर हरि रूप बनाया, जन प्रतंग्या पाली ॥९॥
उ०—नरहरि रूप कहौ क्यूँ हरिका, तेज पुंज प्रकासा ।
माय बाप कुल नाहीं ताके, मुनि मंडलमें वासा ॥१०॥
प्र०—बलिराजा पूरा जिग किया, तब इन्द्र हेत हरि आया ।
पाव पतालि सीस असमाना, लंब तडंग कहाया ॥११॥
उ०—कहण सुणण की याविधिनांही, कह्यां सुण्यां बणिआवे ।
हरि अपार पार को नांही, अगह गह्या क्यूं आवे॥१२॥
प्र०—परसराम क्षत्री जब आया, तब देवां बल कीया ।
असुर विधूंसि हरि विप्र निवाजा, भगतां कूं सुखदीया॥१३॥

१ कच्छप २ मधु और कैटभ ३ उदर ४ शिव ५ नरसिंह

उ०—भगत भला जो प्रीति पिछाणे, मन पर फूलत नांचै ।
हरि हीरा हिरदेमें राखै, कौडी कम न राचै॥१४॥
प्र०—रामचन्द्र बाण जब लिया, सुर तेतीस छुडाया ।
रावण मारि लंका गढ तोड्या, राज बिभीषण पाया॥१५॥
उ०—रमता राम और नहिं भाई, समझि देखि मन मांही ।
भूख्या तृषा रोग नहि व्यापे, वार पार कछु नांही॥१६॥
प्र०—हरि गोकुलमें ग्वाल नचाया निरविष कीया काली ।
कंस केशि चाणूर पछाड्या, मथुरामें बनमाली ॥१७॥
उ०—[1]नांम न बसै न मथुरा आवे, असल्ल मरया नहिं भाई ।
अवरण वरण ऊंच क्या नीचा परपूरण सबमांही ॥१८॥
प्र०—नृप अवतार महा बल कीया, अघासेन दल मारया ।
भगति देखि हरि एसें आया, मूका मार उतारया ॥१९॥
उ०—मूकू मार न जोणया कोइ, मारै हरि रख वाला ।
हम तो हरि ऐसे करि दरस्या, यूं तरया नहीं बाला॥२०॥
प्र०—वेद कहै हरि सांमभि धावै, सुरन संकट निवारण ।
निकलंकी औतार कहावै, कलि कलसिंग कू मारण ॥२१॥

---

१ अर्थात् जो मथुरामें ही नहीं और गोकुल में ही तथा ... में ही एक देशी नहीं नहीं किन्तु विश्वरूप है जैसे ही यशोदाजी को मुखमें ब्रह्मांड दिखाया तब क्या गोकुल का भाव है नहीं था ... है भागवत की वेद स्तुति को देखो ।

उ०—हरि कूं कलंक न जांण्या कोई, कलंक न कोई लागे ।
हरि अगाध ऐसे करि देखुं, वांवै दांहिण पीछै आगे॥२२॥
प्र०—[1]निराकार अकार एकही, दुवध्या जांणी नांही ।
हरि थोडा कैसे करि देखुं, है साहिब सब मांही ॥२३॥
उ०—[2]तुमभूले औतार न जांण्या, साधो का सुखदाई ।
निराकार कू सोई सेवे, सो सहज सुनि सवाई ॥२४॥
प्र०—हम भूले तुम पढि पढि बूड, सबद सुणौ कहा भाखै ।
उतपति पावक परलौ हुंतब, जीव कहां लै राखै ॥२५॥
उ०—निरमल देव सदा निह कांमी. नांव निरंजन राथा ।
योंही पावक योंही परलौ, सब याही मांही समाया ॥२६॥
प्र०—साहिब अधर धर्‌या [3]सब दूजा, मिलता जांण्यां नांही ।
हमकूँ कहो पढो समझावो, या आसंक्या मन मांही ॥२७॥
उ०—चौदा लोक रच्या जिन बाजी, सो बादीगर नहीं पाया ।
उतपति पावक परलोक हुतब, सागर जाय समाया ॥२८॥
प्र०—परलौ कहो कहां है स्वामी, ज्यूँ आ आसंक्या भागे ।
घटि घटि जठरि अगनि का बासा, घठ घट मांही जागे॥ २६॥

---

1 साकार—अवतारादि अन्य निराकार शुद्ध सच्चिदानन्द एकही हैं उसमें द्वैत भाव नहीं । २ तुम अवतार की मति को नहीं जानते जो निराकार भाव से सेवा करता है उसी भावको प्राप्त होता है । ३ यहां सो दूजा पाठ भी है

७०—घट ही मांही दरस परस है, काया [1]मांज्यां पावै ।
सतगुरु सबद साच करि पकडै, ता डोरै लागा आवै ॥३९॥
राम सनेही चित्त चढ्या, दूजा देखण चंग ।
हरि रग चढ्यो न ऊतरै, उडि उड़ि जाय पतंग ॥४०॥
जब हरि हीरा चित्त चढे, मेल्है रंक छिपाय ।
जन हरिदास हरि प्रघट है,(कोई)गाफिल[2]गोता खाय॥४१॥

॥ इति चालीस पदी योगग्रन्थ ॥३६॥

## ॥ अथ चतुर्दश पदी योग ग्रन्थ ॥ ३७ ॥

सतगुरु के चरणां चित्त धरिहुं, अनन्य भगति सोई मैं करिहूं ।
गुरु बिन ज्ञान न पावे कोई, जो पावै तो अमल न होई ॥
धागधाग करि गुर सुल भावे, गुरकी सुलभि उलभि नहीं आवे,
गुरु कृपा ते हरि निधि पाई, जिन पाई तिन बहोत छिपाई ।
प्रकट करै स प्रकट पैंडा, प्रकट आप पहुँचै नेड़ा ॥
परि पहुंता उलटा ल्यावे, महापुरुष तातें वन छावे ।
रन बन रहे जगत तें न्यारा, राम भजै सारां सिर सारा ॥

---

१ शुद्ध करने से २ "खोटा खाय" ऐसा पठान्तर है

गरब[1]फुलाणिं केता फूल्या, तिन का लेखा नाहीं ।
आव घटावे सुरग की, खेले नरकां मांहीं ॥१॥
गुरगम नहिं सुनि मरमावे, वा निज साहिब की खबर न पावे,
आपे भटक्या करम संगि खीया, राम भजन कबहूं नहिं कीया ।
राम भजन बिन येती माया, येती सकल काल की पाया ॥
करम कीया ऐसा वैरागी, हरि तजि माया मीठी लागी ।
माया वार पार कछु नांहीं, येरू पकिया भया ता मांहीं ॥
भांति भांति करि भाड़ी भावे, ता तें कोई बचण न पावे ।
एक समे शिवजी [2]उडकाया, वां से लागा दौड्या आया ॥
माया का बल अनंत है, बचण न पावे कोय ।
रे मन कोड़ी मति गह, (यहु) हीरा रूप न होय ॥२॥
सो हरि हीरा चोहरि [3]पिछाणे, कौड़ी रूपि निकटि नहिं आणे ।
राम रसायण सबते मीठा, सो तो जग खारा करि दीठा ॥
[4]हरसि कृक पीवे को नांहीं, गरक भए सब माया मांहीं ।
माया मीठी नेंडा भाख्यो, बांह पकड़ि नरकां कूं राखे ॥
रामभजन बिन बिधि ब्योहारा सबी सकल काल की मार ।
नर नीमला सबकी है मोयो, भाई नहीं सकल पुखि खाया ॥
रोग बख्या दारू पथी लावे कोई नाही ।
ता तें रोगी बापड़ा, हसता नरकां जाही ॥३॥

---

१ फीवने २ मिरची ३ पिरचान करके ४ हरिरसाम रस।

यौंही भोग रोग होय आवे, जैसा करै स तैसा पावे ।
आपै चढ्या अरथ न हिआवे, सो ईस रैजि कौ विष खावे ॥
मूल मंत्र जाणो कुछ नांही, [1]विसहर ले मेलै गल मांही ।
जैसा फुनि गति सी है माया, जैखाया ते [2]बहौड़ि न आया,
माया[3]कलणि कल्या जगसारा, है कोई साच बतावण हारा ॥
हरि अमृत रस छाड़ि करि, विष कूं दौड्या जाहीं ।
कूवै रेता मींडका, समद समझि कछु नांहि ॥४॥
गुर गम समझ इसी पर आई, ऐसा [4]अकल सकल पति राई ।
नांव निरंजन अंतर जामी, हरि निर्मल पर पूरण स्वामी ॥
(तब) सात समद नहि भार अठारा, तब था अब सोई सिर जनहारा ।
गिर परवत नहि मंडल तारा, समझि नहीं कछु वार न पारा ॥
निराकार आकार बिन, अन तम वन के राव ।
ताकूं भज रे प्राणियां, दुर्लभ ऐसो गाव ॥५॥
जोग ध्यान सूं जब धुनि लाई, तब हरि एक एक रे भाई ।
पवन न पांणी धरणि आकाशा, चंद न सूर देव नहिं दासा ।
[5]द्यौस न राति जाति नहिं काई, अब या जाति छोत ले आई ॥

---

१ विषधर ( सर्प ) २ फिर ३ कीचड़ ४ निष्कल ५ दिन

छोति छोति करि जगत मुलाया, तातें निज कथ्य हाथि न आयां।
परपंच रासौं। प्राणियों, हरि सूं नाहीं हेत।
पर मसि पच्यो [१]विभूपसी, भव सूं चत अचेत॥ ४६॥
मन परपच करि महीत मुलाया, उलज्या पार पार नहि आया।
पचल्या झूठ साच नहि न्हाले, आप बले ओरो कूं जाले॥
पार गहे कोई मन पूरा, पूरा गुर का सेवग सूरा।
सुरा तन की सीम संभाटे, काम क्रोध तृष्णां सब मारे॥
मन की तरग सकल सुधि आवे, उलटे अरहट बाड़ी पावे।
ता वाटि मांहीं[२]पहोप प्रकासा, तहां निजसेवा करें निज दासा॥
[३]सौं ब सवारी मजन कू, अब के महु आकार।
कोही गहि हीरा तचे, ताकू वार न पारा॥७॥
अब आकार नया मोतरा, ब्रह्मा सृष्टि उपावणहारा।
शिव सनकादिक नारद नांही, समझि समझि वेस्या मनमांही॥
हरि बिन और न देवी देवा, साळिगराम न क्यू ही सेवा।
यक्ष ज्वाला परवेश न कीया, विष्णु वेद पीछे करि लीया॥
ता प्राप्तीगर की खबरि न पाई, (सब) बाणी मांहि रहे उलझाई।
कौवा ज्यों मोती चुगे, हंसा तजि कहां जाई,
मान सरोवर सब्ब सुख, तहां बैठा केलि कराई॥८॥

---

१ अमावर पार्वमा २ पुष्प ३ सामैमी।

जब सुख दुख नथा गुरू न चेला, पांच तत्व का नांहि मेला ।
सीत न धूप राग रंग नांही, जामे मरे न आवे जांहीं ॥
जब कोई विप्र न था [1]विप्रेला, वो एका एकी रमें अकेला ।
चांके नाही रूप न रेखा, अब कछु रूप तमासा देखा ॥
रूप रूप कूं रसि गसि गावे, रूप चल्यां (ता)की सुधी न पावे।
निराकार हरि निर्मला, नाम निरंजन देव,
अब[2]जिन भूलै प्राणियां, तूं रहताकूं सेव ॥६॥
भूले बहोत समझि नहि काई, ऊंच नीच की वात चलाई ।
आवै जा यस ऊंचक नीचा, तामें लेले डारे सींचा ॥
आड़ा लै लै चौका ठारे, पसेवा परियो क्यूं न संभारे ।
कौंण ऊंच कौंण है शूद्रा, जामें मरे स एकैं उद्रा ॥
गर्भवास मे जब ले दीया, दीया संकट रूहि रुचि पीया ।
पी पी रूही रह्या दसमासा, अब कछु ऐसा कहै तमासा ॥
कहणी सुणणी दूरि करि, अंतर खोट न राखि ।
तूं हरि भजिरे प्राणिया, सुणि साधों की साखि ॥१०॥
कहै, सुणे पणि रहणी झूठा, जमसूं रजूं राम सूं रूठा ।
ऊँधे मुखि दस मास झुलाया, भजन [3]बोट दे बाहरि आया ॥

---

१ अन्यवर्ण २ मत ३ कौल

कलि की वाय मखी सुख पाया, आवत समें [1]सुसम विसराया ।
माया ये ये आयो माई, सो वाधा क्यूं सूखे जाई ॥
और फर मसकी न संतावे, सठर भगति दिन पीति न भावे।
जब हैं परखे कीट पतगा, तब यो गरब कहां यो गंदा ॥
गरब गुमान सब दूरि करि, वा निज साहिब कूं जोंखि ।
वा निज साहिब कूं बिन मज्यां, मनिख जन्म की हांणि ॥११॥
हांणि कह्यां कोई न पतीजे, निहचे मृग [2]बधक कूं धीजे ।
समनिधि सदा बधक नर हिरयां, चौरासी में दौडयाई फिरयां ॥
कबहुँ [3]खर पशु कीट पतंगा, मोर मृग गति नाना रंगा ।
कबहू सूकर स्वान सियारा, कबहूं कौवा गति बिचारा ॥
कबहूं अजगर पखी गोहा, ए दुख पावे हरि सू द्रोहा ।
परका यांही आवे सावे, औषा पसूं बहुत दुख पावे ॥
राम भजे तो सकल सुख, नहीं तो सब दुःख साथि ।
खोटा पटा जिसाई था, खरा न आवे हाथि ॥१२॥
[4]नाई सुबधि कुबधि [5]सुं काजा, साथ नहीं कोइ विपकी ज्वाला।
मसन भेद औषध कछु नांही, कुबधि [6]रहही या काया मांही॥

---

१ सौगन्ध २ शिकारी ३ गधा ४ तोकरी ५ रैया हुआ ६ कुबुद्धि रूप आकार काया में रहता है ।

[1]छापा तिलक भरमकी पूजा, [1]अंतर करम कातरी दूजा
मनसा मनके मतैं चलाणीं, अतर की साहिब सब जांणे ॥
अंतरि खोट तहां हरि नांही, तातैं बूडा परला मांही।
करम भरम सब दूरि करि, रहसि रहसि गुण गाय ॥
तूं हरि भजि रे प्रांणियां, नहीं तो काल अचूक्यो खाय॥१३॥
खासी काल सही सुं भाई, [2]पसवे समझि पड़ी नहिं काई।
कनक कामणी कूं मन दीया, राम भजन कबहू नहीं कीया ॥
पंच ततका झूठा मेला, हरि भजि प्रांणी चलसि अकेला।
अनतलोक जिन किया पसारा, सो सब[3]वादि सकल तें न्यारा॥
भगत उधार विड़द है जाको निहचे नांव न छाडो ताको।
नांव गहै तोही सुख पावे, भौ सागर में वहोड़ि न आवे
साची सतगुरु की सरणाई, अजब अनूप वस्तु निज पाई।
गोविंद भजीं रे प्रांणियां, हरि अमृत रस पीव।
जन हरिदास हरि अनन्त है, सुकहा विचारा जीव ॥ १४ ॥

॥ इति चतुर्दश पदी योग ग्रंथ ॥३

(नोट)—चवदह पदी की तेरहवी पदी में वंचक भक्त की निन्दा है, और चतुर्दशवीं में नाम स्मरण भक्ति की प्रशंसा है।

---

१ अन्तरग दुष्कर्म में लगा है २ जो पास में ही हुवा तू पशु के समान है ३ वृथा

## ॥ अथ तीस पदी योग ग्रन्थ ॥१८॥

ऊँचा महल सेज सुख सूंधो मन हरियी नाना विधि नारी ।
हैदल गैदल देखी छत्रपति छाड़ि, नाचत गया नरपति हारी ॥
छल बल करि वसुधा वस कीन्ही, समर्थ धन करि सम्पा न छुटि।
हरि सुख छाँड साहिसुख कोड़ी, कलपत गया किता सिर फूटि।
किरपण मर न भूके मापा, काठो करि राखे कमि काच ।
पाहणी छुरा विधा धन बीतो, एके बढो सुख साच ॥३॥
करि करतुति मधा नर चकवे, [1]मादृष्टि चक बहै गुण पए ।
राम नाम निश्च भेद न जान्यों, यौ ज्यूं हारि गया सिर खेह ४
यहु संसार सकल विष को धन गोविन्द सगो सनेही राम ।
राम बोग्य चोट न लागे, मदगल माह न व्यापे काम ॥५
नाथ निरंजनि निरखि निरन्तरि (हरि) सुमरि गरक गलतल ।
बाजीगर मजी मजो काई बाजी डाला छाडि गहो निज मूल ॥६
नो खेल पलोमपलटि पर राखे नाटक फिरिनट सुख सोवे ।
नट सुख देखि तबे सुखबाजी हरिभक्ति इम कलि विष धोवे ॥७॥
मन गहि मवल मवल होय हरिभक्ति, पापच पांच मटकि मरि मारि
हरि हरि सुमर सुमर नर हरि[2] उलटो सक्ति पड़े मत लारी[1] ॥ ८॥

---

१ मादृष्टि धर्मे चक्र जैसे हाथी स्नान करके अपने ही हाथ से धूली ऊपर डालता है इसी तरह [illegible] बुद्धि रहित काम व्यापे जानो
२ खाक ( संसार रूपी )

भज मनिराम काम करि कण¹२, मैं तै छाडि मुग्ध मति हीन ।
सुनि मंडलमें सहज सुधारस, तांरस वसि सेहजै ल्यौ लीन ॥९
स्वाति बूंद वरिषा ऋतु वरसै, आपो समटि रहे जल मांहि ।
सागर को जल सींपन परसै, मिली खेले तो मोती नांहि ॥१०॥
सुख संसार समद्जल खारो, खारे जलिलागा जल जीव ।
निरभै सीर नीर निज नैडो, आंखि उघाडि न देखै पीव ॥११॥
करता करण सदा जुगि जोगी, ता जोगी सू प्रीति लगाय ।
इहु पणसाहि ध्यान तज अनरथ, जरा न व्यापै काल न खाय॥१२
भगह अरील कहौ किम रीझै, जब लग धटमें द्रुजि अग्न ।
कावल छाडिराम भज केवल, तोता¹ रु त रीझै रहमान ॥ १३
ज्यूं माता सुत प्रीति विचारे, अभिअन्तर आनन्द उछाह ।
यूं² नरनाथ नांवले निसदिन, इण ओसर यहुवडो जुलाह ॥१४
निरभै थकौ नांचि मौ घर घर, कहरन ग्रसे काल रु डर ।
भजि भगवंत अंति पाछनायस, मरसि पछेही अवही मर ॥१५
जैसे कुरंग नाद सुणि श्रवण, खंड खड खंडियो तन ।
यूं सति सुरति साध कीहरि सूं, तव जाय दरस श्री राम धन ॥१६
ज्यूं ल्यो लीन मीन प्रण प्राणी, जौ छाडै तो छुटे देह ।
यूं मन प्राण सुरति गोविन्द रत, तव जाणी जै रामसनेह ॥१७॥

---

१ समय २ राजा राम

## ॥ अथ तीस पदी योग ग्रन्थ ॥२८॥

ऊंचा महल सेज सुख सूंघो मन हरिणी नाना विधि नारी ।
हैवर गैवर देखी छत्रपति छाकि, नाचत गया नरपति हारी ॥
छल बल करि वसुधा वस कीन्ही, अमर्ख भ्रम करि सक्या न छुटि।
हरि सुख छाड साहिसुख कोड़ी, कल्पत गया किता सिर कूटि।
किरपण मरे न मूके माया, काठी करि राखे कसि काथ ।
पहुँची जुरा पिया तन मीतो, सके पडो सुख साथ ॥३॥
करि करतूति भया नर भक्षे ¹मांखटि चक्र बहै गुण एह ।
राम नाम निज भेद न जाण्यों यौं ज्यूं हारि गया सिर खेह ४
मधु समर सकल विष को वन गोविन्द सगा सनेही राम ।
राम जोगम चोट न लागे, मद्गल माह न व्यापै काम ॥५
नाथ निरंजनि निरखि निरन्तरि, (हरि) सुमरि गरक गलतल ।
बाजीगर भजी भजो कोइ बाजी बाजा छाडि गहो निज मूल ॥६
नौ खंड पाँमपलटि पर राखे नाटक फिरि नट सुख सोवे ।
नट सुत देखि तजे सुत बाजी हरिमिलि इम कलि विष धोवे ॥७॥
मन गहि सबल सकल दोय हरिमिलि, पायव पांच झटकि भरि मारि
हरि हरि सुमर सुमर नर हरि, उलटो खलि पड़े भव खारी¹ ॥ ८॥

---

१ [illegible] जस हाथी स्नान करके अपने ही हाथ से धूली [illegible] डालता है इसी तरह [illegible] बुद्धि रहित काम [illegible] साथ ( [illegible] )

भज मनिराम काम करि करण[२], मैं तै छाडि मुग्ध मति हीन।
सुनि मंडलमें सहज सुधारस, तारस वसि सहजै ल्यौ लीन ॥९
स्वाति बूंद वरिषा ऋतु वरसै, आपो समटि रहे जल मांहि।
सागर को जल सीपन परसै, मिली खेले तो मोती नांहि ॥१०॥
सुख संसार समदजल खारो, खारे जलिलागा जल जीव।
निरभै सीर नीर निज नैडो, आंखि उघाडि न देखै पीव ॥११॥
करता करण सदा जुगि जोगी, ता जोगी सू प्रीति लगाय।
इहु पणासाहि भान तज अनरथ, जरा न व्यापै काल न खाय॥१२
अगह अरील कहो किम रीझै, जब लग घटमें दूजि आन।
कावल छाडिराम भज केवल, तोता[१] रुत रीझै रहमान ॥१३
ज्यूं माता सुत प्रीति विचारे, अभिअन्तर आनन्द उछाह।
यूं[२] नरनाथ नांवले निसदिन, इण औसर यहुबडो जुलाह ॥१४
निरभै थको नांचि मौ घर घर, कहर न सूसे काल रु डर।
भजि भगवत अंति पाछनायस, मरसि पछेही अवही मर ॥१५
जैसे कुरंग नाद सुणि श्रवण, खंड खंड खंडियो तन।
यूं सति सुरति साध कीहरि सूं, तब जाय दरस श्री राम धन ॥१६
ज्यूं ल्यो लीन मीन प्रण प्राणी, जौ छाडै तो छुटे देह।
यूं मन प्राण सुरति गोविन्द रत, तब जाणी जै रामसनेह ॥१७॥

---

१ समय २ राजा राम

इन्द्रादिक कमल अरै लही लोभी मधु कर¹ ता सुख रहे समाय।
भार अठार फूल नांना विधि, यहु सुख सबै न वा धन बास ॥१८
चिंतामनि राम चाहतां जाचो, निहचल वस्त निवरि भरि कोय।
आत्म मांतरि अगह अखंडित, परचा पखै न जांणै कोय ॥१६
कामधेनु करतार सदासंगि, सुपरिया साह यह साहि।
जोगी जती पीर पैगम्बर, ज्यूं बंछै त्युंही फल ताहि ॥२०
कल्प वृष है कलि विष कटण, निरमल निकट करण निर्वास।
या सुख कूं संसार न जाण्यो, तासुखि लागि रह्या निज दास॥२१॥
आलस मकरि राममणि मरमसि, दुरा पहुंती जन्म सु जाई।
चौडै जन्म ²मिले पछुतावसि हरि गाय सके तो अबही गाय २२
जैसे फुनिग³ मेल्हि मणि चरै, जोति उजासे (सु) करै आय।
यू हरि भगत सहज की शोभा दुं तिणी विधी हरि दुल्यो आय२३
गहि गुरज्ञान जागि जीव जोगी, सत गुरु सबद साहि सवि पांव।
खोलि कपाट भाग गढ मांही, साधी मिले मिले दीवाय ॥२४॥
सुरनर असुर सुरांपति की सुर, अलख अजोति अतर देव।
ता सुखि लागि जांणि जीव जागो निसदिन करै निरन्तरि सेव॥२५

१ भ्रमर २ चौडे ३ सांप ४ क्यों और

गहि गुरज्ञान ध्यान धरि अन्तरि, हीरो चढियो हाथ हरी।
[1]चौसरी जोऊं तौ वले न लाभु, काठो राखूं रंक[2] परी ॥ २६॥
निज निर्मिध अगह अभि अंतरि, घटि घटि अघट रह्या भर पूरि
यकलम जोति एकरम अंतरी, भूला भला वतावे दूरि ॥ २७॥
रमता राम परम सुख सागर, गुना रहत निरगुण निज देव।
आनन्द रूप अखिल अविनाशी, [3]निहचल साध करे नित सेव २८
जठरा नहीं जुरा अहूं नहि आलस, [4]वप नहीं विथा परम सुख सार।
दीन दयाल देव करुणांमें, है गोविन्द निरधारां आधार॥२९॥
जन हरिदास पति पासी परम सुख, सतगरु सबद पहरि सति भेख।
है हरि अकल सकल[5]विशव्यापी,निहचल वस्त निजरि भरि देख ३०

॥ इति तीस पदी योग ग्रन्थ ॥३८॥

## अथ बारह पदी योग ग्रन्थ ३९

रोटी रटणि रामजी मोटी, आलस मकरि आवछै छोटी।
लख चौरासी जूणिप लोटी, खोटा देह छूटसी खोटी।
मैं तैं छाडि जागि नीव टोटी, कुदरत काल जालसी चोटी।
एक कनक अर कांमणी, काल दाढणा दोय।
यहा दोन्यो बिच आयकरि, बचै स विरला कोय॥ १॥

१ भूखकर २ गरीब के समान ३ स्थिर ४ पांच भौतिक देह ५ विश्व

से मनिख जन्म अमला मल पायो, सो तैं कोडीसटै गमायो।
हटवाड़े बाजी हद कायो, खरच्यो कहा कहा तैं खायो।
गुण तजि निगुण राम न गायो, खलो जाय स सुख घर आयो।
सुख न मागी मेन गयो, विया घर विवा तहां जाय।
[1]सुरगण विस सुख छाडि करि, पश निरगुण का गुण गाय ॥२
हरि सुख छाडि और रस रीधो, फरली कहां कहातें कीधो।
काम सट कपन कोइ दीधो, अमृत छाडि जहर सब पीधो।
मन मोथी माया मथि बींधो, मारग छाडि कुमारग लीधो।
छाडि कुमारग पयले, कामि सहे सिरमार॥
बार बार वो ए कहूं योही ग्यान विचार॥ ३॥
इत उत चितवन अबधि बिहांणी तपा न मांधे मांछै पांणी।
काजल मगनि रहे लपटाणी, मनसा पकड़ि सहज घरि नांणी।
हद दसि खड़ा बगाती डांणी जम दरबारि जाय बो प्राणी।
माय निरंजन अलख बिनाणी, राम भजन की गली न जांणी।
राम भजन का मै नहीं, धूमो धूमै माय।
ग्यान ध्यान गुरग्यान बिन खोटो खोटा खाय॥ ४॥

१ यहां पहुँच लिय दूज पाठ भी है

अरि रिपुज्ञान उर नहीं छाजे, तब लग चिंता चोट न भाजै ।
मायातरवर(जीव)जायविराजै, अंध[1] अकंधनि लाज न लाजै॥
गोविंद काहिन भज तनमाजै, कुदरति काल सदा सिर गाजै ।
काल जाल लियां फिरै, जीव कहां कूराय ॥
अंति काल छाडै नहीं, खंड खंड करि खाय ॥ ५ ॥
गहि गुरज्ञान उहा कांयनावे, जहॉ जहॉ वन्ध्यो तहां दुःखपावे ॥
दावानल पैठो पछितावे, होय पतंग जलै जलि जावे ।
निरभै ज्ञान निराटन भावे, भूखो फिरे घरि घरि भरमावे ।
भरम छाड़ि गोविंद भजो, हरि परम सनेहि [2]तात ॥
कोईजनजाग्यासो जांगासी, यह औसर यह [3]घात ॥ ६ ॥
भजिरेराम पतितहरि पावन, परा परै भै भीड चुकावण ।
प्रकट आपकू आप बतावण, पार ब्रह्म पख पांच छुड़ावण ॥
पूरणब्रह्म साध संग लावण, वरिवा सुनि निरन्तरि सावण ।
नखसिख रोमरोम रस पावन, ( हरि समर्थ जनताप नसावन
रस पीवे जीवे जिको, मनकी दुवध्या खोय ।
रसिया रसमें मिलि रह्या, टलै न दूजा होय ॥७॥
सुरत संवाहि परसि अविनाशी, हरि विन और सकल जम पाशी

---

१ विन शिर २ प्रिय पिता ३ चोट ।

दुरमति काल करकी दासी, घटि घटि बसै बसै मस[1]वासी ॥
सुरनर असुर सकल की मासी, आनंद अरथ परम सुख रासी।
सकल सुखों की सौंज हरि, आखे बिरला कोय ।
गुण पोखे निरगुण कहे यूं हरि भक्ति न होय ॥८॥
तृष्णा धार स्यार में दाधा पशु ज्यूं बारि पराये बांधो ।
खासी काम बहोत विधि साधे, राम भजन का भेद न लाधो ॥
पूरो नहीं अधूरो माधो, सद्‌गत हाथसी गाथरे माधो,
माधो मनां मिमारिमां, हरि परम सनही राम ।
हरि तरवर सुख छाड़ि कै काहि मरै शिर घाम ॥९॥
माथ सवाहि जुरा चलि आइ, [2]ग्याइ सेत सभन दुखदाइ ।
धूजै शीस दश भजि भाइ, [3]खड्‌धर रस पड़े मति खाइ ॥
गहि गुर ज्ञान ध्यान धरि धाइ हरि हरि सुमरि सुमरि सुखदाई,
सकल सुखों की सौंज हरि बार पार मधि नाहि ।
देह गेह दुनियां तरक, प्रान गरक्या मांहि ॥१०॥
होसी तन [4]छार भार तजि सोई हरि बिन सगा न एके कोई ।
गाफिल जागी अभागन माई सास उसास [5]उरमल धाई ॥
या गति जोया बिरला कोइ कै जानूं हरि किरपा होइ ।
हरि भजि विषतजि निर्मल होइ, उनमनि रहे भरम सब खोई ॥

---

१ बिलाई- बाल मीर सफेद बाल ३ [illegible] ४ भस्म ५ [illegible]

राम संभालि परम सुख सोई, जावे मरमपद निर्मोई ॥
मन उनमनि लागा रहे, पांवे निर्मल नीर ।
त्रिवेणी तटि न्हावतां, जम का झड़ [1]जंजीर ॥११॥
भजि भगवन्त करम करि कांने, तजि अभिमान यह हरिमांने ।
मनगहि सुरति राखि [2]प्रसथाने, हरि प्रगट गाय गायमां छांने ॥
सुख संसार धार तजि आने, पोथी प्राण राम लिखि पांने,
पोथी प्राण संभालि करि, नाव निरंजन लेह ।
जन हरिदास हीरा जनम, कौड़ी सटे न देह ॥१२॥

॥ इति बारपदी योग ग्रन्थ ॥३९॥

## अथ बावनी योग ग्रन्थ ॥ ४० ॥

बावन अक्षर लोक सब , सुर नर लोक अनन्त ।
धाऱ्या स धूवा जायगा , [3]अखै अक्षर भगवन्त ॥ १ ॥
सिध साधिक जोगी जनक , सुरनर कहै विचारी ।
ए सब करि सबतें अगम , तहां कछु जीति न हारि ॥ २ ॥
मुसलमान हिन्दू सबै , बहु विधि करै विवेक ।
दोय राह दीसै दुरसि , करता सब का एक ॥ ३ ॥

१ साकल २ स्वस्थान में ३ अक्षय

सबद तहाँ संचर पढ़ै, संचरि सरबस व्याप ।
जिह सबद निरभै परसंत, फेरि कहाँ मन जाय ॥ ४ ॥
जो ऊंकार आदि है माया, खंड खंड करि रूप बनाया ।
जल थल जहाँ तहाँ रही समाय, माया साधे माया खाय ॥ ५ ॥
कका कसर असुर चलि आया, जुध कीजै गुरु आय अगाया ।
गहि गुरज्ञान ध्यान उर धारो मारया हार महारिपु मारो ॥ ६ ॥
खखा खबरि खालिक की पाई, सींधूंठे बाजे सहनाई ।
ठाई ठीकी पड़ै लड़ाई, साथी हरि साथी जीती जुध भाई ॥ ७ ॥
गगा गरब कहो क्यू कीजै, निसदिन [1]आव घटे तन छीजै ।
जाबे रिप तुरन नांई हाजे अरिदल जीति अगम गढ लीजे ॥८॥
घघा घात बात एक करिए भवसागर मे चकतें तरिए ।
राखे रांम तिसी विधि रहिए, आसा छाड़ि परम गति लहिए ॥९॥
[2]नना नाधि बांधि मन राखो मुखतें मिथ्या सबद न भाखो ।
सुखमनि फेरी घेरि घरि आवो, गग गमन मधि मठ। जमावो॥१०॥
चचा चूक पड़त है भारी, कब समझो भव भजो मुरारी ।
भटको कहा भट फिमी मरयां, चित्रसहार भगति उर धरया ॥११॥

१ आयु २ भाषामें ङ और न की जगह नकार ही किया गया है ।

छछा छाप अगम की वांचो, निहचल के निरभे रंगि राचो ।
पासा हाथि अथि छक सारी, अब चूको तो बाजी हारि ॥१२॥
जजा जागि जुरादल आया, सुर नर असुर पगड़ लाया ।
बासै काल जुरा भैडरणा, निरगुणभजो [1]अमख भखिजरणां॥१३॥
झझा झरे भरेगा सोई, यह वातां सिध साधन होई ।
भजि भगवन्त छाड़ि सुख दूजा यह विधि करो नाथ की पूजा १४॥
नना[2] नाहर के [3]संगि छाली, [4]जंबक [5]मैडरँटलै नही टाली ।
चौहे वेठो रहे निराली,तिण है वोटन ताकै लाली ।
टटा अटल तहां टलि रहिए, परघरि वसि पर दुख क्यूं सहिए।
चिन्ता बसै डसै घर मांही , तब लग निज घर लाधा नांही ।
ठठा ठीक विन ठौड न लाहिए फूटै मन फीटा क्यू वाहिए ।
वाणि जहर अमृत करि पीजैं, काच मटै कंचन क्यूं दीजै ।
डड़ा डह डह डह क्यूं हसिए, सापणि का मुख मांही वसिए ।
छल बलकरि खासि के खाधा, [1]नि गुसांई निगु सांचा लाधा
ढढा ढह्या क्यू पढि ग घर रहिए, कुपढ है तब तो संगि ढहिए ॥

---

१ नहीं खाने योग्य संतोष, भक्षण मथातें धारण कर के २ ओंकार
३ मनसा ४ ठंकार पवन ५ ज्ञान

विवधि जीग जीपति सग रहिए, तो [2]दारुण दो[3]जिग दुख सहिए।
रखौ रुचि मांही रस पाया, पीवन छकया सहजि घरि आया।
अहि ४खोदय ज्यूं तजि गुण काया, मेरी जाइ अभेद समाया।
तथा तात पिता सुत सोधौ, सुत केवल मधि पवन निरोधौ।
सुत के हेत पिता घरि आवे, निरभै यको निडर घर पावे।
यथा याचि ऊपर करि काने, पावौं सुपह[5] छाडिर हो छाने।
करसा कादि भाम त्यू कीधे, निर पख है निरभै यह लीजै।
ददा दुसह गया निज दरता, मही तहाँ आप पिराण घर गहता।
सत रज तम दुरमस्त सहता, निरभै मया मिन्या हरी रहता।
यथा ध्यान पयी को धरिए, मूनक छाडि अमर घर धरिए।
गया कुसाबी साथी आपा निरभै नाथ निरंजन पाया।
मनी नाम निरन्तरि लीजै सिरके सटै सुरत सिर दीजै।
साद मिले तह धार मिला जै सौदो पटेन पूंजी छीजै।
पपा पिमण देह गुण दारुण, घात महत आपा घर मारण।
हरि पर हरी विमतार न कीजै पर वसि पड़ि परदेस पसीजै।
फफा फरि मार सब आई हरि बिन मगोन पजे कांई।
तजि अभिमान राम मधि सोई साद बिन सुनी सज न सोई।

---

१ यतिहीन  २ भयंकर ३ नरक ४ दर्प कंचुकी ५ ज्ञान

बबा बोल कुं बोल न कहिए, राखे राम तिसी विधि रहिए।
सुख संसार निजरि सुख नावे, घर जाया घरकी तब पावे।
भभा भरम नदी क्यूं बहिए गहि गुर ज्ञान किनारे रहिए।
आलस छाडि अवधित तन छीजै, राम दया दरसै त्यों कीजै २९
ममा मोह किसी विधि करिए, मरणां सही यहै डर डरिए।
ओ घट छाड़ि घाट जाय तिरिए, चितवित घटे न पूठा फिरिए३०
ममा मधि डरे मरेगा सोई, बिन मूनो सिध साधन कोई
अगम उरक गुर गमि सिखवांचै, सबदविचारि मिल सुखसाचै३१
याया या बिन और न दूजा, मन गहि पवन करो हरि पूजा।
दीसे जिको सुतो सब माया. फल ताको छाड़ो फलचाया३२
[1]जजा जोग मूल जो जानै, इन्द्री मन प्राण एक घरिआंने।
अगम पियाला भरि भरि पीवे, परचै लागा जोगी जीवे ॥३३॥
ररा मन राखि रजा में रहिए, बिन हरि रजा बहोत दुःखसहिए।
राम बिसारि पसरि विष पीया, दिन दस पांच कहा जोजीया३४
लला लहे गहेगा सोई, जहां देखूं तहां और न कोई।
गांवण हारा काकहि गावे, आदि अन्त कोई मधि न पावे३५॥

---

१ वेद के उच्चारण में य को ज बोला करते है इसलिये यकार पुनर्वार जकार दिया गया है और ( ब्रह्म विद ब्रह्मैव भवति ) इस प्रमाण से ब्रह्म विद की बानी वेद ही है।

यथा अगम अरथ इम पाया, हर हरख्या हरही हर खाया ।
तरवर अगाह वहां करिवासा, देखि अवधू अगम उमासा ॥३६॥
शशा सुख में सींगी बाजै, परम उदार अरथ हर छाजै ।
पद निरबाण निरन्तरि जागै (गढ) अचर पवैन सहकर लागै ३७
षषा पेष लगि भर भावै, सापे रखे षोर भति लावे ।
निरमै वस्तु नफो घरि आवै, तब अगमें तै मूल गमावे ॥३८॥
ससा समझि बिना दुख भारी, गाफिल पचैं मरे छकसारी ।
चेतन ह वो षोट चुकावै, पासा हाथि माधि भरिभावे ३९
हाहा हथ सहस हर लागा, पस्ता खसे ठिक ठाल भागा ।
सतगुरु षोट षोट नहिं काइ, सन्मुख रहि लावे त्युं लाईं॥४०॥
षाषा सूनी मारि मनाया, मैं १वासि करि रैति बसाया ।
अविनाशी निरभै सुख दीया, करता जोर जेर सो कीया॥॥४१॥
२क्षक्षा क्षाक्षच लोम न करिये, चार्नो देख अयी भै हरिए ।
करम कसर छाडो छक छाया, अगगति ममौ अवधिदिनआया४२
बावन अषर पंडित कहै, सबद सबद का अचर लहे ।
ईसर छाडि निअषर होय, जन हरिदास ता१समिनहिकोय४३
बावन अषर पढे व्यापाय, अषर अगम रह तहाँ समाय ।
जन हरिदास निरभै तब होय, सहै अस्त मरै नहिं दोय ॥४४ ॥

---

१ मध्य वस्तु २ इ बिग ३ कहीं २ न की जगह क होता है

(नोट) यह बावन अक्षर मणिपूरक चक्र के हैं और आपकी रश्मिया हैं विद्यार्णव के चतुर्थाश्वाम में विशेष विवरण है और ह्रँकार में स्वरादि वासहि कों का अन्तभाव मानकर त्रिपुठी करके बावनसंख्या पूर्ति जानो

॥ इति बावनीयोग ग्रन्थ ॥ ४० ॥

## ॥ अथ सूर समाधि योग ग्रन्थ ॥ ४१ ॥

यहां विवेक उहां मोहदल, खेत बुहारथ्या देख ।
ऐं मारें के वे मारिलै, संचर रहे न [2]सेख ॥१॥
साथ दोऊं दिसा देखिजैमारिखौ, बात थोड़ी हवेला [3]मिसीपारिखौ,
गैंद गाजे गुड़ै कहर भे भौतिभौ, संग्राम जीतेतिसैं मीख देसावतौ ।
मिल्या सबलां सबल खलै बाजिसी आजतौ,
बापडा बड बडे रहे ओगाढ जौ ।
जन हरिदास आमा मुखी, मंड कहांवै सूर,
अति निवेडा होवमी, [4]जबरिण बाजे [5]तूर ॥२॥

१ उसके समान २ शेष ३ प्राप्त होगा ४ युद्ध में ५ बाजा

सुर बाजे मलौं भाजरिया मारका नासि गोला[१]भिरहद्दकंठैसारका
मरद मूछाला रिया देखि दद कारता,
भींछ पायोंपडे धार नहीं पारका ॥
घोर तोले सुर्ज मार तन भारता,
भाल वेखिये सुरत दाखियों मारता,
[२]वेग भल्लप परछी बहै, मार मुंहै मुरि खाहि ।
भवरि दीसे बिगसता, करि तोरण बंदण मांही ॥२॥
परखि बानां बढा सार सोधा घडे
खाह की पाहकी भाम पडयों पडे,
बाग के भाप मल फौज स मुखि खडै,
साकर्ता हाकतां ओप हाका कर ।
भाल पैलां दलां देखि मारे मारें,
गुरब पाबै सिरां पिसण चुकि चढ दडे ॥
[३]सोण भकारा भाजका, पडे मर्दां सिर मार ।
सबको दीसे मान्हता गहि पांचों हथियार ॥४॥
भापडे भांपधे गह मरधा पोलतां,
घणां ममता किया भांखि नहि खोलतां

१ अश्व २ घाव ३ रुधिर

[1]खारकां वायकां औरकूं छोलता,
सार धारा मही देखि तन तोलता ॥
मूंछ गहि सा पुरस न्याय हसि बोलता,
आज का दयो [2]सनें खडग सति मोलता,
पडिया लग करि दाहियों, वावै भुज गहि ढाल।
आप अखाडे आनकै, सबको दीसै माल ॥५॥
सकल साचे मतै दलै दोखियां दलां,
सूर रिण आहुडे खेत खेलै खलां।
तीर गोली वहै बांण छूटे छडां,
घुरे निसाण मन मांण मोटा मडां
जांणि वण राव चूर चुरै वणचरां,
दांमणी सार त्रिधि सारधू कै घुडां,
खङ्ग लीयां छत्री खमैं, मडन्या महारिण मांहि।
लोह घरट घमसाण मुखि, पड़ स पीस्या जांही ॥ ॥
तौ वाजतैं लोहड पाव मांडया खरा, कायरां कन्दरे गया छिपि झखरा।
खारकौ मारकौ सूरणां वांनरा, घणा चूड़ि ला भाजसी आज काहूं घरा ॥

१ कठिन वाक्यों से २ दिवस

सूर तहां धीरज सदा, मनि आतुरता नांही ।
हैदल गैदल देखि करि,[1]झोके झाजां मांही ॥
जन हरीदास मस्तग रह्या, हरि कू सौंप्या जांणी ।
दूजा माथा खिरि पड्या, बैली खांचा तांणी ॥
तीर तुपक बर्छी बहै, विनसि जायगा चाम ।
सूरां का मैदान में, कहा कायर का काम ॥१०॥

॥ इति सुर समाधि योग ग्रन्थ ॥४१॥

## ॥ अथ सूर समाधि का अर्थ ॥४२॥

मोह कहै विवेक सूं, वैर कियो सुख कौंण ।
मैरी वसुधा ऊपरे, तूँम करता है गौंण[2] ॥१॥
आप सराहै आप कूं, कौंण बडाई एह ।
तेरी वसुधा तुं घणीं, तौ तू शिर सटि देह ॥२॥
जीव रखी जरणां यहां, उहां आसा की आथ ।
मोह बमेक दोन्यू मरद, आप मंड्या भारथ ॥३॥
यहां तुर सतगुरु सबद, राग दोष उहां तूर ।
जन हरीदास कायर डरे, सूरां दूणां नूर ॥४॥
सील गयंद जहां अणमरे, काम गयद मिटिजाय ।
जन हरीदास ता घटि मदन, चढौड़ि न गरजे आय ॥५॥

---

१ वीर पुरुष मानों जहाजों में झूल रहे हैं २ गमन

असली ज्ञान जा घटि उदै, अंतरि प्रकटै आप ।
तहां जन हरिदास अज्ञान गत लोभ कहां ठहराय ॥६॥
मान अमान इसती तहां, जहां दया गरीबी देख ।
जन हरिदास चौदस भया, ईश्वर रह्या न सेख ॥७॥
तहां कुबुधि नालि दारू गरब, गोला मैं तैं मांही ।
अनेक साध सन्मुख लड़ै, मार मुहै मुहि खांही ॥८॥
जहां कुबुधि नालि दारू दरद, गोला विरह अपार ।
जन हरिदास कायर डरे, पड़े जहां सिर मार ॥९॥
पाप पुनि जोधा जहां, जहां जोध वैराग ।
जन हरिदास निरभै भये, दई उपाड़ी भाग ॥१०॥
जहां भजन गुरज जहांज्यिविधि रस, सत मंड्या खड्ग भाव ।
जन हरिदास कोई भरा, भाव निफ्टो राम ॥११॥
जहं सन्तोष असन्तोष द्वै, अपणी अपणी टेक ।
हूं तो चाकर मोह का, मरे पखी विवेक ॥१२॥
अधम जोधी जोध जहां, उहां मनोरथ तीर ।
मोह अमक चौंपक करे, कायर धरे न धीर ॥१३॥
जहां दत खड़ग खडी खिमां, तहां चिन्ता डास खड़ग छोह ।
जन हरिदास लोभी नरां, भाज आमिसी लोह ॥१४॥
जहां विचार अभिमान जहां, परट दई दल मांहि ।
महा जोध मांच परट कायर पीस्या जांहि ॥१५॥

यहां तप तर वारि तृष्णा वहां, पड़े चोट सूं चोट ।
सूरवीर साचै मतै, कायर ताकै वोट ॥१६॥
यहां तत्व तरवारि करि, वहां चादि तेग करि लोय ।
यहां खञ्जर धुनि ध्यान धरि, वहां खञ्जर गुण दोय ॥१७॥
यहां जम दाढ करि जोग की, उहां जमदाढ गुण देह ।
ताती सिली दोय मिली, चंद सूर गुण एह ॥१८॥
यहां सेल अनहद सबद, बिरधि सबद उहां सेल ।
मोहविवेक मारे मरै, मंड्या [1]पहोम परि खेल ॥ १६ ॥
मनराजा का यहहै सहर, मोह विवेक सुत दोय ।
जन हरिदास जीत्या विवेक, मोहगया मुह गोय[2] ॥ २० ॥

॥ इति सुर समाधि का अर्थ ॥४२॥

## ॥ प्रवृत्ति निवृत्ति योग ग्रंथ ॥ ४३ ॥

सप्त धातुकी सौंज सब, अहं गिर प्रगट कीया ।
नव दरवाजा राखि के, त्रिगुण तहां चूना दीया ॥ १ ॥
पांच तत्व सत छोह, महा सुन्दर पुर काया ।
नाना बुरज अनेक, चित्र कांगरा वणाया ॥ २ ॥

[1]नौसै खाई कोट , [2]पांच पायक अभीमानी ।
[3]महल मंदरि माहि मांही, दोष धारू [4]पटरांणी ॥ ३ ॥
चित चंचल परधान , चाव नांना बिधि पानी ।
रंग रोस रस दाह , मन राजा रस धांनी ॥ ४ ॥
मापे का सिर छत्र , मधु मायक कर मांहीं ।
पर के सती प्रीति येह निरखे ये नांही ॥ ५ ॥
पखै करै सिंगार, हाक दे लोक हंकारै ।
निरखै रहै निरास , नहीं काहू के सारै ॥ ६ ॥
निरखै पुत्र बमेक , सुबुधि कुलवंती नारी ।
सील संतोष परधान, ग्यान चाकर सग धारी ॥ ७ ॥
सरधा के घर सील संतोष के समता नारी ।
छिमा जरघो घर ग्यान , बिचार धारू दरधारी । ॥ ८ ॥
पखै के सुत मोह कुबुधि सूं फेरा लीया ।
काम क्रोध घर धान , लोभ अग्यान सगिलीया ॥ ९ ॥
तृष्णा जरघो घर काम, क्रोध हिंसा हंस्या परणी ।
आसा के घर लोभ, अग्यान के चिन्ता धरि [5]घरणी ॥१०॥

---

१ चारिंयं २ क्योंमिलां ३ कोहम ४ आरा एक्म ५ स्त्री

चौमटी चेडी साथी, छकी अपणा रंगी राती ।
दुख सुख होय दरबार, तहां खेले मदि माती ॥११॥
मनमा मनको हरे, चरे नाना विधि खेडे ।
काम क्रोध अभिमान, तहां फिरि आमण मंडे ॥१२॥
कुबुधि घटा घर हरे, खिवै नानाविधि गाढो ।
लोभ लूर झड मंड्या, मोह की सेन्या ठाडी ॥१३॥
महा मनोरथ गाति, तहां कछु सूजे नांही ।
संशय हिंसा चिन्त, खुशी खेलै ता मांही ॥१४॥
शोक वियोग अभिमान, अहं मिलि खेलै मारी ।
देखि ग्रान थर हर्‍या, डर्‍या मै मान्यां भारी ॥१५॥
तहां विचार विवेक बुलाया, सील संतोष ज्ञान संगि आया १६
बीड़ा सब काहू कू दीया, हाथि पसारि खुशी है लीया ।
सैन्या मोह मवल है भाई, ज्यूं जाणों त्यू करो लडाई ॥१७॥
कहै विचार प्रथम जुध मेरा, मारि क्रोध मुक्ता द्यो डेरा ।
संक पक भै नांही मेरे, मारूं क्रोध क्रोध के डेरे ॥१८॥
कहै सन्तोष पांचि वसि करिहूं, लालच छाड़ि लोभ सूं लरिहूं
ना मै डरूं न जुध करि हारूं, लालच लोभ खेत धरि मारूं १९
सील कांम अपणो वसि कीया, प्रबल जीते दाढ तलि दीया ।
ब्रह्म अगनि में जारि उडाया, निरभ प्राण नांव सू लाया ॥२०॥

प्रकट्या ज्ञान अज्ञान भ्रम भागा, धीरज बांध्या मोह लागा ।
कायर कहे कहा बल मेरा, (ब) मिटि गया काम क्रोध सा घेरा २१
खिमा खड्ग ले हाथी, चित हस्या दोष मारी ।
सांसौ गयो बिलाय, दया क महल पधारी ॥२२॥
सुबुधि कुबुधि कूं ग्रासी, साधि समता के धाक्षी ।
मगघो पे कावीय, मोह की सन्या [१]पाक्षी ॥२३॥
ठिह के[२]सबूरी साथ, जोग बल काया सारे ।
शोक [३]वियोग अभिमान, मोह का मूल उपारे ॥२४॥
काम मृतु भव [४]मटी और मनमें भगतु भाई ।
मलया मनोरथ पान, मेर सिरि [५]गग समाइ ॥२५॥
[६]स्यौं की के सुत जागि, सिव बन मांही मारया ।
[७]महकी करे मलार, शसै [८]फिरि ध्यान संगात्या ॥२६॥
खिमा संवारे सेज बसे धीठी निरदाव ।
महकी करे सिंगार स्वेत खर खांघि न पावे ॥२७॥
[९] मूसा के कर [१०]सेप, उलटि बल मांही पैठा ।
[११]कुम्भार चलया [१२]आकास, मछ कुंभस्थल पैठा ॥२८॥

१ गौघी २ सन्तोष ३ वियोग ४ पूर हुई ५ वासी ६ चैतन्य ७ संसार ८ मनसा ९ मचि कम्पायी १ मन १ कुंभार पवन १२ मन १३ आत्म कमल

पिसण गया पग छांडि, भरम का ताला भागा ।
तरवर एक अनूप, प्रांण तिह तरवर लागा ॥२६॥
वसुधा सूं झड नांही, गोढ तरवर नहीं पाया ।
अमृत फल रस रूप, महा सुख सीतल छाया ॥३०॥
ता तरवर में धाम, मोह नहि व्यापे माया ।
निरालम्ब निरलेप, अगम गुर गमतें पाया ॥ ३१ ॥
परसि निरंजन देव, भेद लाधा भ्रम भागा ।
आनन्द अगम अथाह, मन मनसा तहां लागा ॥३२॥
परम ज्ञान पर ध्यान, आंन रस परसि न पीवे ।
परम मुनि परदेव, जागि लागै सो जीवे ॥३३॥
परम तेज पर ज्योति, जोति मै जोति निवासा ।
उलटा चढ्या अकासि, मूल मंडल में वासा ॥३४॥
ब्रह्म छौल में छक्या, लोभ की लाय वुजाणी ।
ब्रह्मा विष्णु महेश, सेप भागा विन पाणी ॥३५॥
नारद सेती नेह, ग्यान गोरख रज धानी ।
अनहद सबद उचार, सुरति निज सबद समांनी ॥३६॥
पांचूं [1]पांडव फेरि, घेरि अपणो घरि आया ।
[2]चांवड के सिर चोट, [3]भैद भेरूं का पाया ॥ ३७ ॥

---

१ ज्ञान इन्द्रियां २ मनसा मालिन ३ मन

कैरू सेनि अपार अर्गकि भरि फौज उठाई।
चंद सूर समि कीया, तत सू तामी लाई ॥ ३८ ॥
नौ से जोगणि साधि, फेरि आता मन कीया।
अनत मिधामृ प्रीति, सहज में शिव रस पीया ॥ ३९ ॥
अर्द्ध नाथ निज ठौर, अकल तरवर की छाया।
ज्ञान सिंघासन बैसि, राम रटता पति पाया ॥ ४० ॥
यथा तिलां में तेल[1], काष्ट में अगनि प्रकासा।
यथा दूध में घृत, पहुप में[1] परमल वासा ॥ ४१ ॥
यूं जन हरिदास अगाधि अगम, व्यापि रह्या सब माहि।
कोई जन आत्मा सो जानि है, घणा जानै नाहि ॥ ४२ ॥

इति प्रवृत्ति निवृत्ति योग ग्रन्थ ॥४३॥

अथ माया छंद योग ॥ ४४ ॥

फूहड़ी फूहड़ी धावती, चक भरे भरि खावती ॥
राम विमुख वहां आवंती, मोह नदी में नहावती ॥
अपनें अंगि लगावंती काया हार करतार अगन गुर ॥
दीन दयाल सुखावंती, कबहु[2] मामणी कब हूं माता (अपणो)
खोले राखि खिलावंती ॥
कबहू रूसे कबहू तूसे नद मृदंग बजावैरी ॥

[1] सुगन्ध [2] की

कबहूं तामसी कबहूं सीली, जीवां जेर निगवंती ॥
जो गणि होय जुग उद्रहि जालै, जहर पियाला पावती ॥
मूंडै मुहठै, डाकणि डोसी. भूली ने भरमावंती ॥
ऊंच नीच सब सूं मिलि खेलै, मूर्खा भोग लगावती, ॥
दहू अंगो आंपण ह खेलै, नांनां भेख बणावंती ॥
डाकणी पापणी सापणी, भामणी मोगणी भेददे रोगणी ।
जोगणी जागणी भूतणी लागणी, भूकरी सूकरी काकणी कूकरी ।
आछणी वोपणी नरककी टोकणी, जरजरी जहरिणी कालगति कहरिणी ।
त्रिविध तन धारणि हेत दे मारणी आवणी जावणी डहकी डहकावणी ।
सार्थंभ थरहर मकट मारी मरै, पांव पाछा धरै, अगनि में पैसतो धसै पाछी पडै ॥
जन हरिदास माया मते, मिले समाया होय ॥
हरिसाचा सूं साचामिले, तौ पला न पकडै कोय ॥

॥ इति माया छंद ग्रन्थ ॥४४॥

## ॥ अथ योग मूल सुख योग ग्रंथ ॥ ४५ ॥

[1]नीचे डाल मूल भयाऊपरि, [2]अग्या सिष मैं सूम ।
[3]मकड़ी कूं माखी नहीं छाडै, [4]मांगा कू सब सूजै ॥ १ ॥
[5]मूसे दोड़ी बिलाई पकड़ी, [6]चिड़े सिचांणो खाया ॥
[7]सास बहू के पागे लागे, [8]समद बूंदमें पाया ॥२॥
[9]पांगुल भाग अगम का साधा, [10] बहरे सब कुछ सुणिया ।
[11]मूरख पंडित की गति पाई [12]सूल जुलाहा बणियां ॥३॥
[13]मीन मकर कूं खावण लागी, [14]दादुर उरग पचाया ॥
[15]पांणी मांही अगनि मरूती, [16]तिसमें मेर समाया ॥४॥

---

१ ( ऊर्ध्वमूलमधःशाख ) गीता १५ अध्याय २ मलवा मालिक संसार ३ माया-ममता ४ महिला ममता पेत्रोंसे रहित ज्ञानी ५ मन ममता ६ चित्तमन रूप माल कू ७ सुरति सुबुद्धि के ८ मन परा प्रकृति में ९ ज्ञानी मन १० शब्द विषय से रहित ज्ञानी कौशिक न रखता हिम द सहित ११ सामान्य मन्त करण सहित विशिष्ट चेतन रूप जीव मूर्खोंको ज्ञानविधा पुरुष हो क्यों मन का उपदेश हुआ १२ जिला मास रहित मन रूप सूत मज्जन रूप में पुरुष रूप जुलाहा से बुना जाता था सो मन ज्ञानी होय के सर्वा मनोरथ हुए करता है १३ सुबुद्धि कोप १४ सुख मन मल नाशक दोषोंको १५ सीतल अन्त करण रूप पानीमें मन रस मनि १६ सूक्ष्म तत्त्व वृत्ति में अक्षम

[1]सींचत वाडी सब कुमलावे, काटत वहौ फल लागा ॥
[2]साहा चौर कै मिन्दर पठा, साह गृह तजि भागा ॥ ५ ॥
[3]खाट पुरुष परि सोवण लागी, [4]हांडी अनमें रांधी ।
[5]मृतक जमकूं दई सासनां, [6]गाय वाछडे वांधी ॥ ६ ॥
[7]फूल कली में रह्या समाइ, सो कवहु नहीं फूले,
तन पांणी म भीजे नांही, विनपांणी नित झूले ॥७॥
[8]पांचू मिलि मत भलौ उपायौ, बुरे पथि नहिं जांही,
निशदिन ज्ञांन गुफा में पांचू, वाहरि निकसे नांही ॥ ८ ॥
सातू समद सुकाया चौडै, जलकी टाहर खोई ॥
वैरी आय मिल्या चाकरके, गिरीवर डाह्या दोई ॥ ९ ॥

---

१ शुद्ध बुद्धि विषय योगतैं ७ वासना रहित होने ते २ मूल अज्ञान रूप शाहके मलीन अन्तः करण रूप गृहमे विवेक वैराग्यादि प्रवेश होने ते अज्ञान रूप शाह भागा ३ तमोगुण पर शुद्ध सत्थ वृत्ति ४ वैराग्य वोध उपशमादि अन्न माया कु वाधित की ५ प्रारब्ध कर्म ते रहित शब्दादि विषय शून्य मुर्दा ज्ञानी ६ ज्ञान बुद्धि वासना रहित की ७ जीव अधिष्टान ब्रह्म में ८ कर्मेन्द्रिया—ज्ञानेन्द्रिया ।

सतगुर थिवी समझाइ मन्तरि, तात निसदिन भागा ॥
तीन ताप तनकी तब भागी सीतल मुख भय भागा ॥ १० ॥
सोना दाग जगाती ईस्था, सब आपर्ण साखि किया ॥
गहि गुरज्ञान ध्यान धरि अन्तरि, साईं सरवस दिया ॥११॥
गृह हद तजि बहु मुख पायो, तरवर भकस बसेरा ॥
सीत धूप दोऊं नहीं ब्यापे, पकड़्या निह चम डेरा ॥१२॥
मोह मद दाह दई ते न्यारा, सुखमें आय समाया ।
सतगुरु सरणि भक्ती मन उपजी, खावा सोई खाया ॥१३॥
मनसा बाचा आरम्भ तजियो करम करे नहिं काया ।
सुमर्‌ई एक अखिल अविनाशी, पकड़ि छोटी छाया ॥१४॥
तपसी भए तजि बड़ाई त्यागी, भसति गरीबी आई ।
सर्व निरंजन पकड़ि दुखसुख, छाड़ी मान सगाई ॥१५॥
निरंजन सदा सहाय हमारे, काम न बिगड़े कोई ।
आसा तृष्णा छाड़ि मनोरथ मनकी तुष्ण्या खोई ॥१६॥
पाक पीरई मंद्या म तजि, ढब सब कछु समझाया ।
मनमलि भकसि हृदामें मरही, साध संगति सुख पाया ॥१७॥
पाक पाक में आयें समाने, ठौर मेल कूं नांहीं ।
मैल मैलकी आवगा पहुँचे, समझि देख मन मांहीं ॥१८॥
माया मल सकल भ्रम मैला निर्मल साधू काई ।
पांचस्वाद तजि मने निरंजन, सकल मैल तनि धोई ॥१९॥

हिरदै मैल रती नहीं राखै, भजै सदा अविनाशी ।
गरभवास सो कबहु न आवे, पड़ै न जमकी पाशी ॥२०॥
तन मै कँवल तहा मन मेरा, उलटि न बाहरि आवै ।
स्वाद वस्तु का भारी लाधा, निशदिन अमृत खावै ॥२१॥
जैसे सीप समंद में ऊँडें, स्वाति बूंदलू पठी ।
खारो पांणी पीवै नांही, समटि आपणा यो बैठी ॥२२॥
जैसे नजरि चकोर न खंडे, सीतल सुख कूं लोडै ।
अंगार चुगै पर दाजै नांही, निजरि चंदसूं जोडै ॥२३॥
चातक नीच नीर न ह पीवै, ऊँच बूंद कूँ चाहै ।
तन खोवै पण छाडै नांही, ऐसी सदा निबाहै ॥२४॥
हंस मुगताहल निशदिन ढूंढै, करक कागते न्यारा ।
काग कुबुधि सूँ नेह न बांधे, ऐसो गहै बिचारा ॥२५॥
कीटी भृंग गहै भै हृदै, भृंग होत नहि बारा ।
काया का गुण सबही त्यागै, तब जाय पहूचे पारा ॥२६॥
कुरंग नाद सू नेह लगावे, देह बिसरि सब जाहि ।
धीरज पकडि गहै पण काठौ, बाण बधिक का खाई ॥२७॥
मीन मरै पाणी जब त्यागै, बिन पांणी नहि जीवै ।
भजै निरञ्जन ऐसे साधू, अविनाशी रस पीवै ॥२८॥
पतग दीप कूं सर बस देवै, तन मन आपो खोवै ।
ऐसे साधू सन्मुख हरि सूं, उलटि न पाछो जोवै ॥२९॥

चारी चोर करे हिरदा सुध तजै वेद की आसा ।
माटो मास गहै हिरदा में, समझि[1] दाहिणी माखा ॥२०॥
सती अगनि में काया जारै, पीव प्रीति के माटै ।
तजै सासरो पीहर त्याग, मन फिरहू नहीं माटै ॥२१॥
सूर पीठि पाछी नहिं फेरै, सन्मुख चोटो झालै ।
पैसा मरिदन आनि सबेरी, साहिब तजि नहिं चालै ॥२२॥
चन्दन और वृछ नहिं कोई, और वृछ सब काथा ।
और वृछ चन्दन की संगति, है चन्दन सधि बाथा ॥२३॥
हीरा मोहि पडै नहिं झाई, पांच रङ्ग की कोई ।
फूटि फटकि मणि पैगी आवै, दुख सुख व्यापै दोई ॥२४॥
सतगुरु सरणि गहै सब दुमध्या एक निरंजन पाया ।
करमविवर मीति सकल विपापी, सो मेरे मन भाया ॥२५॥
पाप [2]र पुनि दहूँवे न्यारा, साधों का मत आया ।
ऐसी समझि पड़ी हिरदा में, करम [2]भर मरम बहाया ॥२६॥
साध कहै मिथ्या नहिं भाखै, अविनाशी सुख दीया ।
मन की कसर दई सब न पै, सब भरपाई करि लीया ॥२७॥

---

१ एक शकुन पक्षी की बोली । २ भौर (यह भौर मर का अपभ्रंश है

जन हरिदास अविनाशीसंगति, आवा गवन चुकाया ।
अमर जडी हिरदा में राखी, स्वाद समद में पाया ॥३८॥
जन हरिदास निरभै पदपाया, भैं नहि व्यापै कोई ।
जैसे नदी समुद्र में पहुँचे, एक हुवा तजि दोई ॥३९॥
जन हरिदास काया तजि माया, अरूप रूपमें मिलिया ।
जैसै आटै लूंण न अन्तरि, एक मेक ह्वै मिलिया ॥४०॥

॥ इति योग मूल योग ग्रन्थ ॥ ४५ ॥

## ॥ अथ ज्ञान अज्ञान परीक्षा योग ग्रन्थ ॥ ४६ ॥

बुराई छाड़ि भलाई पकडी, भै तजि निर्भै गाया ।
धरत्यादिक छाड़ि अधर सूँ लागा, मल तजि निर्मल पाया ॥१॥
हीरा गहि कौड़ी सूँ न्यारा, कंचन काच छुडाया ।
कूप छाडि सागर सूँ लागा, झूठ तजि सांच सुहाया ॥२॥
मुक्ता(हल) गहि [1]गुंजासूँ विरकत, विष तजि अमृत पीया ।
थोथा छाडि कणूँका साहया, छाछि तजि घृत लीया ॥३॥
[2]मर्कट मति त्यागी हिरदासूँ, [3]कूरम मति ले जागा ।
[4]काग कुबुधि सूँ विरकत हूवा, हंस बुधि सूँ लागा ॥४॥

---

१ घुघुची (रत्ति) २ चचलतावश बन्धन वाली वस्तु को नहीं छोड़ना ३ इच्छित प्रिय वस्तु को नजर से व ध्यान से अखंड देखना ४ मलीन वस्तु को ही चाहना अवगुन त्याग गुणमेंही रहना

[1]उत्सु ज्ञान नहीं मन माने, [2]चकोर ज्ञान चित धारया ।
भँवर वासना लेइ कँवलकी, [3]मींडक का मत डारया ॥५॥
कायर का मत परिहरि प्राणी, [4]सूर मता में रहिए ।
बड़ो पुरुषों सूं मिलता नारी, पति वरता क्यूं कहिए ॥६॥
पतिवरता पति कूँ नहिं छांडे, सिंह घास नहिं खाई ।
साधू सदा भजे अविनासी, चोर चोरपे जाइ ॥७॥
सती सीस में रहे अहो[5]निस, असती भांम के कांठे ।
सती असती संग नहिं बैठे सती असती पै नाठे ॥८॥
कंचन थिरम बराबरि तूले, पड्या अगनि में न्यौरो ।
थिरम असै कंचन क्यूँ को त्यूँ, मिटै थिरम को जोरो ॥९॥
पड़े फटक में पांणु भाई, हीरा में नहिं पैठे ।
[1]अवरसि घण विधि हीरा गहरे चोट फटक परि बैठे ॥१०॥
ज्ञानी और अज्ञानी मिलता, असौ मिलै नहिं कोई ।
वाके हिरदे एको आवे, वाके हिरदे दोई ॥११॥

---

१ एक रति से वस्तु मनहोष्म करना २ बीचमें रहना संसार ३ मालूम होकर पीछा संसार में गिरना ४ सिर के साई ईश्वर को बात करना ५ रात दिन ।

[1]धरम, नेम, तीरथ, व्रत पूजा, अज्ञानी आनहि धावै ।
ज्ञानी एक निरञ्जन सुमरै, पांचू स्वाद छुडाया ॥१२॥
[2]धरी देह धणी कूँ राखै, बिन आकार न मांनै ।
अज्ञानी के ऐसी मति हिरदै, अविनाशी नहि जांनैं ॥१३॥
ज्ञानी देह झूँठी करि जानै, विन देही कूँ ध्यावै ।
[3]एक र पांच पचीसूँ परहरि, सुखमै जाय समावै ॥१४॥
अज्ञानी भरम करम मूँ लागै, आंन कथा नहि भूलै ।
ब्रह्म ज्ञान सूँ हेत लगावे, जल थल मांही झूलै ॥१५॥
ज्ञानी भरम करम सब त्यागै, अणभै कथा सुणावै ।
सुमरै एक अखिल अविनासी, आंन कथा नहि भावै ॥१६॥
अज्ञानी कूं ज्ञानी नहिं मानै, दहूँ मनों मत होई ।
ऊँट र भैसि मतो नहि मिलिहै, भावै देखो जोई ॥१७॥
पतिव्रता विभचारणी, संगति सुख नहि कोय ।
तेल नीरमूँ ना मिलै, ल्हसण चन्दन भी दोय ॥१८॥
सांचै झूँठै ना मिलै, मिलै न कायर सूर ।
रात [4]द्यौंस से ना मिले, (मिले न) लोहे हेम हजूर॥१९॥

१ ईश्वरार्पण बुद्धि रहित कर्म २ पंच भौतिक देह युक्त ( मूढा मामेव जानंति मानुषीं योनिमाश्रित ) इस गीता वाक्य मै कही हुई भावना ३ प्रधान कुम भेद बुद्धि ४ रात्री दिन मे नहीं मिलती ।

सोनै काई लागि है, कंचन काई नांहि ।
अज्ञानी ज्ञानी ना मिलै, समझि देखि मनमांहि ॥२०॥
ज्ञानी आरम्भ ना करै, रहै निरालम्ब होय ।
अज्ञानी आरम्भ करै, सदा सहै दुख [1]दोय ॥२१॥
ज्ञानी पाप करै नहीं, डर पकड़ै जगदीश ।
अज्ञानी पाप करै सही, भजै न केवल ईश ॥२२॥
ज्ञानी गाफिल ना रहै, सदा सचेत स्वभाव ।
अज्ञानी गाफिल रहै, फिरि फिरि विष फल खाय ॥२३॥
ज्ञानी कपट करै नहीं, कपट करै अज्ञान ।
ज्ञानी सुमरै अलख कूं, अज्ञानी सुमरै आन[2] ॥२४॥
संगति तजि अज्ञानकी, ज्ञानी संगति लेख ।
ज्ञानी मांय अवाखसी, भिविध ताप तजि देख ॥२५॥
निरञ्जन सरनै दुखनहीं अ.रि सकै नहिं काल ।
जैसे गहरा समन्द में, पड़ै म[3] झींवर जाल ॥२६॥
औंको पांखी और सब, माया को अङ्ग देख ।
बिना निरञ्जन दोखसी, करसी अहौला मेख ॥२७॥

---

१ जन्म मरण २ भ्रम्म (माया) ३ भिन्न देखता ४ मच्छी मार का जाल

जलथल मांही भरमणां, विना निरञ्जन राव ।
[1]जोनी संकट आवणां, फिरणां ठांऊ ठांव ॥२८॥
माया तजि भजि नांवनिरञ्जन, जीवत अंजलि नीर ।
यौ औसर भी वहोड़िन लाभै, जमका काटि जन्जीर ॥२९॥
सतगुरु तोहि समझावे नीके, तूं क्यो भूलौ जाहि ।
ज्ञान दाढ समता जिह्वा मूं, काया के गुण खाही ॥३०॥
भै सूँ अलख निरञ्जन भजिए, गाफिल रहिए नाहि ।
पांच स्वाद तजि पर हरि दुखसुख, यहुमत गहि मनमाही ॥३१॥
भारी दुख है राम विसर्यां, लख चौरासी जूनी ।
प्रम प्रीति सूं भजि अविनाशी, ज्यूं पहुचै चौथी[2]सूनी॥३२॥
मौत [3]दिहाड़ा आव नेंड़ा, तूं क्यू गाफिल सोवै ।
निरञ्जन भजितजि आंन सगाइ,(तूं)क्यूं जन्म[4]अविरथा खोवै॥३३
काल कहर सूं डरपै नांही, ले ज्यूं चिड़ि [5]सिचांणा ।
विना निरञ्जन या गति होई, जमकै लोक सिधांणा ॥३४॥
वार वार तो कूं समझाऊं, अजहूं समज्या नांही ।
संसार सकल सुपनां सा देख, तौ समझ्या मन मांही ॥३५॥

---

१ योनि दुःख (चोरासी लक्ष) २ परमपद ३ मृत्यु के दिन ४ निरर्थक ५ बाज ।

ब्रह्म महेश इन्द्र शक्ति लौं, स्थिर कोई नहि दीसै ।
स्थिर है एक अखिल अविनाशी,(और)काल सबन को पीसै॥३६॥
गोरख नाथ कबीर कूँ, काल सकै नहि मार ।
जन हरीदास निरंजन मांहि (समाइया) पहुँचा पेली पार ॥३७॥
जन हरिदास सुख पाइया, सतगुरु सरणैं आय ।
वास किया सुख सिंध म, काल कदै नहिं खाय ॥३८॥
जन हरिदास भ्रमे नहीं, याही निश्चल ठोर ।
भागा भरम विकार सब, सहर गया तजि चोर ॥३९॥
जन हरिदास अविनासी पाया, काया नगरी मांही ।
सो जहां तहां भरपूरि है, कबहु बिनसै नांहि ॥४०॥

॥ इति ज्ञान प्रकाश परीक्षा योग ग्रन्थ ॥२१॥

## ॥ अथ पद लिख्यते रागगौड़ी ॥

### ॥ प्रथम पद ॥

च्यार [1]पहरदा कांमहै [2] विणजारिया तेरा जागण दा-छक एहवे।
सोवणादी विरियां नही विण जारिया तूं नाव निरञ्जन लेहवे ॥
नांम निरञ्जन लहवे अहोनिश विलम न कीजें वीर वे ।
जैसा कमांवे पावै तैसा नही किसी दा सीर वे ॥
सुख थोडा दुख वहोरे अनन्त है राम भज क्यूं नहि वे ।
जन हरिदास कहै विणजारीया तूं मति भूला जांहि वे ॥१॥
बाल अवस्था गति मति वुद्धि थोडी विणजारिया दुख सुख-
जांणै नांही [3]अयाण वे ।
मोह लग्पा माया ठग्या विणजारिया तूं भूलानांम भूलांन वे ॥
नाम भूलो ना फिरै चौरासी दिन दिन [4]प्रोढा होय वे ।
कहू कहुं डर कहू मिलि खेलै, अस्तन मांग रोय वे ॥
देह अवस्था पलटन लागी खरा खजानां जाहि वे ।
जन हरिदास कहै विणजारिया तूं सकै तो हरिगुण गाय वे ॥२॥

---

१ प्रहर का (पंजाबी भाषा में का की जगह दा आता है) २ विणजारा अर्थात व्यापारी (प्राणी) ३ अज्ञानि ! ४ पुष्ट

ग्यान अमल्या और बहोत विणजारिया सकलो ओर निवारि वे ।
हरि सुमिरण हिरदै धरो विणजारिया चालो देखि विचारि वे ॥
चालो देखि विचारि सहज घरि साचा सौदा लेहु वे ।
[1] कर मनुष जन्म हीरा पाया कौडी सटै न देहु वे ॥
मै छाडो निरभै भजो यह संक्षेप गुज वे ।
जन हरिदास कहै विणजारिया लेखा देणा [2]तुझ वे ॥
बरस पचास पूग्यें दीया विणजारिया धरा छीला पहरा एह वे ।
सुत वनिता पर वार पखेरा विणजारिया मूल हमारा यह वे ॥
मूल हमारा येह बड़ा मैं बहोत लिया सिर भार वे ।
अन्तिकालि कोइ संगि न चलै फूटि हांडी ज्यां वे ॥
के गारें के अंगनि जालें पूठा वैसे भाव वे ।
जन हरिदास कहै विणजारिया मी [3]चिद् अकेला जाय वे ॥४॥
अवधि सवाई बहि गई विणजारिया तूं चाल्या पूंजि हारि वे ।
और विणज सबही किया विणजारिया तैं लाध्या न राम संभालि वे ।
तूं लाध्या न राम संभारि सहज घरि सतगुरु सरखे भाय वे ।
मारग मुकत है [4]गैं ज्यूं त्यूं चाल्या खोटा खाय वे ॥
समझि नहीं थे खरा न खोया मला न उपज्या माल वे ।
जन हरिदास कहै विणजारिया तेरि मौष्पवत विधि चाकी नाव वे ॥५

---

१ हाथ में २ तुमे ३ मेल ४ रोंगे ५ संसार रूप जल में शरीर रूपी जहाज बह गई ।

॥ पद २ ॥

मनुप जन्म धरि हरि भजौ नाव निरञ्जन लेह वे ।
नग निरमो[1]लिक कर चढ्या कौड़ी सटै न देह वे ॥
कौड़ी सटेन देहूँ हीरा वाम जल थल है सही ।
तन धरै घरि मरह जामें भगति हरि न्यारी रही ॥
राम भजि हरि सबल साथी भरम भै चिंता [2]तजौ ।
अपरम्पार अपार अवगति मनुप जन्म धरि हरि भजौ ॥१॥
जन्म अमोलिक जातहै जांणौ कोई नांहि वे ।
राम भजन कां भै नहीं निशदिन भूला जाहि वे ॥
निशदिन भूला जाहि तहां गुर ज्ञान विन दुख पाइये ।
हरि भजन रस रीति न्यारी वहोरि फिरि पछताइये ॥
मूल दीरघ प्रथम दुख सुख विधा था कासूं कहे ।
भगवन्त भजि नर जरा ग्रामै जन्म अमोलिक जात है ॥२॥
नगर [3]अविद्या तहां नर बसै मन माया सूं हत वे ।
ममता मद मता फिरे चेतै नहि अचेत वे ॥
चेते नहीं अचेत अजहुं करम वसि पर दुख सहे ।
गुर ज्ञान विन नर न्याय अंधा काच सूं कन्चन कहे ॥
खबरि विन नर खाय खोटा कांम [4]विपहर संगी डस ।
काल कै कर केम निसदिन नर अविद्या पुर वस ॥३॥
मोह महल में मन सोवै चिंता [5]सौड विछाय वे ।
सांमै की सज्या भई मनसा जहां तहां जाइ वे ॥

१ अमूल्य रत्न २ चचलता आदि ३ मूलाज्ञान ४ सर्प ५ विछौना

मनसा जहां तहां आप दहि दिसि त्रिविधि मायप संगि भज्या।
सुखसील [1]साधी साध नांही कुपुच कांटा उर भज्या ॥
हरि नांव निर्मल नीर न्यारा कर मसि लगी [2]मसिर्व धावे ।
मज्ञान भस्पर्सि पांच रस वसि मोह महलमें मनसो वे ॥४॥

भवसागर सूं भव मांच्या तहां तुम्हारा भास वे ।
[3]गोविंद हरजी का नाम है झूठी झूठी भास वे ॥
झूठी झूठी भास हरि विन तहां क्यूं मठ छाइये ।
राम भजि मन राखि निःपक्ष पार ऊठरि जाइये ॥
भगाह गहिए भकह कहिए भमर भजि भवरा भस्या ।
जन हरिदास हरि बिन पार नाहीं भौसागरसूं भरभस्या ॥५॥

॥ पद ६ ॥

जगमें ऐसा सा भीकवा सुपना कासा काम वे ।
[4]आप पवि ई देवया भज्यो न कवहूं राम वे ॥
भज्यो न कवहूं राम सकलास एक रस लागा रहो ।
संसार दुख सुख पाप वेवी कुपहि कुसंगति क्यूं [5]वहो ॥

1 मिश्रपंथ में नहीं है २ अज्ञान से अज्ञान्य जोवे ३ गोविन्द ( ब्राह्मण )
४ भगाव ५ धारण करते हो

गोविन्द गावो गरव छाडो जाणी जहर न पीवणां ।
तव संग तात मात न[1]संगा वन्धु जगम ऐसा सा जीवणां ॥१॥
या सुख का दुख अनत है, गिणती ज्ञान न होय वे ।
सो, सुख पहली छाडणां, पला न पकड़ै कोय वे ॥
पला न पकड़े कोय तेरा, एह अरथ विचारिए ।
जागि पंथी कहा सोवे, सोय [2]सरवस हारिए ॥
उलटा पंथ संभालि पंथि, सति सवद सत गुरु कहै ।
विविध विपवन मांहि विपहर, या सुख का दुख [3]अनत है॥२॥
यहु तन तो यूंही गया, सरया न कोई काम वे ।
परनिंदा करि में वडा, भज्या न कबहु राम वे ॥
भज्या कबहुं राम यही छकि, माया के छकि मिलि रहया ।
हरि परमगति परमाण पर, हरि नींच जल नीचा वहा ॥
जहर फल जग आप खाधा, जीव सब पर वसि भया ।
हरि प्राणनाथ निकटि न्यारा, यहु तन तो यूंही गया ॥३॥
अपणां अपणां मन मते, चालत है सब कोय वे ।
मरणां है जीवण नही, जीवत मरै न कोय वे ॥

१ यहां नकार का अन्वय तातादि तीनों के साथ है ( देहली दीपकन्याय से ) २ सर्वस्व ३ दूसरी जगह

जीवत मरे न कोय परपसि, मरण दुख सिर परि भर्यां ।
मरौ जोगी मरण मीठा, मरि मजौ साहिब मांभ्या ॥
संसार में कोई अमर नाहीं, अमर हरि भजि गुण गवे ।
हरि परम सगी जाणि सुला भपर्यों भपर्यों मन मवे ॥४॥
माडा डूंगर वन भर्यां, नदियां ऊंडा नीर पे ।
शूर विसावर चालणा, मन धरि सके न धीर वै ॥
मन धरि सके न धीर, बहु दुख सुखमनां फूटी बहै ।
जैसा आहे लखे तैसा, नफा टोटा सिर सहै ॥
और कूँ यहु दोस नांहीं, किया पावे आपणा ।
जन हरिदास दुरमख दुख सदा, रण भाडा डूंगर वन भर्यां ॥५॥

पद ४ राग गोडी ( अथवा आसावरी )

मन रे तूं स्यायां नहीं भपांवारे। थोड़ी राती बहोत क्या सोवे
जागिन देखि दिवाना रे ॥ टेर ॥
माया देखि कहा मन फूल्यो, देखि देखि मस्ताना रे ।
झूठी काया झूठी माया, झूठे हेति बंधांणा रे ॥१॥ मनरे०
हटवाड़ा भावे ज्यूँ बिछड़े, समझि देखि गैवांना रे ।
भाजि नहीं तो कालिन रहणां मरण[1]नदी बहि जानार ॥२॥मनरे०
[2]भोपति बहोत कले माया में, मीर मलिक सुलितांनारे ।
जन हरिदास विरला जन कोई, उलटी पांख उडायारि ॥३॥ मनरे०

---

१ बोतरी २ मृत्यु रूप नदी ३ राजा

पद ५ ताल रूपक २ धनासरी में भी गाया जावे

सजन सनेह रावे, प्रांन हरी गुन गाय ॥ टेर ॥
भॅवर ज्यूं मन फिरे दहि दिस, काल दहि दिस है सही ।
जहां लागे तहां कांटा, (निज) नांव बिन निरभे नहीं ॥१॥
अजहुँ जीवड़ा कहा सोवे, जुगति जांणिन जागही ।
आक जड़ क्या दूद सींचे, अंति आम[1] न लागही ॥२॥
जांणि ऐसे भजो गोविन्द, परसि हरि रस पीजिए ।
(जन) हरिदास हरि गुण गाय निसदिन, प्रांण हरि कूँ दीजिये३

॥ पद ६ ॥ (ताल दीपचन्दी) (काफी में भी गावो)

सोई दिन आवेगा अपणां राम संभालिवे ॥ टेर ॥ ॥६॥
अनेक रावण सेनि जोधा, मांण मूँका वे गया ।
काल झालमें सकल आया, तन स दावानल[2] दह्या ॥१॥
असुर सुर खसि पहुंम ऊपरि, खड्ग कर गहि तोलता ।
जरासिंध बलि कहां विक्रम, बोल अबला बोलता ॥२॥

---

१ आम्र २ वन की अग्नि

(नोट) इस पद की ताल कहर वा अथवा आसावरी में गावे तो दीपचन्दी

पांच पांडव कहां कौरव, एक मेले सब भया ।
सिसुपाल सैन्या कहां यादव, कहो वै कोई रया ॥३॥
हिरणाकुस हिरणाख मुचकुंद, कहां महादानी भया ।
कहां छलबल कहां माया, अंति सब खाली गया ॥४॥
मरघा पैंधा सकल बिनसे, काल कांटा लागि है ।
अधर वस्त अनूप अन्तरि, (कोई) साधु गुर गमि जागि है ॥५॥
पतिसाह भूपति कहां सुरपति, काल सब परि जारि है ।
जन हरिदास सूं [1]छिम होय मत ज्यूं, कोई घाट हरिमन टारि है ॥६॥

॥ पद ७ ॥ (दीपचन्दी ताल)

जीवड़ा जाय कहां तूं रहसीये, करणहार करतार न जान्यो ।
सखित मोह संमि बहसी ये ॥ टेर ॥ ७ ॥
काची परख सराफी खोटी, तातैं परखुल सहसीये ।
राम नाम निज मद न बांध्यो, काल [2]चपटा व गहसी ये ॥१॥
हरि प्रीतमसूं प्रीति न बांधि, झूठ तहां जाय उलसी ये ।
जब जम माया झूठ दिखाया, [3]रसना लालचे फसी ये ॥२॥
सब येही जीवड़े किया [4]पयाना, बहोड़िन यह तन [5]सहसीये ।
जन हरिदास माया अपराधनि, बहौत भांति कर दहसीये ॥३॥

॥ पद ८ ॥ ( ताल कहरवा )

समझि देखि कछु नांहीरे, तूँ नांही नांही सु लागा ।
साचन सूझै मांहीरे ॥ टेर ॥ ८ ॥
परम सनेही छाड़ि आपणां, विष अमृत करि खाजे रे ।
सूकर श्वान श्याल कौवा गति, काल सदा सिर गाजे रे ॥१॥
हंस बटाऊ पर घरि बासा, अब तूं समझि सयाणां रे ।
पांच सात दिन एक आधमें, ऊठि अकेला जानां रे ॥२॥
काल [1]कहर की चोट सकल सिर, कै मारया कै मारे रे ।
जन हरिदास भजि राम सनेही, सरणां राम उबारे रे ॥३॥

॥ पद ९ ॥ ( ताल कहरवा )

तब हरि हमकूं जाणेंगे, जाणेंगे हरि जाणेंगे ॥ टेर ॥ ९ ॥
मात पिता परिवार सकल तजि, सबसूं उलटी ताणेंगे ।
हरि है साच और सब झूठा, वा हरि सूं बाणिक बाणेंगे ॥१॥
आन दशा सूं जब मन थाका, करम भरम संगि नाणेंगे ।
राम रसायण का मतिवाला, आदू प्रीति पिछाणेंगे ॥२॥
सौकणि उलटी सखि जबहीं हिगी, उलटी नदी चलाणेंगे ।
पारा बांधि प्रेमरस पीया, रोम रोम रुचि माणेंगे ॥३॥

---

१ प्रगटगोद

जन हरिदास [1]सासा सब भागा, राम रसायण पीवेंगें ।
आंन सकल सुख विषभरि देख्या, हरि समर्थ मथि जीवेंगें ॥४॥

॥ पद १० ॥ ( गतकहरवा )

तब हम हरि गुण गावेंगें, गावेंगें गुणगावेंगें ॥टेर ॥१०॥
काम क्रोध सासा सब बीत्या मोहमता मुरझावेंगें ।
पांचू पकड़ि आप असि खड़ेंगे, बंक नालि रस पीवेंगें ॥१॥
दुख सुख छाड़ि सहज घरि खेले, छुधि त्रुषि सू खावेंगें ।
ऊरधादि छाड़ि उलटि मनसुरुटा, एक दिशा कूं धावेंगें ॥२॥
सतगुरु सबद चांदिणा मेरे, अगम तहां हम जावेंगें ।
सैंपुम परगट घर पूरया, सुनि मण्डलमें पावेंगें ॥३॥
घट घट अघट घटल हरिनांही, सोई रमता राम रमावेंगें ।
जन हरिदास [2]दास हरि मथिमथि, हरि ही मांही समावेंगें ॥४॥

॥ पद ११ ॥ ( मत कवाली सोरठ में भी गाया जावे )

समझि देखि मन मेरा रे, या जगमांहि जागि हम देख्या
सगा न कोई तेरा रे ॥ टेर ॥ ११ ॥

---

१ संशय २ भक्ति मत्त भगवन्त गुरु चतुर्नाम वपु एक । इन्ह पद रज बन्दन किये नासत विघ्न अनेक ॥

तात मात वनिता सुत बन्धु, जतन जीवतां करही रे।
मूवां जालिबालि घरि आवे, ता मरहट तें डरही रे॥१॥
राम बिसारि हारि मत चालो, कहि समजाऊँ तोई रे।
माया मांच संगि ले जाता, देख्या सुराया न कोइ रे॥२॥
जामैं[1] मरे मरे फिरि जामें, मृतलोक में आवे रे।
जन हरिदास देखि मतिमंदा, गोविन्द काहि न गावे रे॥३॥

॥ पद १२ ॥ ( गोडी ) ( अथवा माढ ) ( गत दीपचंदी )

राम नहीं विसरू मेरे गुरगमि दियो बताय ॥ टेर ॥
ज्यूं नटणी निरभै थकी, [2]वरतैं लागी जाय।
इत उत चित डोलै नहीं, चित वरतां रह्यो समाय ॥१॥ राम०
मरजीवौ समदां धसे, तनमन सुरति समाय।
बीचि कहुं अटके नहीं, निजसीम संभाले जाय॥२॥ राम०
गुरज नालि गोला वहे, धनुप वांण भरपूर।
श्याम काम सन्मुख लडे, उलटिन खेले सूर॥३॥ राम०

१ जन्म लेवे २ रस्सी

ज्यूँ चात्रिग मनकूँ रट, पीव पीव करत [1]बिहाम ।
यूँ जन हरिदास हरि नांवमें, मन सबसें रह्यो समाय ॥४॥

॥ पद ११ ॥ ( राग दीपचंदी )

है बलवन्ती माया जगमें, जिया सकल सकल सिर सेती—
खांव भवे के खाया ॥ टेर ॥
माया पुरिस नारि पुनि माया, माया मांन सगाइ ।
माया स्वामी माया सेवक, बहोत भांति करि भाई ॥१॥
जोगी सग जोगणि होय चाली, भगतणि भगत मनाया ।
[1]सोफी संगी सोफणि होयचाली, मार्थे मुकट धराया ॥२॥
[2]सींगी रिख सखिमहोय सास्मा, [3]नारद रूप फिराया ।
[4]शङ्कर का मन मोही बैठी, नानाभांति नचाया ॥३॥
अगनि रुप हाथ में लें खावत, परसि परसि परचावै ।
जन हरिदास विरला जन कोइ, उलटि परम पद पावै ॥४॥

---

१ समस्या जिन्द मस्तीमा पीता  १ मस्काय २ वर्णन बरो वाख्य
३ इन की विस्तार कथा वा रामायण के बालकांड मेहै
नारदजी की तु ।। अथवा अन्य पुराणो में भी है ४ शङ्कर की
[illegible] भागवत में है ।

॥ पद १४ ॥ ( गत कहरवा ) ताल १

जिवडा जागिन देखै लाइवे, जम जागतहै तूं क्या सोवै ।
राम सुमरि मेरा भाईवे ॥ टेर ॥
निशदिन [1]आव घटे तन छीजे, ज्यूं अन्जलि का पांणी वे ।
तजी [2]अलसाक अलपहै जीवन, समझि देखि अभिमानी वे॥१॥
मात पिता सुत वित[3]भी नारी, संगि न चाले कोई वे ।
यनसूं लागी विकट मति औरा, मनुप जन्म निधि खोई वे ॥२॥
वांसै वाहर छिप्यो न छूटे, देही जुरा बुढाणी रे ।
पंडर [4]केस हाथ नैनां परि, काल धजा फहराणी वे ॥३॥
औघठ घाठ विचाले दरिया, तहा मेरा नांव मुरारी रे ।
तहां लागिते पार न कीया, परदेसी अहंकारी वे ॥४॥
(जहां) उदै न अस्त काल नहिकाया, (सोई) परम सनेही तेरा वे ।
हरीदास जन टेरि कहत हूं, तहां चलो मन मेरा वे ॥५॥

॥ पद १५ ॥ ( गत कहरवा )

राम [5]असांडा मांई हो, राखो ओट चोट क्यूं लागे ।
समझि पड़ कछु [6]नाई हो ॥ टेर ॥

---

१ आयु २ आलस्य ३ धन ४ सफेद ५, हमारा ६ नहीं

पांच पचीस सदा संगि लागे, भांवरि फेरै भवाइ हो ।
तुम भटको तो षट्दिन व्यापे, हम पस कछू न बसाई हो ॥१॥
नारद विरद परम सुखदाता, यहु दुःख कासूं कही हो ।
करम¹विपाक विघन होय लागा, तुम राखो तो रहिए हो ॥२॥
समद अथाह अगाह करणांमे, गोडी करे नित गाजे हो ।
तामै मछ कछसा लेजै, मंनि दुरै सो लाजै हो ॥३॥
ए भवरूप भनत मोहि मार, भव कूप में घेरा हो ।
जन हरिदास कूं आस न दूजी, श्राम भरोसा तेरा हो ॥४॥

॥ पद १६ ॥ ( राग कहरवा )

समझि सुख पाईया रे, ता सुखमें रह्या समाय ॥ टेर ॥
समझि सवाई सब पड़ी, सतगुरु तब भये सहाय ।
गुरु कृपा ते हरि भज्यो, गुरु दिया साध बताय ॥१॥
अगम पियाला रुचि पीया, तृष्णा तृपति बुझाय ।
पूरे गुरु बिन बाहोरिया, दग होय सखाय ॥२॥
निस सूझा दिन समझि है, दिन सूझा समझ नांही ।
दूं ताका संग छाडिये, काहै भो बखि बाहि ॥३॥

---

१ कथ १ दु रा एहि कथि काव अराव मैं मन करि देख बिचार ।
श्री रत्नाकर नाम तजि नहि बहु भाव भाचार ॥

जग संग लाभौं जल पीवे, हरि जन पीवे नांहि।
जन हरीदास ज्यां हरि भज्या, ते खोटा अनतन खाहि ॥४॥

॥ पद १७ ॥ ( गत कहरवा )

गाफिल नींद न करिएरे, जीवण नहीं मरण शिर ऊपरि ;
ता मरणां सूं डरिए रे ॥ टेर ॥
रजनी मोह नींद भरि सूता, परम भेद नहि पाया रे।
अति अभिमान वदत नहि काहू, हीरासा जन्म गमाया रे ॥१॥
गहि गुरु ज्ञान जागि जीव जोगी, झूठे भरमि भुलानां रे।
हरि सूं विमुख नाचि नांनाविधि, छाडि तजे सुलितानां रे ॥२॥
आयौ थौ तूं साचे सौदे, काचे लागो भाई रे।
हटवाड़ा हम बिछडत देख्या, जागौ राम दुहाई रे ॥३॥
अब तूं समझि देखि निश वीति, पैंडां करणां लोई रे।
तस्कर बहुत दूरि घर तेरा, साथी संगम कोई रे ॥४॥
ज़न हरिदास राम भजि भाई, देखि देखि पांव धरणां रे।
हरि दरबारि झूठ नहि भावे, तिल तिल लेखा भरणां रे ॥५॥

॥ पद १८ ॥ ( राग कहरवा )

संतो मोनि मरोरूयां मारे रे, [1]विमक सा हाकम सुधि न्यारा।
कोई मृतक पण्या पुकारे रे ॥ टेर ॥
साधों को मै मारी मानें, हरि सूं नातो पाले रे।
मापे चल्या चली गटकावे, पापक हू[2] पर चाले रे ॥१॥
मनसूं पेठ वह को नावो, भाडो परदो राखे रे।
मूवा सब वेपर करि देख्या, रसना मने पाले रे ॥२॥
[3]भोंपरि करे सफल समरूपरि, घटघट मांही भावे रे।
जन हरिदास सिरजनहारो सेवे, ताका मरणा नाम रे ॥३॥

॥ पद १९ ॥ ( कहरवा )

निद्रा मोही पकी मसो से, बादि पड़ी सिर ऊपरि सेवे।
भावी मरणी सोसे ॥ टेर ॥
पाखी नैन बैन कंठ रोके, पवन मर्या पुकारे।
पाव परै रीतारी फीका, कांई कल बिठकावे ॥१॥
भांवर करे भमकनकी वेदी, भाई ने सूं भावे।

---

१ यथा २ प्रज्वलित करता है ३ भ्रमर माने मरम मननी शब्द

ता आगे जोगी जुध करिजांगे, उलटी ताली लावे ॥२॥
अगम पियाला भरिभरि पीवे, निरभै नाद बजावे ।
जन हरिदास निद्रा अपराधणि, गंग तरंग दिखावे ॥३॥

॥ पद २० ॥ ( कहरवा )

राम भजन हिरदै नहि हेत, जहां तहां अपणां मन हेत ॥टेर॥
मोह दोह माया मदमाता, देखौ जीव जहर फल खाता ॥१॥
हारजीति का पासा हाथे, नरक चलै दुरमति ले साथे ॥२॥
जब लग जीव पांचका चेरा, तब लग काल न छाडै[1] केरा ॥३॥
जन हरिदास नरनींद न जागे, साच कह्या कांटासा लागे ॥४॥

॥ पद २१ ॥ ( कहरवा )

संतोमदर भेख पणि तृष्णां व्यावे, भजन भेद यहु नाही रे ।
बाहरि साहूकार कहावे, [2]गांठी छोड़ा मांहीरे ॥टेर॥
दीसै सिंघ स्यालते कायर, जब लग जोगन लाधारे ।
सां सौ पकडि आय बसि कीया, कुबुधि कांमणी खाधारे॥१॥
पहरि [3]सनाह सांग नहि साही, [4]बट पाडों घर रूधारे ।
साहिब छाडि खेत खिस चाल्या, लूण हरामी सूंधारे ॥२॥

---

१ पीछा २ जेबकट ३ कवच ४ लुटेरोंने

सोवततिनके सुर ससि साईं जिनमनमण्या ¹सोमठकीयार।
जन हरिदास सोई मतिवाला, जिनराम²रंग्यामण पीमारे ॥३॥

॥ पद २२ ॥ ( कहरवा )

आये साध भये अहलाद, जिनके नहीं विष रसवाद ॥टेर॥
उनका कहा बरनो विसतार, रामसनेही भर भाव भवार॥१॥
सीतल कोमल संत स धीर, जाम जन्म की मेटी पीर ॥२॥
जन हरिदास आनन्द अमहोय, साध मिल्यां विपदारह्याखोय॥३॥

॥ पद २३ ॥ ( कहरवा )

राम भजन बिन जन्म गुमायो, आलस है अपणा ³वितहारी ॥टेर॥
रे मतिहीन ! समझि मनमांही हरि बिन सगा न सके कोई ॥१॥
उनमनि लागि ⁴गगनरमपीवे अपणा जन्म सुफल करिलीवे॥२॥
जन हरिदास गोविन्द गुणगाय, सहज समाधि परमपद पावे॥३॥

॥ पद २४ ॥ ( कहरवा )

पावरे कैसा भजन तुम्हारा मनहू पकड़ि सहज घरि खेलो ।
माया रहू दुधारा ॥टेर॥
मैं सति पूछूं तुम सति कहियो राखा कहा ⁵दुराया ।
भवहै एक कहां लगायो, एक भया दूजी माया ॥१॥

---

१ रैनायस्र । २ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible]

कञ्चन छाडि काचमं खेलो, तब लग काची सारी ।
माया गहौ ब्रह्म होय बैठा, एक अचंभा भारी ॥२॥
अरथ करे अनरथ उर अन्तरी, परम भेद नहिं पाया ।
जन हरिदास ऐसा अपराधी, स्वामी पणे संताया ॥३॥

॥ पद २५ ॥ ( कहरवा )

दस औतार दसू ए देसां औगं और चढावे ।
सो बाजीगर भला क नाहीं, एक कूं करे गमावे ॥टेर॥
परम पुरुष का पार न पावे, आमा मू रस लूधा ।
सूधा राह सहज जही छाड्या, उजड़ पड्या[1] अलूधा ॥१॥
निराकार निरभै रे सन्तो, जो अकार सजावे ।
हीड़ागर हीड़ा कूं दौडै, सो भी धणी कहावे ॥२॥
तरंग सिंधु[2] सोभी हरी नांही, निहचै जाय विलावे ।
जन हरिदास अविनाशी भजता, भौ जल निकटि न आवे ॥३॥

---

१ उलझा हुआ २ चलना

(नोट) पद २४ में अवैधसंन्यासाश्रमवादी को प्रश्नोत्तर सूचित होताहै

॥ पद २६ ॥ ( कहरवा )

भवषु भासथा वैसथा कूठा, जब लग मन बिसराम न पाव ।
पख बधि फिरै न पूठा ॥टेर॥
ज्ञान गुफा आर्बे नहि जोगी अगम अरथ क्या सूझै ।
पांव अगनि में पवि बवि दाझे वा सीतल ठौर न बूझै ॥१॥
विविध विकार बाजि भरिभ्रमणु, धूई ध्यान न धारे ।
भ्रम अगनि आकाश न मेदे तो पारा क्यूं मारे ॥२॥
निगम अगम तहां समे न भासन, गरज नाद नित बाजै ।
नगरी मांहि [१]सुगति बसिपुरखा, जहां तहां उठि भाजै ॥३॥
मनगाढि पवन भटकि ले उलटा, परम जोग उर धारे ।
जन हरिदास निरास भरमतजि निरगुण सत्त विसतारे ॥४॥

॥ पद २७ ॥ ( राम दीपचन्दी )

राम रस मीठारे, कब पियां ही सुख होय ॥ टेर ॥
मीठा ऐस जांणी एरे, पीवे नारद सेष ।
मछिन्द्रा गोरख पिवै, रुषि रुशि पिवें महेश ॥१॥
सींगी रिखवन में पिवेरे, हरि अमृत रस धार ।
शुकदेवजी निरमें भया, आंखे सब संसार ॥२॥

---

१ मोष ।

गोपीचन्द निरमल पीवैरे, निरमल पीवै हणमत वीर।
जोगी पीवे भरथरी, जाका अणभै भया शरीर ॥३॥
नाम कबीरा नित पीवेरे, हरिरस बारम्बार।
जन हरिदास ज्यां हरिभज्या, त्यौं भागा भौ मार ॥४॥

॥ पद २८ ॥ ( राग दीपचंदी )

राम रस ऐसारे, अमलि बिन पीया न जाय ॥टेर॥
सो फीको पीवे नहीं, [1]कुपछि पड्या सब कोय।
आरति सूं अमली पीवे, पी मति वाला होय ॥१॥
सो फी सब उल्टा पड्या, अमनी रह्या लुभाय।
भँवर गुफा का घाटमें, उनमन सूं मन लाय ॥२॥
अमली सब संसार है, रह्या विप मन लाय।
जन हरिदास हरिरस पीया, दूजा कछु न सुहाय ॥३॥

॥ पद २६ ॥ ( कहरवा )

करम भरम का किया कलेवा, सांसा जल ज्यूं पीया।
ताती सीली सहज समांनी, हमतौ उल्टे पैंडे जीया ॥टेर॥
सूधै राह सकल जग चालै, पसवा तहां चिलाया।
रसनां स्वाद चहौतयूँ वूडा, वो निरगुण [2]नाह न पाया ॥१॥

---

१ कुपथ २ नाथ ( कहीं राह पठान्तर है )

निरमल कथा परम पद नेड़ा, अधर अमर निज भाखै।।
सुकटि सुरति अगम रस पीवे, परगट पासा राखै ॥२॥
ऐसी अब्या भाषे रंग राता, कापै रंगमन नाहीं ।
जन हरिदास ऐसा जन कोई, बास करै हरि मांहि ॥३॥

॥ इति राग गौडी सम्पूर्ण ॥

राग [२]

॥ अथ राग भैरव १० ॥ (१ ताल दादरा)

ऐसा परापर परम भेद, गुर बिना को देवे ।
मस्तक ऊपरि हस्तराखै, भावयां करि लेवे ॥टेर॥
अभय धन अभय मन, अभय सुख होवे ।
अभय तेज अभय रूप, तरसि तरसि जोवे ॥१॥
अगम गति अगम मति, अगम निधि पावे ।
अगम अगम ब्रह्म स अगम, सतगुरु लै लावै ॥२॥
अनत सूर निकटि नूर, जोति जोति मिलावै ।
जन हरिदास निकटिनाम दास है स पावै ॥३॥

॥ पद २ ॥

सकल व्यापी हो निरंजन तूं सनेही साथा ।
और सकल वाधि ऐसे, कहा बाधूं काथा ॥टेर॥

जागि लागि प्रेम प्रीति, आंन रीति नांही ।
मन पवन अगम गहन, परम सिंध मांही ॥१॥
अगम ज्ञान अगम ध्यान, अगम अरथ छाया ।
अगम जोग अगम भोग, अगम अगम पाया ॥२॥
परम तेज परम जोति, परम भेद ऐसे ।
जन हरिदास अरस परस, खीर नीर जैसै ॥३॥

॥ इति राग भैरव संपूर्ण ॥

॥ अथ राग राम कली ॥ २१ ॥ (गत दीपचंदी)

काहरे मन तूँ परघरिजाहि, हरिजी सा सुखदाइ कोइ नांही॥टेर॥
हरि हरा विणजै क्यूँ नांही, अजब खान तेरा घट मांही ॥१॥
एह सुबुधि चिन्तामणि भई, कौडी कुबधि सहज ही गई ॥२॥
जन हरिदास सुखसागरराम, नित सारया साधां का काम ॥३॥

॥ प्रथम पद १ ॥

आव ! हमारे आंगणे, गृह त्रिभुवन राई ।
तुम बिन मैं विलखी फिरूं, अब रह्यौ न जाई ॥टेर॥
कुल करणी सगली तजी, हरि आनन्द माही ।
तन तज वेकी वेर है, मिलिए क्यूँ नांही ॥१॥

मारति ऊंधा रति भयी, मरा मन मांहि ।
दरस परस की बर है, पति छाडौ नांही ॥२॥
सति पिछाणे साथ कूं, मनां न मानें हीन ।
मन आत्मा एकै भई, तुम सू त्यों लीन ॥३॥
जन हरिदास हरि सूं कहै तुम बिन रहन छीजे ।
प्रेम पियाला पायकै, अपणां करि लीजे ॥४॥

॥ पद २ ॥ ( राग धीदघन्दी )

बाजीगर बाजी रची माया बिस तारा ।
बाजी सू बाजी रमैं, बाजीगर न्यारा ॥टेर॥
काम क्रोध अभिमानका, लै ऐसं बाधा ।
जल थल जीव जहां तहां, बाजी भरमाया ॥१॥
भई पांस ममता पडी, नय डोरि पसारि ।
मोह ढाल भामै सदा नांचै नर नारी ॥२॥
दुख सुख गोटा उछली माया मद पीया ।
ब्रह्मा विष्णु महेश लौं, बाजी बसि कीया ॥३॥
मन चंचल निहचल भया निरमै घर आया ।
जन हरिदास बाजी न पा, बाजीगर पाया ॥४॥

॥ पद ३ ॥ ( गत दीपचन्दी )

मूरख सूं मूरख मिले, मिलि वाद वधारे ।
ममम्या हरि सुमिरण करे, आपा सब डारे ।।टेर।।

काम क्रोध तृष्णां तजे, संगति सुख पावे ।
भौ सागर दुस्तर तिरे, गोविन्द गुण गावे ।।१।।

संगति कीजै साध की, सत साच वतावे ।
भूलां सू कोई जिन मिलो, भूलौ भरमावे ।।२।।

सांग काढि माया मंड्या, हरि बिचि भौ मारि ।
जन हरिदास माया तजै, ताकी बलि हारी ।।३।।

॥ पद ४ ॥ ( कहरवा )

जागो रे अब नींद न कीजै, थौडि गति न सोवोहै ।
कोटि कोटि लेणीरा हीरा, कोडी सटे न खोवो ।।टेर।।

चेतन रहो रखे मति चूको, काम क्रोध भ्रम जारो ।
तारण हार परखे क्यूं तिरम्यो, मोटो जन्म न हारो ।।१।।

प्राणी काय कालने आसा, दिन दिन नेड़ो आवे ।
ज्यूं बालक नां हथां [1]बाटी, [1]हाडो आप छिनावे ।।२।।

1 काक ।

जन हरिदास कायकर ऊपरि मेल्हि तिलां ज्यूं धोये ।
हरि तैं विमुख दाद तजि दरद मूल मथि मन यो खोय ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( कहरवा )

¹हिन्दू तुरक एक कला साइ राम रहीम दोय नहि भाई ॥टेर॥
यहाँ बांभया यहाँ मुल्ला मकर, पेट कत पढ्ये बिसराम ।
राम समारि दूर करि मैंसी, भारउरि एक मसाइ सूं काम ॥१॥
काजी बंदे चोर न करवा साचा सबद सुख्यों सत कौना ।
करइ सपाहि गला क्यूं काटो, कुछ तो डर मालिक का मांना ॥२॥
एमन जीव उपाया साचिब, तासु मारि पड़ो क्यूं दूरि ।
जन हरिदास यहु मग्य विचार तासूं खालिक सदा हजूरि ॥३॥

॥ पद ६ ॥ ( कहरवा )

संतो राम रजा में रहिए मन दे माया सीख दे सदगति
राम राम यूं कहिए ॥ टेर ॥
गृह परिवार मोह तजि मैंतें, मन की गति मन मांहीं ।
तजि अभिमान भजै अविनाशी, अन्तरि भजन पिछांणे ॥१॥

व संसार कहै कछु नांही, सांई कै मनि भावै ।
रण ब्रह्म परम सुख दाता, अपणैं मारग लावै ॥२॥
रितैं विमुख लोग वहौं मानें, सद्गति सुणयां न कोई ।
नींदे लोग राम वित चितमें, ता समि और न कोई ॥३॥
जन हरिदास राम के शरणैं, रहै राम ही गावै ।
भव सागर तिरि निरंजन परसै, निज विसराम समावै ॥४॥

॥ पद ८ ॥ ( झप ताल )

एक हरी एक हरि एक हरी साचा, अलख भजि अलख भजि-
सुफल करि वाचा ॥टेर॥
अविनाशी पूरणब्रह्मतहां मन दीजै, रामभजिरामभजिपरमगतिलीजै १
गायगोपालसति सुमरि मन रामा, काल लागै नहीं सरे सबकामा २
एकसूं एक निरभै मते रहिए, जन हरिदास ज्ञानगहि अगह यूंगहिए ३

॥ पद ९ ॥ ( गत कहरवा )

अवगुण मोहि अनत करणांमें, काम क्रोध रस भावै ।
तारस लागि नींद भरि सूता, तुम विन कौन जगावे माधो॥टेर॥
दारण दसमास दुखित ग्रह अवला, जल मल भोजन कीया ।
वहता मलमूत्र नासिका ऊपरि, उरध सासमें लीया मा० ॥१॥

तप करि कष्ट रामरसि भाया, निहचल राम न गाया ।
तप बल भव्या काल फिरि ग्रास्या, परहाथ प्राण बिकाया मा०॥२॥
कीट पतंग मीन मृग बिसहर, श्वान सिंघ वप धारया ।
सूकर स्याल काग कृमि कुंजर, (ऐसे) फिरत२ पचि हारया मा०॥३॥
बल पल वास प्रुरा संगिमिरे, काल कहर की छाया ।
जन हरिदास अपरणी करि राखौ, पतित सरणि अब आया मा०॥४॥

॥ पद १ ॥ ( ताल कहरवा )

बाबा एह [1]गरीबी झूठी, मन अरु पवन दोऊ एकूटा ।
मनसा फिरै न पूठी ॥टेर॥
मिमिष तापकी कन्था पहरी, मनी टोप सिर आक ।
राग द्वेष की कानों मुद्रा कहा गरीबी-जाकै ॥१॥
परया मेख रख ज्यूं की त्यूं, मोह मदि पसि जीवै ।
तनके मस गम नहीं रीक, विष अमृत करि पीवै ॥२॥

---

१ यहां फकीरी पाठ भी हो सकता है ।

(नोट) इस बराम पद का उपदेश किसी आख्य पतित नाथ क ति सूचित होता है ।

पांच चोर परदेश पहूंता. मिलि खेलै ता मांही।
मनां जोर मुखि कहै गरीबी, असलि गरीबी नांही ॥३॥
जन हरिदास आन तजि अनरथ, (मन) राम नाम व्रत धारे।
राग द्वेष काहू सूं नांही, (या) असलि गरीबी तारे ॥४॥

॥ राग रामगिरि संपूर्ण ॥

## ॥ राग आसावरी ॥

॥ पद ॥ १ ॥ (ताल दीपचन्दी गत)

अवधू ऐसा ज्ञान विचारा, है हरि अकल सकल विच व्यापी।
रहे सकल ते न्यारा ॥ टेर ॥ १ ॥
ल्यौ में अलख अकल अविनाशी, सुरति सु यह मति जागी।
[1]गोरख[2]गोपी परसि पर निरभै, अनहद सींगी वागी ॥१॥
निजपुर प्रांण वसे निति निहचल, पवन सुरति सति माला।
ब्रह्म छौल में झूले खेलै, पीवे अगम पियाला ॥२॥
त्रिकुटि नाथ निज रूप निरन्तरि, नाम निरंजन राया।
जन हरिदास [3]निहौको वंदो, मन फिरि मनहि समाया॥३॥

---

१ गोकहिये इन्द्रियें तिनकुं साक्षि रूप व्है रेख कहैहे प्रकाश ऐसा आत्म स्वरूप २ जीव ३ "निंदौ को" ऐसा भी पाठ है

॥ पद ॥ २ ॥ राग दीपचन्दी ॥

सन्तों सो जोगी निसतारे, उलटी चाल सदा रस पीवे ।
उलटा भेद विचारे ॥ टेर ॥ २ ॥
सब जग मान ध्यान सब साधा, राम कहे करि जीवे ।
उलटि पलटि का प्रेम पियाला, ज्यूँ आवे त्यूँ पीवे ॥१॥
सो मतिवाला घूमि घूमि जीवे, सहज झरे रस खीया ।
छाक्या फिरे सदाई रावल, गुरु पाया उन पीया ॥२॥
पी पी अवधू भया दिवाना, निज सरूप सो जाना ।
जन हरिदास हरि का रस चाख्या, सो जोगी मनमाना ॥३॥

॥ पद ॥ ३ ( राग दीपचन्दी )

अवधू मैं मरा मन समझाया, मन आपया पर आया न दीया ।
फेरि सहज घरि लाया ॥ टेर ॥ ३ ॥
के रूप धरि बैकुण्ठ विचारे, मृत्यु लोक का मारया ।
जो बैकुण्ठ भरया सो पिनसे, हम कछु अगम विचारया ॥१॥
नरक सुरग दोऊ हम तोल्या, ज्ञान तराजू मांही ।
दोन्यू विधा बराबरि दीसे, (इनमें) घाट बध कछु नांही ॥२॥
तीरथ बरत जोग जिग तपस्या, बढ़ी[1] विधा जग मांही ।
जन हरिदास एमला करि देख्या, मन कू परसे नांही ॥३॥

---

१ दुविधा

॥ पद ॥ ४ ॥ ( कहरवा ) (विगड़ी कोन सुधारे की चाल ये)

संतों है कोई जोग जुगति गम जांणे, वहती नदी ज्ञान के पारे।
बांधि अपूठी आंणे ॥ टेर ॥ ४ ॥

राजस तामस सात्विक ग्रासे, सैस नाग कू पीवे ।
अलख अधारी आसा राखे. ऐसा जोगी जीवे ॥१॥

सूखिम गली नजरि में राखे, पांच चरण तलि चूरे ।
परम जोति कै परचै खेलै, अनहद सींगी पूरै ॥२॥

सुरति सवाही सहज घरि धारै, निरमल नेह निवासा ।
जन हरिदास ऐसा जन कोई, देखै अगम तमासा ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( कहरवा आंसावरी दीपचन्दी )

मन रे सो साचा वैरागी, त्रिकुटि कोट उपरि तत आसन।
सुरति निरंजन लागी ॥ टेर ॥

ज्ञान खड्ग ले वन में पैसे, चेला पांच विवोगे ।
असत गोपि सतगुरु सूं प्रगट, प्रेम सूं निरस भोगै ॥१॥

सागर सप्त अष्ट मंडल में, नदी निवासै तांणी ।
उनमनि रहै एक रस लागा, जोगमूल वंध जांणै ॥२॥

अरथ करै करि अरथै दरसै, निज बिसराम न भूलै ।
गुरगम औ घट घाटी लांघै, तिरवेणी संगि झूलै ॥३॥

॥ पद ॥ २ ॥ राग दीपचन्दी ॥

सन्तों सो जोगी निस्तारे, उलटी पाछ सदा रस पीवे ।
उलटा भेद बिचारे ॥ टेर ॥ २ ॥
सब जग मान ज्ञान सब साचा, राम कह करि जीवे ।
उलटि पलटि का प्रेम पियाला, ज्यूँ आमे त्यूँ पीवे ॥१॥
सो मतिवाला झुमि झुमि जीवे, सहज झरे रस खीया ।
छाक्या फिरे सदाई रावल, गुर पाया उन पीया ॥२॥
पी पी मगन भया दिवाना, निज सरूप सो जामा ।
जन हरिदास हरिका इस पिवसे, सो जोगी मनभाना ॥३॥

॥ पद ॥ ३ ( राग दीपचन्दी )

अवधू मैं मरा मन समझाया, मन आपया पर आसा न दीया ।
फेरि सहज घरि लाया ॥ टेर ॥ ३ ॥
कै वप धरि बैकुण्ठ विचारे, मृत्यु लोक का मार्‍या ।
जो बैकुण्ठ धर्‍या सो बिनसे, हम कछु अगम विचार्‍या ॥१॥
नरक सुरग दोऊ हम तोल्या, ज्ञान तराजू मांही ।
दोन्यूं विया बराबरि दीसे, (इनमें) घाट बध कछु नांही ॥२॥
तीरथ बरत जोग जिग तपस्या, बड़ी[1] विया सग मांही ।
जन हरिदास एमल करि देख्या, मन कू परसे नांही ॥३॥

---

१ दुविधा

॥ पद ॥ ४ ॥ ( कहरवा ) (बिगड़ी कोन सुधारे की चाल ये)

संतों है कोई जोग जुगति गम जांणे, वहती नदी ज्ञान के पारे।
बांधि अपूठी आंणे ॥ टेर ॥ ४ ॥

राजस तामस सात्विक ग्रासे, सैंस नाग कू पीवे ।
अलख अधारी आसा राखे, ऐसा जोगी जीवे ॥१॥
सुखिम गली नजरि में राखे, पांच चरंण तलि चूरे ।
परम जोति कै परचै खेलै, अनहद सींगी पूरै ॥२॥
सुरति सेवाही सहज घरि धारै, निरमल नेह निवासा ।
जन हरिदास ऐसा जन कोई, देखै अगम तमासा ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( कहरवा आसावरी दीपचन्दी )

मन रे सो साचा वैरागी, त्रिकुटि कोट उपरि तत आसन ।
सुरति निरंजन लागी ॥ टेर ॥

ज्ञान खड्ग ले वन में पैसें, चेला पांच विधोगे ।
असत गोपि सतगुरु सूं प्रगट, प्रेम सूं निरस भोगै ॥१॥
सागर सप्त अष्ट मंडल में, नदी निवासै तांणी ।
उनमनि रहै एक रस लागा, जोगमूल वंध जांणी ॥२॥
अरथ करै करि अरथै दरसै, निज विसराम न भूलै ।
गुरगम श्रौ घट घाटी लांधै, तिरवेंणी संगि झूलै ॥३॥

मनकूं पकरि सहज घरि खेलै, सुरति सहज घरि मारै ।
जन हरिदास महरषि परमसखी, तब हरि हाथ पसारै ॥४॥

॥ पद ६ ॥ ( कहरवा )

मन रे सो साधा जूवारी, जुंसै खेलि परम निधि परसै ।
बहोड़ि न रोपै सारी ॥ टेर ॥

पहली खेली बहुत दिन हारया, सतगुरु समझ न आई ।
अब तो दाम परसतजि पूरया, उलटि सार चलाई ॥१॥
तीन पांच नव बावन खेले, भजि दसवै घरि आई ।
अब या सारि पड़ै नहि काची, ठौड़ अमोलिक पाई ॥२॥
दुख सुख डाव चाल चौरासी, त्रिविधि ताप तजि पासा ।
सारी प्रांण प्रेम घरि सौंपी, भरम भसूधी भासा ॥३॥
चित चौपड़ी चेतन घरि चौबै, दोऊ भेलि सुग हवा ।
खेलै सदा सुरति के नाका फूटि न चालै जूवा ॥४॥
उनमनि रहै निरन्तरि निस दिन, निज सरवर की छाया ।
जन हरिदास सतगुरु के सरणैं, करम न व्यापै काया ॥५॥

॥ पद ७ ॥ ( कहरवा )

पांडै अपणी अगनि बुझावो, हमतो अपणें राम पसतर हैं ।
सुस काहे दुख पावो ॥ टेर ॥

था ? तुम कौण कहों ते आया, अनत लोक फिरि माई ।
अबतौ तुम ब्राह्मण होये बैठा, चौरासी चिस राई ॥१॥
गरभ वास ऊंधे मुखि रहता, सपत¹धाति रस पीया ।
अब तौ तुम चौका दे जीमां, उहां चौका कि न दीया ॥२॥
कुल अभिमान आंन ब्रह्म पूजा, एह विथा होय लागी ।
जे या जानि भली थी पांडे, तो सुखदेव क्यूं त्यागी ॥३॥
राम बिचारि हारि मति चालो, आंखि अनूप उघाडो ।
क्रोध चन्डाल सदा संगि खेलै, ताका मूल उपाडो ॥४॥
पांच तत्व का सकल पसारा, तहां प्रांण दुःख पावै ।
जन हरिदास बांमण मति सोई, उलटा ब्रह्म समावै ॥५॥

॥ पद ८ ॥ ( राग जोगिया गत दीपचन्दी )

राम सुमरि जन ऊजला भयारे, परम सनेही अपणा
सोधि लयारे ॥ टेर ॥
सकल उपाय सकलते न्यारा, सब देवलमें रमें हो चितारा ॥१॥
सकल भवन कूं पालै पोखै, कहा पूजा ए दास संतोखै ॥२॥
जन हरिदास प्रणवै निजदासा, जीव सीवसंगि एके वासा ॥३॥
चलतां रे मन विलमन कीजे, राम भजनका ²लाहा लीजे ॥टेर॥
जहां २ जोऊं जहां जम मारै, करुणां सागर सरणि उबारै ॥१॥

---

१ सप्त धातु ( अस्थि, मास, रुधिरादि ) २ लाभ

मनकूँ पर्हदि सहस घरि खेलै, सुरति सहज घरि भारै ।
धंन हरिदास महरषि पचाकसखी, सब हरि हाथ पसारै ॥४॥

॥ पद ६ ॥ ( कहरवा )

मन रे सो माथा जूवारी, जय खेलि परम निधि परसै ।
बहोड़ि न रोवै सारी ॥ टेर ॥

पहली खेली बहुत दिन हारथा, सतगुरु समझ न आई ।
अब वो दाम परखतखि पूरया, छाडि सार चलाई ॥१॥
तीन पांच नव बावन खेलै, चलि दसवै घरि आई ।
अब या सारि पर्ड नहिं काची, ठौड़ अमोलिक पाई ॥२॥
दुख सुख डाव चाल चौरासी, त्रिविधि ताप तजि पासा ।
सारी प्रांण प्रेम घरि सोंपी, अरध अलूषी भासा ॥३॥
चित्त चौपड़ी चेतन घरि चौचै, दोऊं मेलि छुग हूवा ।
खेलै सदा सुरति के नाकः फूटि न आवै जूवा ॥४॥
उनमनि रहे निरन्तरि निस दिन, निज तरबर की छाया ।
जन हरिदास सतगुरु के सरणैं, करम न व्यापै काया ॥५॥

॥ पद ७ ॥ ( कहरवा )

पांडे अपणी भगति बुझावो, हमतो अपणें राह चलत हैं ।
तुम काहे दुख पावो ॥ टेर ॥

था ? तुम कौण कहाँ ते आया, अनत लोक फिरि भाई ।
अबतौ तुम ब्राह्मण होये बैठा, चौरासी विस राई ॥१॥
गरभ वास ऊंधे मुखि रहता, सपत[1] धाति रस पीया ।
अब तो तुम चौका दे जीमां, उहां चौका कि न दीया ॥२॥
कुल अभिमान आन बत्र पूजा, एह विथा होय लागी ।
जे या जाति भली थी पाडे, तो सुखदेव क्यूं त्यागी ॥३॥
राम विमारि हारि मति चालो, आंखि अनूप उघाडौ ।
क्रोध चन्डाल सदा संगि खेलै, ताका मूल उपाडौ ॥४॥
पांच तत्त्व का सकल पसारा, तहा प्रांण दुःख पावै ।
जन हरिदास बांमण मति सोई, उलटा ब्रह्म समावै ॥५॥

॥ पद ८ ॥ ( राग जोगिया गत दीपचन्दी )

राम सुमरि जन ऊजला भयारे, परम सनेही अपणा
सोधि लयारे ॥ टेर ॥
सकल उपाय सकलते न्यारा, सब देवलमें रमें हो चितारा ॥१॥
सकल भवन कूं पाले पोखै, कहा पूजाऊं दास संतोखै ॥२॥
जन हरिदास प्रणवै निजदासा, जीव सीवसंगि एके वासा ॥३॥
चलतां रे मन विलमन कीजे, राम भजनका [2]लाहा लीजे ॥टेर॥
जहां २ जोऊं जहां जम मारै, करुणां सागर सरणि उबारै ॥१॥

१ सप्त धातु ( अस्थि, मास, रुधिरादि ) २ लाभ

दुख सुख नदी वहै दोयभारी।(राम रामविमुख भूले भधिकारी॥२॥
जन हरिदास औसर मलिपाया, ममता मेटि भजौ राम राया॥३॥

॥ पद ८ ॥ (कहरवा)

मो सुख सुणियाँ सन्त विनाणी, बिजली चमकै बादल गरजै—
घड़्या अपूठा पाणी ॥ टेर ॥
जोगी रोग रती मरि तोड़ै, औषध अगम बतावै ।
चामण छाड़ि अगनि में पैसै, उलटी ताली लावै ॥१॥
गङ्ग जमन मधि पवन निराधै, विष तजि अमृत पिलावै ।
गिणि २ तार अकल्ल ले गांठै, निर्गुण का गुण गांवै ॥२॥
कर्म [1]सहसयकी ले भागा, अगम गहर लि औढै ।
निरभै भया निरंजन परसै तिलभरि तार न तोड़ै ॥३॥
शेष महस बिस्नु गहि भया, काटि काटि कम लावै ।
भरि भरि अगम पियाला पीवै, भाठी चोक चिणावै ॥४॥
मही मसंहित मांही बैठा जोगी एक बिराम ।
आचारा अर्ध अगाम गहि, सुख में मीणी बाणी ॥५॥
जिनही जालिणि पावा भाजि, जिनहीं दरस दया ।
सुनि मंडल में ध्यान हमारा, जिनहीं श्रुति सया ॥६॥
जन हरिदास अधर उठिचालै, ताका पता न कोइ नाणि ।
बिन पर नीर महर एक देख्या बिरला काई जाणि ॥७॥

---

[1] सहोस हजार ब्रायो भाग

॥ पद १० ॥ ( कहरवा माढ असावरी )

अवधू माणिक चोक महानिधि लाधा, कह्यां न को पति आवै ।
जांका मोल तोल कछु नांही, सिर सौंपै सौं पावै ॥टेर॥
अधर सधर निर्मल निहकांमी, नांव निरन्जन राया ।
धरे अधर सूं परचा कीया, सो फिरि तहां समाया ॥१॥
अबरण वरण सकल संगि रहता, पतिवरता पति छाजै ।
भगति मधार अधार हमारे, चौकी चढ्या विराजै ॥२॥
अरध उरध मधि अगम अधारी, निज तत नैंडा दरसै ।
मन मतिवाला भरि २ पीवै, घटा विना घन बरसै ॥३॥
उलटी नदी गुणां सूं न्यारी, महानीर अति मीठा ।
सेजां राजा राम पधारया, महल उजाला दीठा ॥४॥
नैडा निपट न जांणै कोई, क्रम काट वहां लागा ।
जन हरिदास सुखसागर पैठा, भौ सागर भौ भागा ॥५॥

॥ पद ११ ॥ ( तीताला भैरवी में भी गावो )

जोगियां (तुमहो) अलख अभेवा आरम्भ कहांण तेरा आसण ।
करूं किसी विधि सेवा ॥टेर॥
सकल रूप रस रूप विवरजित, सकल रूपतैं कीया ।
सकल रूप करि सबतैं न्यारा, साधां कूं सुख दीया ॥१॥

पिंड न वाहि प्रीति नहि परपद, सकल निरंतरि न्यारा ।
अगह अरूप अथाह अखंडित अगम वार नहि पारा ॥२॥
मैं मेरा अनुमान बिचारथा, करम रूप तजि काया ।
उलटि सुरति गगन में गरजे, तहां कछु अलख लखाया ॥३॥
या हरि सदा सदा भी रहसी उपमी न बिनसे माई ।
जन हरिदास भगति गति ऐसी, मिले सेल्या सुखदाई ॥४॥

॥ पद १२ ॥ ( तीताला भैरवी में भी गाया जावे )

सुधि लेरे साइ सवसा, साइ काम चोर सगि राखो—
अज्ञान करोगे कैसा ॥टेर॥

तृष्णा एक रह घट भीतरि, निज पद घटके नांही ।
ऊंच नीच की माया खोंसो, सो पड़े रसोई मांही ॥१॥
मैं ते चिर चोरि चित पैठा, खंड खंड करि कापे ।
मति अभिमान काम बसि काया, करम कथा कथ्या पाप ॥२॥
सोई साइ मदा सगि खेलै, मनकी ठौड़ उठावे ।
बंक नालि अमृत रस पीवे, रसही मांहि समावे ॥३॥

(नोट) पद ११ में स्वामीजी ने [ निर्गुण सगुण दोनों
१ ही और इसीके अवतार भी होते हैं ] मानाहै

पकड़ि तराजू मनकूं तोले, हरि अमृत रस पीवे ।
जन हरिदास साह सति सोई, यूँ सांवां करि जीवे ॥४॥

॥ पद १३ ॥ (ताल रूपक)

हरि बिणा जांणी खोटा खात, रामजी सूं प्रीति नांही ।
ऊठि दिहि दिस जात ॥टेर॥
भजि निरन्जन भरम भंजन, हरि असांजन नाथ ।
आंपणों करि आप राखै, सीस परि धरि हाथ ॥१॥
(काल का भै फंद कांपै,) जाप अजपा आप आपै ।
उनमनि असथान इसो दाता, अवर नांही अभै आपै दान ॥२॥
नरक का भै कुंड टालै, (काल चोट न बहोड़ि सालै) ।
जुराग्रासै नांही, सीसदेता हि भगति आपै, हरि बसत सब मांही ॥३॥
(अमजल मै पार लहिए), खेली उलटा अगह गहिए ।
(हरि) पूरण ब्रह्म अगाध, (जन) हरिदास निर्भै ध्यान निर्मल,
तहां बस्त सब साध ॥४॥

॥ पद १४ (कहरवा)

सन्तो सहयाँ है सुख लाधा, महतो पकड़ि आप बसि कीयो-
सतगुरु सबदां बाधा ॥टेर॥

महलो रोक्या उपरि महली, किस्यो करे कस नारी ।
कह्यो कह्यू को मानै नाहीं, (तब) गहि गोलो दे मारी ॥१॥
राम बधाई मत मांगर्यो, फिरि फिरि करे बुराइ ।
ताको सिरजरपांई छूट्यो, यूं मागो पड़ माई ॥२॥
गांव [1]सुहागवि मारग रोक्यो, भाजी भाजी भावे ।
जन हरिदास सोइ ततवेता, यो भावें पछो छुडावै ॥३॥

॥ पद १५ ॥ ( कहरवा )

अवधू देखि आंखि उमाभी, पैसी आंखि सहज में खुलि-
या सतगुर सहनांणी ॥टेर॥
पायक पांच पोखिमें अटक्या, ज्ञान गुफा में आया ।
गगनमंडल में आसण रे अवधू, धुनिमें ध्यान लगाया ॥१॥
ऊंधा कमल सुलटि करि सधा, अनहद शब्द उचारा ।
गंग जमन मधि रवि शशि मेला, सहज भया मतवारा ॥२॥
गम में अगम अगम में गम है, मन फिरि मनहि समाना ।
जन हरिदास कछु कहत न आवे अब हम भया दिवाना ॥३॥

पद ॥ १६ ॥ ( कहरवा )

मनरे सो सतगुरु मैं देखा, आनन्द सहज अगम परि खेले ।
परम जोति सूं मेला ॥ टेर ॥ १७ ॥
मनगहि पवन गगन गुरु गमिर, पछिम देस पथ बांधे ।
सुरति सधाहि समंद में पैसे, वस्त अमोलिक सांधे ॥१॥

---

1 मारवा

स्वार्थ की सिर अटकि अरि अवधू, परसि परम निधि देखे।
ऐ नवनाथ हाथ में राखे, तब दिन लागे लेखे ॥२॥
पापक पांच एक रस रोके, गोरख झड़ी सलूझे।
जरणां झड़ी जोग जत जांणे, सो या अरथ हि बूझे ॥३॥
सुनि मंडल में बैसि निरन्तरि, अण बोल्या निति गावे।
जन हरीदास सोई गुर मेरा, जो या अरथ समावे ॥४॥

पद ॥ १७ ॥ ( दीपचन्दी )

जागिन देखो रे हरि नेरा, तजि बहौ रूप धूप नहिं व्यापे।
सुखमें सहज बसेरा ॥ टेर ॥ १७ ॥
रमता राम परम सुख दाता, सकल लोक ता छाया।
ता सुखि लागि साध अविनासी, अमर लोक फल पाया ॥१॥
आनन्द अनन्त अनन्त अधजारण, अनन्त चंदते सेला।
अनन्त भांण परकास परम पद, अनन्त जोति का मेला ॥२॥
आनन्द रूप अगह अविनासी, अगम तहां गम कीया।
जन हरिदास निधि देखि निजरि भरि, जन्म सुफल करिलीया ३

पद ॥ १८ ॥

निद्रा मारे मस्त दिवानी, रात्र रंक सबही चुणि मारया।
ऐसी है गैवानी ॥ टेर ॥ १८ ॥

काल आय जब फिर्यौ दोल्यौ, समझि न पड़ई काई ।
जन हरिदास हरिका भजन बिन, नर रह्यौ जमपुरि छाई ॥४॥

॥ पद २ ॥ ( ताल रूपक )

हरि सुख निमक छाडे नाहीं, रामपति मेरे जीवन जीवकी ।
रह्यो मनही मांही ॥टेर॥

फुनिग सोभा गयां व्याकुल, बावरो होय जाय ।
राम मणि मेरे बसो मस्तगि, परम संगी राय ॥१॥
आतमा अस्थान नर हरि, गया पहरि और ।
परम जोति परकास पूरण, जहां तहां सब ठौर ॥२॥
गरब गांठि नरही मनके राग द्वेष न रेख ।
जन हरिदास के राम संगि, प्राणनाथ अलेख ॥३॥

॥ पद ३ ॥ ( रूपक )

मन तोसूं कहूं हो मन हो बारम्बार सुणाय ।
अंध तजि अभिमान आयो, गलति हरि गुण गाय ॥टेर॥
खार परहरि सार सति गहि, अगम अरथ बिचारि ।
हरि नाव बिन निरबाह नांही, रखे चालै हारि ॥१॥
ज्ञान दाड उगालि अरि अघ, सहज लव सिधि होय ।
सप्तधात सुधात बसि करि, सुरति निज नग पोय ॥२॥

परम निधि निज छाड़ि निसदिन किते फल रुचि खाहि ।
मरम अस्म पई आंखि पीवे, गरक दिन दिन जाहि ॥३॥
मान संगी परसि परगट, मम प्रीति अगाध ।
जन हरिदास रसनां रांमरटिहो, श्रुरा चोरै साथ ॥४॥

॥ पद ४ ॥ ( आडा चोताला )

भजि मन अकल देव मुरारी, नांव गहिरे नांव गहि ।
हरि खेव उतारे पारि ॥टेर॥
निकटि नांव निमक्स बड़ निधि, सुख सिंध वार न पार ।
ता सिंध मांहि बसे हंसा, चुगे मोती चार ॥१॥
अगम अगाध अपार नरहरि, निरखि रे दिल मांही ।
दास निज तहां सदा सनमुखि, लिल्या हीरा खांहि ॥२॥
जहां गांव ठांव न बरखा वाड़ी, मन पकड़ि रे निधि जोय ।
जन हरिदास रसना राम रटिहूं, पीव सदा संगि सोय ॥३॥

पद ॥ ५ ॥ ( कहरवा ) गोड़ी में भी गावो

राम राय मांगू भगति तुम्हारी, सोतो त्रिविध ताप्से न्यारी
॥ टेर ॥
रिद्धि न मांगू सिद्धि न मांगू, मुक्ति न मांगू देवा ।
आदि अन्त तुम सूं मिलि रहूं, यहु आरंभ या सेवा ॥१॥

निर्मल ज्ञान ध्यान धुनि निर्मल, प्रेम प्रीति प्रकासा ।
आसण अचल तहां मन निहचल, तुम ठकुर मैं दासा ॥२॥
संयम शील साच सति सुमरण, पति प्रीति अनेरी ।
जन हरिदास कूँ आस न दूजी, आस नाहद तेरी ॥३॥

॥ पद ६ ॥ ( रूपक )

माधव कठिन जल भ्रमपूरि, सकल व्यापी हो सनेही ।
करौ काली विष दूरी ॥टेर॥
जोग ले जायवसूं वन खंड, रहूं ताली लाय ।
देखतां मन ऊठि गै ज्यूं, दंत धरि ले जाय ॥१॥
पवन गहि ले गगन राखूं, मेर डंड चढाय ।
नाथ तुम बिचि एह पडदा, दूरी पड़ी ए जाय ॥२॥
वोट हरि बिन और नांही, कालग्रासै आय ।
जन हरीदास उदास तातैं, आन कछु न सुहाय ॥३॥

॥ पद ७ ॥ ( कहरवा )

तोकूं विडद किसे दे गांऊ, जुग च्यारू वेदां वाचीजे ।
पैलो पार न थाऊं ॥टेर॥
अगम अपार पार नहीं कोई, पार न किनहूं पाया ।
तूं है एक मांड सब तेरी, सुनो निरजन राया ॥१॥

सूरज तपे सोई तेज तुम्हारो, पुरे इन्द्र के थाना ।
यहु प्रताप तुम्हारो स्वामी, तुम भोगी तुम राना ॥२॥
सात समुद्र इस भूम न लोपे, तहां किन पाज बन्धाई ।
वै लोप मरजाद तुम्हारी, (तौ) नीर धूलि हो जाई ॥३॥
तुमही आप सकल घट भीतरि, तुम ही रहौ उदासा ।
जन हरिदास कूं चरणां राखो मेटो जम की त्रासा ॥४॥

॥ पद ८ ॥ ( कहरवा )

मनरे झूठा आस पसारा, सब तजि भजि सिरजनहारा॥टेर॥
धन यौवन सुत माया, या बादल की सी छाया।
तहां बैसि सुख पाया, ताकूं फिरि धूप जलाया ॥१॥
हसती घोड़ा मन पाया, अपणां करि मुलक बसाया ।
चाल्या जब दीया रोई ताके संग न चाल्या कोई ॥२॥
साह बेद सुलताना, मैं मेरी मांहि भुलाना ।
यह काल का फन्दा, जीव जागि न दसे अंधा ॥३॥
या इन्द्रादिक की बाजी, जिन ठगे मिसर मुनि काजी ।
सब दरसण सब ठगि खाया, बाजी का मरम न पाया ॥४॥
मात पिता सुत भाई, सब स्वारथ मिल्यी सगाई ।
तहां जागि जीव मोइ, चिंतामणि करत खवाइ ॥५॥

ऊंचा महल अवासा, नाना विधि भोग विलासा ।
त्रिविध ताप अहकारी, भूलोरे बाजी हारी ॥६॥
तेल फुलेल सिर डारै, नाना विधि देह संवारे ।
किसा काम की काया, बूरया क अगनि जलाया ॥७॥
सतगुरु मिल्य साच बतावे, जो खोजैसो पावै ।
जन हरिदास हरि नीका, हरि सकल धरम सिर टीका ॥८॥

॥ पद ६ ॥ ( कहरवा )

मन रे उलटि सहज घरि नाया, तव लग बादि वक्या बोराया॥टेर॥
नाभि कमल में पवन निरोधै, तो सतगुरु का चेला ।
मनगहि पवन अगम घरि खेलूं, करूं अगम सूं मेला ॥१॥
उलटा खेलि गगन म पेसूं, सुरति सहज घरि धारूं ।
परम जोतिसूं हिलिमिलि खेलूं, ऐसा अरथ विचारूं ॥२॥
जन हरीदास निरभै निधिपरसूं, परमसिंध में न्हाऊं ।
जठर अगनि में प्रांण न होमूं, आवा गमन चुकाऊं ॥३॥

॥ पद ॥ १० ( राग दीपचन्दी )

अब मोहि दरस दिखाव माधवे, यौ औसर लाभै नांही ।
दिन २ घटतो जाय माधवे, प्रीति घटै तो जिनि मिलो ।
तुम परम सनेही राय माधवे, मै जन बांध्या प्रेमसूं ॥टेर॥

सूरज तपै सोई तेज तुम्हारो, धुरै इन्द्र के बाजा ।
यहु प्रताप तुम्हारो स्वामी, तुम जोगी तुम राजा ॥२॥
सात समुद्र इस मूस न सोपे तहां किन पाज पन्धाई ।
जै सोपे मरजाद तुम्हारी, (तौ) नीर धूलि हो जाई ॥३॥
तुमतो आप सकल घट भीतरि, तुम ही रहौ उदासा ।
जन हरिदास कूं चरणां राखो मेटो जम की त्रासा ॥४॥

॥ पद ८ ॥ ( कहरवा )

मनरे झूठा प्रास पसारा, सब तजि भजि सिरजनहारा।टेर॥
धन यौवन सुत माया, या बादल की सी छाया।
तहां बैसि सुख पाया, ताकूं फिरि धूप जलाया ॥१॥
हसती घोड़ा गज पाया, अपण्यां करि मुलक बसाया ।
चाल्या जब दीया रोई वाके संग न चाल्या कोई ॥२॥
साह वेद सुलताना, मैं मेरी मांहि भुलाना ।
पड़ काल का फन्दा, जीव जागि न देखे अंधा ॥३॥
या इत्याड़ा की पामी, जिन ठगे मिसर मुनि कामी ।
खट दरसण सब ठगि खाया, धामी का मरम न पाया ॥४॥
मात पिता पुत भाई, सब स्वारथ मिली सगाई ।
ताहा मासि जीव मोह, चिंतामणि करसे खाइ ॥५॥

अब विरहणी कूं सुखदीजे, पीव अपणी करि पीजे ।
प्रेम पियाला पावो, मेरा तन की तपति बुझावो ॥
अरस परस मिलि सोय वादे ॥२॥
पीव निकटि निरंजन नीरा, भौ भंजन संत सधीरा ।
जन हरिदास हरि पाया, सुख सागर मांहि समाया ॥
हीरै हीरा पोय वादे ॥३॥

॥ पद १२ ॥ ( कहरवा )

दरसण देहो देव दरसणादे, मोहि नैन पलक भरि परसणादे ॥टेर॥
आव घटे तन छीजै, तुम हौ तैसी कीजै ।
भौ सागर वार न पारा, मेरै तुमही राखण हारा ॥१॥
देवा विलंबन कीजै, मोहि विरहिन कूं सुख दीजै ।
तुमबिन पीड़ न जाने कोई, पीया पडदे प्रीति न होई ॥२॥
सांहिब मेरा पूरा, जाकै बाजै अनहद तूरा ।
जो सेवै सो पावै, या ते विरहिन विलम न लावै ॥३॥
मोहि विरह संतावे सांई, मै अबला तुमहीं तांई ।
ज्यूं घन कूं तरसै मोरा, यूं हरिदास जन तोरा ॥४॥

॥ पद १३ ॥ ( रूपक )

आयो उलटि जाऊं नाहीं, दयाल हो कृपाल माधो ।
मनमंड्यो चरणां मांही ॥टेर॥

निकट बसो न्यारा रहो, एके मंदिर मांहि मा० ।
एक सन्देसो म्हारे मनि बस्यो, सो हम बिसरे नाहि माधवे ॥
के मिलि हौ के तन तजु, अबमोहि धीरजा नांहि मा०।
मांफ्र अपारस्य तुम मिलो ॥१॥
अबला मनि व्याकुल भई, तुम क्यों रहे रिसाय माधवे ।
तुम मिलि होतो मिलिरहुं, नहितर मिल्यो न जाय माधवे ॥
अंतरजामी आंतरो, जन्मसिरा नों जाय माधवे ।
परम सनेही तुम मिलो ॥२॥
पांच सखी सन्मुख भई, सुखमनि सहज समाया माधवे ।
मन पवनां मेसा भया, तुम कबर मिलोगे आप माधवे ॥
आत्म अंतरि आइये, जन हरिदास असि जाय माधवे ।
दरसण द्यो हे दयालजी ॥३॥

॥ पद ११ ( कहरवा )

खोय जादे रे खोय जादे, मोहिला मनोरथ खोय जादे ॥टेर॥
निरगुन नाह न आया, तातें जीवड़ै बहुत दुख पाया ।
अब पीव विलंब न कीजे, मन दुखियां कूं सुख दीजे ।
नैंन पलक भरि जोय जादे ॥१॥

॥ पद १५ ( फाट्या )

मन पंखिया मैं तू जांग्यां रे भाई ।
उलटि गेलि परम निधि पाई ॥ टेर ॥
अगम अगाध अंतरि अविनाशी ।
मन निश्चल काया तन काशी ॥ १ ॥
अवरण वरण करम नहिं काया ।
सुमिरण वृक्ष मैं सीतल छाया ॥ २ ॥
जन हरिदास निरभै मैं नांहीं ।
( मारी ) प्राण बसै हरि तरवर मांहीं ॥ ३ ॥

॥ पद १६ ॥ ( ताल फरदया )

अबमैं जांग्यां हो जांग्यां, गोविन्दो म्हारे मनि बस्यौ ॥टेर॥
अकल सेवा करूं यहि विधि, मन ही मन समझाइया ।
नाद निरगुण सेज आया, परसि सो पति पाइया ॥१॥
साच गहि मति सदा मनमुखि, सर्बो सब सेवा करे ।
हरि निकटि निशदिन प्रेमवश, तहां सिर चरणां धरै ॥२॥
आतमा अस्थान आनन्द, सबद अनहद बाजिया ।
कोटि सूरिज तेज दरसै, कोटी चंद विराजिया ॥३॥
अगम था सो यहां पाया, प्रांण पीव संगि लाइया ।
जन हरिदास आसा अरथ लागी, मन मगन मठ छाइया ॥४॥

॥ पद १७ ॥ ( कहरवा )

धेव न जांण्यू वरा मेष तुम कैसे सति मानो सेव ॥टेर॥
सतगुरु मिलि साच बतावा, अगम पुरुषका की यह माया ।
ताहि भेद जांणै कोई नांही, भेष सेम पौडे खल मांही ॥१॥
सबदी में अक्ष होय समाया, अगम जोग का भेद न पाया ।
भेद लहै सोई गुरु मेरा, अनमि अनमि हूं ताका चेरा ॥२॥
यह विचार पार नहि कोई सालिगराम सराम न होई ।
सालिगराम सहज का धेवा, मन मानै तूं कीजै सेवा ॥३॥
मस्तक धरै गला में राखे, झूठा सदा झूठही भाखे ।
ह्वारे मेले भाखा मांही झूठ झूठ बहु साहब नांही ॥४॥
भवर्द समझि देखि जीवमरा, हरि बिन और कौंण है तेरा ।
हरि निरबंध बंधयो नहि आवे, संपट अक्षा महरि न कहावे ॥५॥
हरि परवसि पडै न पटलगि आवे, सबहनि तै न्यारा निरदावे।
हरि सबमांहि सकल हरिमांही, ता साहिब कूं चीन्हें नांही ॥६॥
निराकार निरंजन रावा, जन हरिदास ताका गुण गाया ।
जो अविनासी विनसै नांही वृथा विनसे आवै जाही ॥७॥

॥ पद १८ ॥ (कहरवा)

मन समझाय खेर मन^हि गुर ज्ञान विचार ।
आनन्द रूप अगाह अविनासी अगम वार नहिं पार ।टेर॥

आलस आवे साच न भावे, विष का पीवणहार ।
आसा वश पड्या डस्या अपराधी, जागै नहीं लगार ॥१॥
हरि निज नांव नहीं उर अन्तरि, समझै नही गंवार ।
के ते गये जाहिगे के ते, सलिल मोह की धार ॥२॥
यहु ससार खार में दीसे, (तामें) दाझै जीव अपार ।
पीवत छकै थकै निज मारग, मैं ते मोह विकार ॥३॥
तजि अभिमान आन तजि सेवा, नाना नेह निवार ।
हरीदास जन हरिगुण गावे, जा के राम अधार ॥४॥

॥ पद १६ ॥ ( रूपक )

राम विसारी मारे भ्रात, कुबुधि परहरि सुमरि हरि हरि—
सुरति सिध निधान ॥टेर॥
उदरि अचला जठरि जलमें, तहां लीयो राख ।
गाय हरि अभिमान तजि नर, आन सबद न भाख ॥१॥
सिंह स्याल पतंग कुंजर, सरप कीटी काग ।
मछ कछ होय जलां डोल्यों, तो कूं अजहुं न आई लाज ॥२॥
मनिखा औतार बड़ निधि, पाइये कहु कालि ।
जन हरिदास समझि बिचारि सदगति, रामनाम संभालि ॥३॥

॥ पद २० ॥ ( कहरवा )

जोगीयै साथ प्रीति पछेरो तातै मन नहिं भावे नेरो ॥टेर॥
चंद सूर समि कीया, सतगुरु मिलि साधुया दीया ।
मदन सदन करि धोवे, ताते भहोरि न मला होवे ॥१॥
द्वादस आंगुल माई, गहि सुखमनि सहज समाई ।
तरसि अगम रस चाखे ममता सो मन न राखे ॥२॥
जन हरिदास हरि नेरा, तहां प्रान किलञ्या मेरा ।
हरि प्रीति पछेरा दीया ता कूं हम पोढत जीया ॥३॥

॥ पद २१ ॥ ( कहरवा )

गोवि-द किसो औगुण मांही, सुखनांव सागर छाडि हरिको—
(दुखी) चले जमपुरि माहि ॥ टेर ॥
कहत जोगी रहत रोगी, रोग की घरि खान ।
सोई रोग दिन २ बाजमले, बुद्धिगया अभिमान ॥१॥
पहरि मुद्रा मगन हुवा, रहति न माई हाथ ।
पछै रावल छाडि कावल, चल्या जगकै साथ ॥२॥
पांच राखि न प्रेम पीया दसे दसा कुं जोहि ।
देखि अवधू अकलि अंधा, अजहूं चेत नांही ॥३॥
हरि नांव निर्मल निकटि नांही विकटि सेवै जाय ।
जन हरिदास जोगी छाडि आसण, जमलोक आवे जाय ॥४॥

॥ पद २२ ॥ ( रूपक )

मनरे जगत भूलो जाय, अलख की गति लखै नाहीं—
भेख भगति न होई ॥ टेर ॥
तीरथ वरत सबमांड उली, तहां चाले जांहि ।
झूंठ सूं संसार [1]राता, साच देखै नांहि ॥१॥
नदी उलटी वहै निसदिन, समदि लागी जाय ।
ता समद का कछु भेददूजा, तूं तहां ताली लाय ॥२॥
सो समद अति दुखसुख न व्यापै, जन थाह पावे नांही ।
ता समद मांहि बसै हंसा, हिल्या हीरा खांही ॥३॥
भ्रम जल जब जांणी पीवे, तब पार पावं नांहि ।
जन हरिदास कलजुग वहे जोरे, तामें वह्या स्वामी जांहि ॥४॥

॥ पद २३ ॥ ( कहरवा )

अबमें हरि बिन आन न जाचूं, भजि भगवन्त मगनहै नाचूं ॥टेर॥
हरि मेरा करताहुं हरि किया, मैं मेरा मन हरि कूं दीया ॥१॥
ज्ञान ध्यान प्रेम हम पाया, जब पाया तब आप गमाया ॥२॥
हरि राम नाम व्रत हिरदैवारूं, परम उदार निमख न विसारूं॥३॥
हरिगाय गाय गावेथा गाया, मनमाया मगन गगनमठ छाया॥४॥

---

1 रक्त ( अनुरागी )

॥ पद २० ॥ ( कहरवा )

जोगीयै साथ प्रीति पछेरो ताते मल नहिं भावे नेरो ।टेर॥
चंद सूर सम कीया, सतगुरु मिलि सावुन दीया ।
मतन भतन करि धोय, तातै बहोरि न मला होवे ॥१॥
द्वादस आंगुल पाई, गहि सुखमनि सहज समाई ।
तरसि अगम रस चाखै, ममता सों मल न राखै ॥२॥
जन हरिदास हरि नेरा, तहां प्रान विलम्ब्या मेरा ।
हरि प्रीति पछेरा दीया, ता कूं हम धोहत जीया ॥३॥

॥ पद २१ ॥ ( कहरवा )

गोविन्द किसा औगुण मांही, सुखनांव सागर छाडि हरिको—
(दुखी) चलै जमपुरि जाहि ॥ टेर ॥
कहत जोगी रहत रोगी, रोग की धरि खान ।
सोई रोग दिन २ बालमेले, बूडिगया अभिमान ॥१॥
पहरि मुद्रा भगन हूवा, रहति न भाई हाथ ।
पछै राखण छाडि काबल, चल्या जगकै साथ ॥२॥
पांच राखि न प्रेम पीया, दई हसा कूं नांहि ।
देखि अवधू भकलि धंधा, भजहूं पसे नांही ॥३॥
हरि नांव निर्मल निकटि नांही विकटि सेवै जाय ।
जन हरिदास जोगी छाडि मासया, जमलोक आपे जाय ॥४॥

॥पद २९ ॥ ( कहरवा )

जोगी पे लाधी प्रीति विचारे, ताते गरड़ चढ्यो रिपु मारे ॥टेर॥
एह सकल सिधि साधूँ, अवगति कूँ आराधूँ ।
निरमल निज ज्ञान विचारं, निराकार निरधारं,
अगम वार नहि पारं, तहां पाती पांच उतारम् ॥१॥
एह सहज तप करणां, तातें बहौटिन जांमण मरणां ।
पण मारग अण सरणां, देखि देखि पग धरणां,
ल्यौ लागा जन र्ज वे, तहां भार अठारा पीवे ॥२॥
एह सकल सुख धारं, उलटि आप कूँ मारम् ।
निज तत निज ज्ञान त्रिचारं, परापरैं सुख सारम्,
बरि खारस अमृत धारम्, तहां परसुँ प्राण उधारम् ॥३॥
एह सकल सुख भेखे, उलटि अगम कूँ देखे ।
करि अब गति सूं सीरम्, पांच पुरिष को भीरम्,
गंग जमन बिचि हीरम्, तहां परसि निरंजन पीरम् ॥४॥
हरीदास जन सोई, जाके त्रिविधि ताप नहिं होई ।
पीव के पहरे जागे, सदा निरन्तरि लागे,
गुड़िया गहि गगन चढावे, सुख सागर मांहि समावे ॥५॥

॥ इति राग सोरठी ॥

ऊम्हड़ चले न पैंडे जाय, भूखा रहे न धापि न खाय ।
जो ऊम्हड़ तो पूजे मान जो पैंडा तो दुख में मान,
दोई गुणां मैं न्यारा रहे, सो जोगिस रूपी दरसण लहे ॥३॥
जो भूखा तो हरि सूं हेत, जो धाप्या तो फिर अचेत ।
जोगी पावें ऐसा भाय, सुनि सहर की भिख्या खाय,
तन मन सोखि अकाशां चढे, सो जोगी मरिये नहिं डरे ॥४॥
ना गृह करे न बनमें रहे, पांच करम सहज ही दहे ।
जोगि रही तो चित्त उदार, वैरागी तो मन कू मार,
दोन्यूं पावें ऐसे भाय, ताकूं काल न परसे जाय ॥५॥
मैला रहे न ऊजल होय, माया दोऊ डारे खोय ।
जो मैला तो व्यापे काम, जो निर्मल तो दूजा राम,
तातें रहिए मृतक होय, ताकी बात न बूझे कोय ॥६॥
ना दुख गहे न सुख कूं जाय, ऐसे खेलै सहज सुभाव ।
सुख तहां दुख अनत अपार, तातें भजिए सिरजन हार,
राम नाम कहि ताली लाय, तब कछु भेद महल का पावे॥७॥
पाप पुनि की आसा नांहीं, राम रटयिा राखे घट मांही ।
माया छिपि रहे जन सोय, राम भजन का आनन्द होय,
जन हरिदास तब भई पिछाणी जब मिटि गई कुटुम्बकी काणी॥८॥

परम उदार अपार अखंडित, पूरण ब्रह्म भजन करि लोय ।
औसर एसो बहौड़ि नहिं पावे, हरि बिन कबहूं भला न होय॥१॥
आनन्द रूप अखिल अविनाशी, करण हार करतार सजाणी ।
जहां तन धरे तहां ही साथी, प्रेम प्रीति करि ताहि पिछाणी॥२
नारायण निर्वाण निरखि निति, गरब हरण गोविन्द उरधारी ।
जन हरिदास भजौ अविनासी, गुर गमि यौंही ज्ञान विचारी॥३॥

॥ पद ४ ॥ ( कहरवा )

राम नाम अंतरि उरधारी, हरि २ सुमरि २ रिपुमारी ॥ टेर ॥
आन आस पास करि दूरी, रमता राम रह्या भरपूरी ॥१॥
अकल निरंजन निरभै नाथ, जहां तहां जनके सिरहाथ ॥२॥
काल जाल की लगे न चोट, हरीदास जन हरी की ओट ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( कहरवा )

मै तो राम न छाडौं तोही, तूँ हरि मीठा लागे मोही ॥टेर॥
पाले पोखे सेवा करे, ताहि छाड़ि को दोजिग परे ॥१॥
ऊँच नीच अन्तर कछु नांही, परम उदार सकल घट मांही ॥२॥
जन हरिदास भजि राजाराम, आदि अनादि हरिजीऊँ आप ॥३॥

## ॥ अथ राग भैरूं ॥

॥ पद १ ॥ झपताल ० ३ ॥

नांवदे नांवदे नांवदे देवा, हरि नांव को आसिरो ।
नांव की सेवा ॥ टेर ॥
नांव विश्राम द्यो नांव की छाया नांव निरवाण दे रामजीपाया १
मै मांगो भजन द्यो भूप हरि तेरी, बीनती सांभलो बापजी मेरी २
कालकुपालहूँ सौव विधि खाया, तृष्णा परिहीनहै आसिरम या ३
सकल संसारकास्वादसबकूड़ा, जनहरिदासकामागमें नांवहीरूड़ा ४

॥ पद १ ॥ ( झपताल )

नांवदे नांवदे नांवदे रामा नांवदे नाथ मैं नांव सुखि आमा ॥टेर॥
आनन्दं ध्यान द्यो भजन द्यो देवा, ज्यूं करो राम ज्यूं मैं करूं सेवा ॥१॥
प्रेमसूं प्रीति द्यो भजन द्यो मांही, सीस दे ज्यूं पग्यो मैं बस्यूं नांही ॥२॥
जनहरिदासकीवीनतीसांभलोस्वामीजागठोसोपगोंमांगिहरिआमी३

॥ पद १ ॥ ( कहरवा )

राम भजे तो आनन्द होय, दीनानाथ दयाल दयानिधि-
चिंता हरण सकल विधि सोय ॥ टेर ॥

परम उदार अपार अखंडित, पूरण ब्रह्म भजन करि लोय ।
औसर एसो बहौड़ि नहि पावे, हरि बिन कबहूं भला न होय॥१॥
आनन्द रूप अखिल अविनाशी, करण हार करतार सजाणी ।
जहां तन धरे तहां ही साथी, प्रेम प्रीति करि ताहि पिछाणी॥२
नारायण निर्वाण निरखि निति, गरब हरण गोविन्द उरधारी ।
जन हरिदास भजो अविनासी, गुर गमि योंही ज्ञान विचारी॥३॥

॥ पद ४ ॥ ( कहरवा )

राम नाम अंतरि उरधारी, हरि २ सुमरि २ रिपुमारी ॥ टेर ॥
आन आस पास करि दूरी, रमता राम रह्या भरपूरी ॥१॥
अकल निरंजन निरभे नाथ, जहां तहां जनके सिरहाथ ॥२॥
काल जाल की लगे न चोट, हरीदास जन हरी की वोट ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( कहरवा )

मै तो राम न छाडौं तोही, तूँ हरि मीठा लागे मोही ॥टेर॥
पाले पोखे सेवा करे, ताहि छाड़ि को दोजिग परे ॥१॥
ऊँच नीच अन्तर कछु नांही, परम उदार सकल घट मांही ॥२॥
जन हरिदास भजि राम राम, आदि अंतरि हरि सूं काम ॥३॥

॥ पद ६ ॥ ( कहरवा )

अखबोल्या गावे जो कोई अजपा जाप निरन्तरि होई ॥टेर॥
भजों निरंजन अगम अगाध, जुरा न व्यापै काल न खाय ।
जोनी संकटि आवे नांही, प्राण समावे हरिपद मांही ॥१॥
सुखमनि फेरि घेरि घरि आने, अरध विचारे अगम पिछाणे ।
मूल कवल में पवन निरोधे, तब मन कूं मनही परमोधे ॥२॥
त्रिविधि ताप तजि सहज विचारे, आगि न सोखे शीत न हारे ।
त्रिवणी तटि बैसे जाय, धुनि में ध्यान रहे ल्यौ लाय ॥३॥
आसा मटि निरास संभारे, सुनि मंडल में आसण धारे ।
सात समंद ससि हारे सोख, जन हरिदास जोगी जन सोष ॥४॥

॥ पद ७ ॥ ( कहरवा )

राखि प्रभु साहिब मेरा तुम साहिब मैं बन्दा तेरा ॥टेर॥
नरक वास यों तौभी भल्यो, जो हरि लोक बसेरा ।
और नहीं बंदे का कोई, जहां तहां हरि मेरा ॥१॥
जाका चेरा ताके सारे, दूसर और का नांही ।
जो तुम मारो मारि निवाजो भी चित चरणां मांही ॥२॥
तुम साहिब मैं मुलखां जादा, चोटी कटा तुम्हारा ।
घर जायां की लाज वहीजे औगुण बिसराइ हमारा ॥३॥

कीजे आस आसंगा कैसा, करौ जिका मनि भावे ।
जन हरिदास चरणों के सरणो, मौज महरि सुख पावे ॥४॥

॥ पद ८ ॥ ( झपताल )

जागि मन बालका ज्ञान नहि पूता, कालका मुखमें निडर-
होय सूता ॥ टेर ॥
जोर तजि भोर भया राम भजि भाई ।
जुरा सहत सैन्या सीस परि आई ॥ १ ॥
केस पलट्या सूतो सेज तहां का तहां ।
काल सन्मुख खड़ा छिप्या छूटे कहां ॥ २ ॥
जन हरिदास भगवन्त भजि भाव धरि लीजे ।
और आरंभ कहा काम यहु कीजे ॥ ३ ॥

॥ पद ९ ॥ ( दीपचन्दी विलावल मे भी गावो )

हरि हीरो हिरदे बसे, गोविन्द गुण गावै ।
आदि अंति संगी सदा, तासूं मन लावै ॥टेर॥
अनल पंख आकासमें, अवनी नहीं आवे ।
आनन्द में ऊंची दसा, अपनौं भख पावै ॥१॥
अजगर के संचा किसा, कहूं हींडा न भाखै ।
वाहि विसंभर देत है, अपणा व्रत राखै ॥२॥

सब चौरासी जीव है, सब कूं ये साई ।
हरि जनकै सांसा किसा, मन हरि पद मांही ॥३॥
राम बिसार्यों बिपनहै जम मारै रे माई ।
जन हरिदास गोबिन्द भजो, तजि आन सगाई ॥४॥

॥ पद १० ॥ ( कहरवा )

यूं हम छाड्या सग व्योहार, सुख थोड़ा दुख अनत अपार ॥टेर॥
माता पूत पिता नहिं कोय स्वारथि आय मिल्या पख दोय ।
बिछड्या बहौ मिलण नहिं भागे, तातैं मोहि भाजी सी लागे ॥
सारू सुसर नहीं को सारा, ए सब दीसै मोह पसारा ।
काम हेत अवसर है सोय, तूं काहू सगा न तेरा कोय ॥२॥
मनसा भटी मिटी सब दौर, गहि गुर ज्ञान बसै निज ठौर ।
जन हरिदास गोबिन्द गुसाई, सकल बियापी राम सहाई ॥३॥

॥ पद ११ ॥ ( कहरवा )

काहे कूं अभिमान करीजै, निसदिन आव घटै तन छीजै । टेर॥
सिला बैसि सांवण लपकै, सियालै पांणीमें मरै ।
पांच अगनि उन्हाले खाई, फल भुगतै भी नर की साई ॥१॥
तीरथ बरत करै समि माई, तंत मत सीखे मन खाई ।
तुला बैसि कंचन दे कागा निहचै बिकै बिड़स्या दाटा ॥२॥

जैसा वृक्ष तिसा फलहोय, पाप पुनि परतछि फल दोय ।
यह फल छाड़ि अगम फलगहै, सो पंछी निरभै होय रहै ॥३॥
जन हरिदास यह मनका काम, निरभै होय भजै नहि राम ।
आन इष्ट संकट व्रत करै, नट ज्यूं नाचिनाचि घट धरै ॥४॥

॥ पद १२ ॥ ( कहरवा )

तूं गह भरह्या न सोयरे, कछु ज्ञान दृष्टिलै जोय रे ॥टेर॥
अब तूं चेत अचेत रे, खोलि ज्ञान का नेत्र रे ।
हरिजी के सुमिरण लागिरे, अकलि अंध यूं जागि रे ॥१॥
करम हीण कछु जांणिरे, पांचू उलटा आंणि रे ।
प्रेम पियाला पीवरे, हरि भजि ऐसे जीव रे ॥२॥
हरि हीरा कंठि राखिरे, सुणि साधों की साखि रे ।
जन हरिदास यूं जाणिरे, अतरि अलख पिछाणि रे ॥३॥

॥ पद १३ ॥ ( कहरवा )

अवगति अगम कहर गतिबाजी, निद्रा आय घटा ज्यूं गाजी ॥टेर॥
हेत प्रीति दे आंवर करै, निद्रा संगि जीवतही मरै ॥१॥
घट घट मांही डाकणि बसै, सिंघरूप होय जीवहि डसै ॥२॥
जन हरिदास निद्रा सूं हेत, अंतिकालि मुंहि पड़सीरेत ॥३॥

॥ पद १४ ॥ ( कहरवा )

हरिजन कुगति बिचारि जागै, डरैं न सोवै सापणी आगै ॥टेर॥
जोबन तीन तरल तन भारै, खूट दरसण दाढ घसि मारै ॥१॥
सासो मुख फैलायाँ भावै, सकल भवन ले ताल्हू खावै ॥२॥
सुर नर असुर अंघरि खाधा, चिंता सांपणि कुणि न बाधा ॥३॥
काम क्रोध तसणा घरि जावै आलस उद्र तहाँ ले रावै ॥४॥
जन हरिदास राम भजि भाई, तूं सांपणि कै संगि न जाई ॥५॥

॥ पद १५ ॥ ( कहरवा )

हरि भजि हरि भजि रे भया, हरि बिन जन्म[1] अकारथा गया ॥टेर॥
साथ पिछायि मान तजि अनरथ, सम आगत है आगिरे ।
आदि अन्ति हरि सदा सनेही, तू ताकू सुमिरण लागीरे ॥१॥
इन्द्रिय पांच राखि रस एक, गुण गोविन्द का गायरे ।
दीन दयाल बैठ करणा में, हरि सकल भवनपतिरायरे ॥२॥
जन हरिदास हरि परम सनेही, ज्ञान निझर झर बैखेरे ।
मुनि मंडल में सकल बियापी, हरि पूरण ब्रह्म अलेखेरे ॥३॥

---

१ अकारथ ।

॥ पद १६ ॥ ( कहरवा )

राम सुमरि नर नर हरि भजो, कामक्रोध विषया विपतजो॥टेर॥
तजि अभिमान भजौ किन संत, भौसागर तिरण नांव अनन्त।
काटौ कयांन कालका जाल, सुमरि २ गोविन्द गोपाल ॥१॥
जैसे अगनि काष्ट में रहे, काटि कटे न काठे दहे।
जन हरिदास अब ऐसी भई, भजतां राम विथा सब गई ॥२॥

॥ पद १७ ॥ ( कहरवा )

नैड़ा छाडि अनत कहां जांव, पैंडा अगम सुगम साधां सूं—
गोकुल नगर विसंभर नांव ॥टेर॥
सेवक जहां तहां ही स्वामी, सबद विचार बस्या सब ठौर।
चूंधी आखि चपल मति खूटि, चित ब्रततां सब मिट गई दौर ॥१॥
काया कुंभ प्राण जल पूरक, घट घट अलख लुकाया।
अवगति अगम निरन्तर न्यारा, ज्यूं दरपण में छाया ॥२॥
साच पिछाणी परसि परपूरण, वार पार कछु नांही।
जन हरिदास इंद्रयो रस न्यारा, व्यापि रह्या सब मांही ॥३॥

॥ पद १८ ॥ ( कहरवा )

अरथ करे पण ऊलो आसो, मरम मूख नहि भागी।
निधि नेड़ी पणि आप न भूडै, उलटि अगम नहि थागी ॥टेर॥

प्यास महोत अंतर में लागी, रोगी कदे न जीवै ।
कुपथि पथ्या मोखदि नहि नेड़ी मरण नदी जल पीवै ॥१॥
कोढ़ी विषयी सुखी होय पैठा, नैड़ो साध न खीयो ।
हरि हीरो घर मांही मूखो करम महोत सिर कीयो ॥२॥
चंदन वास विकटि करि दीठी सींचि अही मन मांनी ।
जन हरिदास ए जमके द्वार, महा पुरुष यह जांणी ॥३॥

॥ पद १८ ॥ ( कहरवा )

चोका पैसे चित दौड़ावे, रसना के रस लुधा ।
लागी चोट मरम माया की, भनरथ न भावे सुधा ॥टेर॥
पासी पड़ मापखी सांसे, मोटी मीषन जोवे ।
दोन्यु आंखि मरम की फूटी, नैंन न करे धोवे ॥१॥
कोव उजागर खेजि परमपद परसे, पैठे फरयो न जीवै ।
ताकू कहा कुशलता कहिए, मरण नदी जल पीवै ॥२॥
जाकू कई स मांकु मारै, माया के मदि मस्ता ।
जन हरिदास तिनकी गतिऐसी, दीसे जमपुरी जाता॥३॥

॥ राग भेरू सम्पूर्ण ॥

## ॥ अथ बिलावल ॥

### ॥ पद १ ॥ ( दीपचन्दी )

आंधा जीव अभागिया, सूझै कछु नाही ।
निसदिन बाघणि खात है, फूल्या मन मांही ॥टेर॥
रोम रोम में रमि रहि, सूखिम होय पीवै ।
सापणि सरबस लेत है, ता देख्यां जीवै ॥१॥
राम सगा सौं पर हर्या, कछू झरकी डारी ।
डाकणि डसि डसि खातहै, खोटी रे खारी ॥२॥
जन हरिदास कहीये कहा, कछू कहत न आवे ।
विष कीडा विषही खुशी, अमृत नहि भावे ॥३॥

### ॥ पद २ ॥ ( कहरवा )

हरिजन बाघणि देखि डरै, सेवा करै प्राण तन सोखै—
सूखिम अगनि चरै ॥टेर॥
अबला कहै पणि सबला खावे, जाणै कोई नांही ।
नख सख सूधा भूल उपारे, मीटी दे दे मांही ॥१॥
त्रिया कहै पणि तुरत गरासे, सूखिम वीर चलावे ।
काचा तूंतडा कानैं डारे, सार सकल चुणि खावे॥२

या कामणी कूँ मति कोइ धीजो, काम कटक ले आवै ।
काया कोट घोर यूं तोडै, पहली चोट मचावै ॥३॥
जन हरिदास ज्यों राम रस पीया, ते मतिवाला माता ।
जिनकै कामणि निकटि न आवै परम प्रेम रंगि राता ॥४॥

॥ पद ३ ॥ ( कहरवा )

जब लग क्यों सुपनों कछु नांही जीव तलफि मध मरवारे ।
उन पति की गति कबहुं न जानी लोक कहै पति वरतारे ॥टेर॥
राम रसायन बूंद न पीया लौंस सजन चूकीर ।
अरस परस होय सेज न खेली, तब लग सुपनें सतीरे ॥१॥
मनमें पीव अपणां करि बैठी, सकति सुहागन सीयारे ।
तिनके अजहूं परम पद अलग, परसे प्रेम न पीयारे ॥२॥
त्रिविधि ताप तजि निरखि परमपद उलटि तहांही रहिए रे ।
जन हरिदास तब लग सब झूठी, कहो कौन सूं कहिए रे ॥३॥

॥ पद ४ ॥ (दीपचन्दी)

राम सनेही साधवा, निज निज निरखति जीये
अगम पियाला प्रेम का, अनहद रस पीवे ॥ टेर ॥
प्रेम लौलि ऐसी बहै, गुण देह बिसारे ।
सेवग चंद चकोर ज्यूं निज सुरति न टारे ॥१॥

राम सरीखा ह्वे रहे, विसराम न मेले ।
मगन हुवा रस पीवे, ल्यौ लागा खेले ॥२॥
मनि उनमनि लागा रहे, चरणां चित राखे ।
जन हरिदास सो जन भला, कछु आन न भाखे ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( कहरवा )

समद नीर माछली विरोले, सुखिम सीरां पीवे ।
पैली कथा परम पद सुणतां, मन मींडका न जीवे ॥ टेर ॥
जबही सुणे तबे दुख पावे, पुखते सादि पुकारे ।
माया की छाया में बैठा, उल्ला अरथ विचारे ॥१॥
निरभे कहै रहै भै मांही, सुरति सुपह मर्हि जागी ।
नांव निरूप निकटि नहिं न्यारा, करम मालि कंठी लागी ॥२॥
अंतरि नेत तहा हरि नेरा, वै निज आंखि उजाणी ।
जन हरिदास ताका संग परहरि, लै बूड़े विन पांणी ॥३॥

॥ पद ६ ॥ ( कहरवा )

गुरु को सबद साच करि पकड़े, भै का मास्या जागे रे ।
जिनको चित साधां के चरणां, दिन दिन दूणा लागे रे ॥टेर॥
भजन भेद लीया ते जीया, भोग रोग होई लागे रे ।
आगे हीं केइ भोगी बूडा, तातें सुखदेव भागा रे ॥१॥

निरमल नहीं तिके नित पूजा आका खोटा हेरूँ रे ।
और सकल भौ सागर डूबा, नामा छीपा तेरूँ रे ॥२॥
दास कबीर सकल जग परकट पीपै परचा पाया रे ।
भौ सागर में बेरा बांध्या, भगतां भेद बताया रे ॥३॥
जन रेदास नीच कुल ऊँचा, जाकूं तीनि लोक सब बांदे रे ।
जन हरीदास बे निरमे देख्या सारें उलटी सांदे रे ॥४॥

॥ पद ७ ॥

घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह, घटि घटि ब्रह्मा बिष्णु महेसारेरा॥
घटि घटि नारद घटि २ राम, आनन्दरूप सकल घटि आन ॥१॥
घटि घटि ध्रू देखाघटि ध्यान, घटि घटि मीन मरण हनमान ॥२॥
घटि घटि ममता घटि घटि मोह, घटि घटि कंचन घटि२ लोह॥३॥
घटि घटि आवे घटि घटि जाय, घटि घटि खेले घटि घटि खाय॥४
घटि घटि रावण लंका द्वार, घटि घटि केरूँ सेनि अपार ॥५॥
सूवा गोरख लिया अगाय जन हरिदास ताकी बलि जाय॥६॥

॥ पद ८ ॥ ( बीरमचन्दी )

मेरे मन की चारियाँ, मैं जानूं र माई ।
सुखिम ह्व उरत चस, विपहर ह्व खाई ॥ टेर ॥
विषिया क मनि बनि बस, सो कैसे जीवे ।
काम धन्ध गरजे सदा नाना रस पीवे ॥१॥

वहौ छाजों खेलै खुशी, वहौ रूप इन हारे ।
रसना के रस ऊतरे, जांगो त्यूं मारे ॥२॥
श्रवणां सुख ले नाद का, परमल सुख नासा ।
कुबुधि कलाली कामना, तहां खेलै पासा ॥३॥
जन हरिदास विषिया तजे, गोविन्द गुण गावे ।
छाजे वैसे ज्ञान के, तबही सच पावे ॥४॥

॥ पद ९ ॥ ( दीपचन्दी )

जे लागि तो जागि रे, सूतो कांय हारे ।
सतगुरु के सर बेंधियों, कहि क्यूं न पुकारे ॥ टेर ॥
सबद तीर ताना खरा, लागे तो मारे ।
कोटिन मध्ये एक को, तनि चोट सहारे ॥१॥
अभि अंतरि भलका रह्या, सतगुर का लाया ।
नख सख लूं साले नहीं, तौ खाली वह्या ॥२॥
करम कड़ी काठी जड़ी, ममता के धागे ।
जन हरिदास ता जीव कै, तनि चोट न लागे ॥३॥

॥ पद १० ॥ ( दीपचन्दी )

जब लग मन बाहरि फिरे, माया की छाया ।
तब लग तत दरसै नहीं, मति मान्च न्पाया ॥टेर॥

निरमल नहीं तिक निव हुवा माका खोटा हूँ रे ।
और सकल मो सागर हुवा, नामा छीपा तेहँ रे ॥२॥
दास कबीर सकल सग परकट पीपें परचा पाया रे ।
मो सागर में मैंरा बांध्या, भगतां भेद बताया र ॥३॥
जन रेदास नीच कुल ऊँचा आकु तीनि लोक सब साखे रे ।
जन हरीदास वे निरमे देख्या तासें उलटी ताखे रे ॥४॥

॥ पद ७ ॥

घटि घटि गोपी घटि घटि कान्ह, घटि घटि ब्रह्मा विष्णु महेशादेरा।
घटि घटि नारद घटि २ राम, आनन्दरूप सकल घटि ध्यान ॥१॥
घटि घटि ध्रू देखाधरि ध्यान, घटि घटि जीव मरण उनमान ॥२॥
घटि घटि ममता घटि घटि मोह, घटि घटि कंचन घटिर लोह॥३॥
घटि घटि मावे घटि घटि गाय घटि घटि खेले घटि घटि लाम॥४
घटि घटि रावण लंका द्वार, घटि घटि केहँ सेनि अपार ॥५॥
खता गोरख लिया मगाय जन हरिदास ताकी बलि जाय॥६॥

॥ पद ८ ॥ ( चौपनमती )

मेरे मन की चोरियाँ, मैं जानूं वे भाई ।
सुखिम ह्वै उरत चलें, विपहर ह्वै खाई ॥ टेर ॥
विपिया के मनि पनि घसे, सो कैसे जीवें ।
काम घरा गरजे मदा नाना रस पीवे ॥१॥

वहौ छाजों खेलै खुशी, वहौ रूप इन हारे ।
रसना के रस ऊतरे, जांणे त्यूं मारे ॥२॥
श्रवणां सुख ते नाद का, परमल सुख नासा ।
कुबुधि कलाली कामना, तहां खेलै पासा ॥३॥
जन हरिदास विषिया तजे, गोविन्द गुण गावे ।
छाजे वैसे ज्ञान के, तवही सच पावे ॥४॥

॥ पद ६ ॥ ( दीपचन्दी )

गे लागि तो जागि रे, सूतो कांय हारे ।
सतगुरु के सर वेंधियों, कहि क्यूं न पुकारे ॥ टेर ॥
सवद तीर ताना खरा, लागे तो मारे ।
कोटिन मध्ये एक को, तनि चोट सहारे ॥१॥
अभि अंतरि भलका रह्या, सतगुर का लाया ।
नख सख लूं साले नहीं, तौ खाली बह्या ॥२॥
करम कड़ी काठी जड़ी, ममता के धागे ।
जन हरिदास ता जीव कै, तनि चोट न लागे ॥३॥

॥ पद १० ॥ ( दीपचन्दी )

जब लग मन बाहरि फिरे, माया की छाया ।
तब लग तत दरसै नहीं, मति साच उपाया ॥टेर॥

साध कहै रुचि अगम की खेलै गम मांही।
उलटी मूंठी पवास कूं, सकै कछू नांही ॥१॥
अप मारग की आपदा, घुलि गांठि न खोलै।
लोक लाज लालचि पच्या, निरपख है बोलै ॥२॥
जन हरिदास आसा मुखी, जीया मया जीया।
हरि सुख सागर न्यारा रह्या माया मद प या ॥३॥

॥ पद ११ ॥ (दीपचन्दी)

रूप न रेख वर्ण नहो थोड़ो, भरखी गंग न फुनि नांही रे।
सकल सकल संगि रहे निरन्तरि, ज्यूं चन्दा जलमांही रे।।टेर।।
अगम अथाह थाह नहि कोई, थाह न कोई पावे रे।
ऐसा अमन तिसा सब कोई, मन उनमनी बतावे रे॥१॥
सागर में कुंभ कुंभ में सब है निराकार निज ऐसा रे।
सकल लोक एसे हरि मांही, रूप कहो पूंछे सा रे॥२॥
अचल अघट सब सुखको सागर घटघट सब रा मांही रे।
जन हरिदास अविनाशी एसा, कहे तिसा हरि नांही रे॥३॥

॥ पद १२ ॥ (दीपचन्दी)

मीठा लागे रामजी दूजा सब खारा।
परसी निरन्तरि लेखिवा, समझ्या सोई सारा ॥टेर॥
पछिम दिसा मन फिरि चल्या, पूरब दिस आया।
सहज सदा भक्ष होवई मन मनहि समाया ॥१॥

सुन सुधारस पीजिये, पति प्राण अधारा ।
झिलि मिलि झिलि मिलि होतहै, बरिखा बहौ धारा ॥२॥
गंग चली फिरि गगन कूं, गिरवर गत छाया ।
जन हरिदास आनन्द भया, तन में तत पाया ॥३॥

॥ पद १३ ॥ ( गत कहरवा )

जिनि जिनि जिनि हरि नांव गह्यौ, उलटा खेलि चल्या सुखसागर।
दुख दरिया विष दूरि दह्यौ ॥ टेर ॥
धरि विश्वास करम करि वुटका, हरि रस रसना जानि रस्यो ।
तजि संसार धारते उतरे, हरि तरवर मन जाय बस्यो॥१॥
सुरति सवाही परम निधि परसे, एके ही ल्यौ लागि रह्यौ ।
सहज समाधि गवन बेगम पुरि, कालंग पुर दुखदूरि दह्यौ ॥२॥
गर्व्व गुमान चरण तलि चूरथा, उर अंतरि निज नांव धर्यौ ।
जन हरिदास सुख सागर पैठा, अघ अजरायल चमकि डर्यौ३

॥ पद १४ ॥ दीपचन्दी

अलख निरञ्जन निरगुणा, मेरा मन मांही ।
झूठा सुख संसार का, खोटा कछु नांही ॥टेर॥
जीव जीव के आसिरे, आसा धरि आवे ।
अंति आस पूजे नहीं, पाछे पछितावे ॥१॥

प्रांणनाथ पति छाड़ के, माया बसि झूले ।
भक्तिदास छाड़े नहीं, काहे कूं फूले ॥२॥
जन हरिदास ऐसी कथा, आयो सो जीवें ।
सुनि मवडल में पैसि के, निरये रस पीवे ॥३॥

इति बिलावल संपूर्ण ॥

## ॥ अथ राग गूजरी ॥

॥ पद १ ॥

सखीरी अब पीवके मनि माइ, उडि उडि आव पलंग रंग बपरो।
हरि रंग पलट्यो न जाई ॥ टेर ॥
औगुण बहौत सीख नहि साची, बहौत करी संगराई ।
सौ कसि सकल बगती याकी (पीव) परकट सेज बुलाई॥१॥
रूप बरस माग कछु नांही, तन सिणगार न कीया ।
शंका घर रेखदिन व्यापे पीव कह्यो आदर दीया ॥२॥
जन हरिदास सांसा सब भागा, तब पीव अंकम लाई ।
बांह पकड़ि हरि आदरि लीनी, जमकी मिटी दुहाई ॥३॥

## ॥ अथ राग टोडी ॥

॥ पद १ ॥ तीताला ( कहरवा )

ऐस राम राय नांथीला पीडूं उलटा मांथीला ॥टेर॥

औघट घाटी पीईला, हरि भजि ऐसे जीईला ॥१॥
त्रिकुटी कापड़[1] धोईला, भवर गुफा में सोईला ॥२॥
जोति सरूपी जोईला, हरि भजि हरि सा होईला ॥३॥
दीन दयाल पिछाणीला, जन हरिदास तें प्राणीला ॥४॥

॥ अथ राग कालंगड़ी ॥

( दीपचन्दी )

राम सनेही जीवनि मेरी, तेरे चरण कमल परवारी फेरी ॥टेर॥
हरि उनके मन्दिर हरि आवो, मै व्याकुल मद रस दिखावो ॥१॥
वेदनि विरह विथा तन मांही, पड़दा खोलि मिलां क्यूँ नांही॥२॥
जन हरिदास के आस तुम्हारी, विलम कहा पति देव मुरारी ॥३॥

॥ इति कालंगडी सम्पूर्ण ॥

॥ राग नट ॥

पद ॥ १ ॥ ( राग नट ताल )

तुम बिन मिटत न जानी पीर, धनुष धारि जोधा संगि मेरे ।
मै वासी बलवीर ॥ टेर ॥

मेरा करम मूल का लागू, ताकूँ परी तन भीर ।
बेडी कठिन कहो क्यूँ काटो, कुल मरजाद जंजीर ॥१॥

भोगुण महोव भमन नहिं कीया, मनको मतो भधीर ।
भवमंझ मार पार कछु नांही, क्यूँ करि पकड़ो तीर ॥२॥
है हरि भकल सकल विप व्यापी मैं काचे काये नीर ।
जन हरिदास परणां का चेरा सरणि राखि रघुवीर ॥३॥

पद ॥ २ ॥ ( रूपक )

तुम हरि बसो मंदिर आप, नैंन निसदिन भर वरि नीर ।
प्रीतम पीव बिन लाल ॥ टेर ॥
आतमा भसथान आतुर, विरह विपहर खाय ।
मन मंपा व्याकुल कब मिलोगे, सकल व्यापी राय ॥१॥
हरि भाव निज पथ सदा हेरूँ, भान पथ न सुहाय ।
पीव पीड़ दुख दूरि कीजे, देव दरस दिखाय ॥२॥
तुम जानते हो कछू कार्ई, कहतन भाव काय ।
जन हरिदास कूँ दीदार दीजे, प्रेम प्रीति चखाय ॥३॥

पद ॥ ३ ॥ (कहरवा )

मभि मनिराम सभीपनि सूरि, प्रेम प्रीति अंतर स्यों लागी ।
हरि सकल रहे भरपूरी ॥ टेर ॥
जग सें प्रीति कहां लो कीजे, सकल काल की चोट ।
सबटो खेलि मनस का सुतलौ, पकड़ि राम की वाट[१] ॥१॥

है हरि अनल सकल विष व्यापी, नैरा वसौ हरू दूरि।
जन हरिदास निजरूप न जान्यौ, ताप सुवा मुखि धूरि ॥२॥

॥ पद ४ ॥ ( कहरवा )

अब हम राम भजन सुखपाया, काम किवाड़ी जड़ी जतनसूं।
मोह मता मुरझाया ॥ टेर ॥
विकसत कँवल सबद सतिसुनियां, सुनि मंडलमें सारम् ।
वरखै शूनि गगन रस भीजे, सदा अखंडित धारम् ॥१॥
चन्द सूर एके रथि बैठा, वचन विरोलै बाई।
गंग जमन मधि हीरा दरसै, सुखमनि सहज समाई ॥२॥
स्यौ वरि सकति सकति सूं मेरा, भरमगया भौ भागा ।
गगन मंडल मे वसै उड़ांगर, ऊंचे आरम्भ लागा ॥३॥
निराकार निरलेप निरन्तरि, महलि मिलै वनमाली ।
सुख में सीर अखिल अविनाशी, परम जोति सूं ताली ॥४॥
घटि घटि अघट अगहि अविनाशी, वंक नालि रस पाया।
पांचूं थकत छकया रस खेलै, आनन्द अगथि समाया ॥५॥
नव घण घटा गरक गुण तीनूं, रामरतन धन नेरा।
वूठे मेह पहम[1] रूति पलटे, सुख में रहै वसेरा ॥६॥
है हरि अकल सकल की शोभा, जागि लहै सो जीवै ।
जन हरिदास तातैं रातलिया, अगम पियाला पीवे ॥७॥

॥ पद ४ ॥ ( कहरवा )

जब मनमें से मोह छुटावे, उनमनि रह निरन्तरि निशदिन ।
कबहि न काग लगावे ॥ टेर ॥
मनमें तन तनमें मन खेलै, पांच सूत की पूजा ।
मोटो आप आपणो बाधा, तब लग हरि सूं दूजा ॥१॥
खोलि कपाट करम करि कानै, अकरम अगम समावै ।
पठ फिरै न पाहुस पेलै, निरभै निरभर आवै ॥२॥
इन्द्री पांच अटकि ले उलटी, ज्यों की तारी लग पे ।
आसा छाडि निरास बिचारे, अखिल अखा बिन हावे ॥३॥
उलटा खेलि आकास गरासे, गममें अगम बिचारे ।
जन हरिदास मरम अनभय का, तब दोन्यूं पष हारे ॥४॥

॥ पद ५ ॥ ( कहरवा )

ऐसो राम कहां बनि आवे जीवन अलप कठिन है कलिजुग ।
हरि बिन कोन छुडावे ॥ टेर ॥
मन की लहर अनत बडी छाया, तातें मरम न आवे ।
ताको आसपास मधुकर ज्यूं, जहां लागी तहां जावे ॥१॥
हरितें फटकि पतित है हूआ, साच कह्या न सुहावे ।
नौका छाडि पड़े सागर में, मरसि मरसि दुख पावे ॥२॥

जमकी त्रास तको यमि महसी, जिन पेला प्रेम न पाया ।
जन हरीदास या जीव का त्रासा, मनके हाथि विकाया ॥३॥

॥ इति राग नट सम्पूर्ण ॥

## ॥ राग मलार ॥

॥ पद १ ॥ ( दीपचन्दी )

संतो खे तीकी रुति आई, औसर यसौं वहोड़ि नहि लाभै ।
अब जीत्या ज्यूं वाही ॥ टेर ॥
धरती खडि झाड अलमोरह्या, विरह अगनि जलाई ।
सुरथि भोमि राम जल वूठा, यूं वाडी बनि आई ॥१॥
हाली भला मला संजपगला, एक मते है लागा ।
ब्रह्म साखि यूं निपजी आई, घरका टाटा भागा ॥२॥
अनत आतमा और न जाचे, खलै बहोत सुख पाया ।
निज तन तिको लाटतां लीयो, लाटै लोक धपाया ॥३॥
यसा भेद कोई विरला जांणे, ताकूं काल जालमै नांही ।
जन हरिदास हरि साखिमकलभरि, विलमी आनन्द मांही ॥४॥

॥ पद २ ॥ ( दीपचन्दी )

सखी ओ गगन गरजि घन आए. सुणि रसबद कवल निजविकसत
अंतरि अलख लखाए ॥ टेर ॥

सेम सुहाग भाग बड़ भ्यावनि, अमर छोल सुख पाए ।
मनमें मेल रामरस मातो, घसि सुख सागरि न्हाए ॥१॥
मोर मगन चाबिग सुख चितवत, बीज चमकि भ्रूकलाए ।
अनहद सबद गोपि सुनि गरसत, पीव मिलि प्रेम बढ़ाए ॥२॥
मवरा मंडल होत अति आनंद, पेखि सघत घन छाए ।
जन हरिदास अखपुरि परम गति परम जोग पति पाए ॥३॥

॥ पद ३ ॥ ( दीपचन्दी )

सखीओ सावण मास बिराजे, अरस परस कौतूहल देख्या–
उरध कमल के छाजे ॥ टेर ॥
परमल प्रीति उमगि अल उलख्या, गगन गरजि घन आया ।
दामणि उलटि आम में बैठी, नौ घण न्यूंति बुलाया ॥१॥
बादल त्रिविध पवन सुखि पीया, बक नालि में आई ।
निरमल नीर भरो निझि धूठा, घटा मरमें आई ॥२॥
चौपट पाट अघट में भटक्या, सुखमनि सहज समानी ।
ए नौ माप नींद भरि सुता, नदी निवासे तांनी ॥३॥
इन्द्र आकाश अरध में भीना परसि परम सुख लीया ।
जन हरिदास परसि अस पेखो, मीन अल मालखा पीया ॥४॥

॥ इति राग मलार सम्पूर्ण ॥

## ॥ अथ राग सारंग ॥

### ॥ पद १ ॥ ( दीपचन्दी )

राम चरन छाडौ नही, भौ जलि भूलि न जाय ।
सुरति समांनी माचमें, मारो मन पायो विसरांम ॥ टेर ॥
अगनि विना ईंधण जले, जल विन मलि २ न्हाय ।
विन जिभ्या जस होत है, तहां मन रह्या समाय ॥१॥
विन श्रवनां मींगीं सुनें, विन पांवां पंथ होय ।
नांद वारो मन ना वहै, जानें विरला कोय ॥२॥
साथ सकलले सावतो, खस्यै खेत कमाय ।
विन वाड़ी फल होत है, जो जांणै सो खाय ॥३॥
नैंन समानां नूरमें, हरि नूर निरन्तरि आय ।
जन हरिदास आनन्द सदा, विछड्या वडो सन्ताप ॥४॥

### ॥ पद २ ॥ ( दीपचन्दी )

अवधू गुरु विन ज्ञानन लाभे, कहा भयो भै दामणि दासी—
जल विन वोछै आभै ॥ टेर ॥
जब लग निज तत तिजरिन दरसै, तब लग प्यास न भाजै ।
कहा भयो जै सूके भांडे, खाली वाई वाजै ॥१॥
नौ घण घटा गरसि जब बरसै, तब हाली सुख पावै ।
आरम्भ करै साखि है मांझी, कसकरि काज चुकावै ॥२॥

जन हरिदास दोष तजि दुरमत, राम रसायण पी ।
मूठै मह पहम रुति पलटै पाचे जागा जावै ॥१॥

॥ पद ३ ॥ (कहरवा)

मो चल ऊँडो हो मसत, रहिए कौय मझार ।
अजर मिजाम नोज हरिवरा, बेजी मोह पसार ॥ टेर ॥
जमके लोकि सदाई रहती, दहती जम की काय ।
अबमें राम सगी पनि पाया, जममें पला छुटाय ॥ केशव० ॥१॥
कुबुधि सखी घर जाई आँपथे सुबुधि कहै कर जोडि ।
मैं पतिबरता हरि पाय पायो कुल मरजादा तोड़ी ॥ केशव० ॥२॥
पाँच सखी सहज भरि खेलैं तन मन सेम बिछाय ।
जन हरिदास मन आतुर देख्या तब बठा हरि आय ॥३॥

॥ पद ४ ॥

सुखसागर साहिब मेरा जहाँ लाग रह्या मन मेरा ॥ टेर ॥
निरमल ज्ञान ध्यान धुनि निरमल, निरमलकूं मन दीया ।
ता जोगी संगि सहबैं खसूं जिन जोगी जग कीया ॥१॥
नैना राम बसै हरि पैनों हृदये रह्या समाई ।
रोमरोम हरि सुमिरण लागा जरे गुरु गमि दीयो बताई ॥२॥
आनन्दरूप अखिल अविनासी, सुखमें सुरति समानी ।
जन हरिदास निधि देखि निरन्तरि घटि र अघट बिनानी ॥३॥

॥ पद ५ ॥

अबला पीव बिन क्यूं रहूं, निशदिन तलफि२ तनजाय ॥टेर॥
स्वाती बूंद सहजां पीवे, ना पीवै नाडोग नीर ।
विरह अगनि तन जालियो, जिहव्यापै सोई जानैं पीर ॥१॥
प्रेम पियाला चित चड्या, अब पीयहो मोहि प्रेम पिलाय ।
रोम २ हरि रस पीयो, तन बिछडै तनु प्रेम न जाय ॥२॥
पतिब्रता विभचारिणी, दोऊ अनतन बैसे एकै साथी ।
फटकि मणि तब लगभली, जब लग हीरा आवे न हाथी ॥३॥
अनत पुरि आगे बसी, राम भजन बिन चलहां ठगाय ।
उतिमपुरी आमर भयो, अब पीव प्रेम मगन रस पाय ॥४॥
अधिक दरद काहूं कहूं, व्यापत है मेरा मन माही ।
जन हरिदास तनमन भड्या, अबपीव हसि बोलो क्यूं नांही ॥५॥

॥ पद ६ ॥

मन तन जाय लोरे, या सुखि रहिए कौन अधारा ।
अब तजि भरम शरम गहि हरि भजि, सांच तहां सुखपारा ॥टेर॥
आपै कलिण कल्यो अपराधी, अकल पुरसि कैसे पायहोरे ।
सकल भजन पतिराय सकलसुख, अगम विचार अपारपरम तंत ॥
हरि भजि लीजे प्रेम बधायरे ॥ १ ॥

समझि २ निश्चल निभ्रमन धरि, भवर २ भजि २ निस वासुरी।
भरयौं निज धन नेम विचारी, जनहरिदास स्वासरग हरिबिन।
कौड़ी सटे न हीरा हारी ॥ २ ॥

॥ इति सारंग सम्पूर्ण ॥

॥ राग बसन्त ॥

॥ पद १ ॥ (धमाल)

तुम भजो निरञ्जन जनम जाय कौण नींद सूते भयाय ॥टेर॥
काल माया गहि सकल ताही, जीव लागिरहै सबमदनमोही।
राम भजन बिन कौन बात, जहां तहां जम करत घात ॥१॥
राति द्यौंस तन होत छीन, जैसे थोड़े पांणी मगन मीन।
काल कीर नित ग्रसत आय रामसमन्द तहां कर्यू न जाय ॥२॥
प्राणनाथ सूं प्रीति धारि, गुरुज्ञान सबद हिरदे बिचारि।
हरि अनाथ भजि तजि अभास, जन हरिदास तहां काया न कालश॥

॥ पद २ ॥

मन मतिवाला राखि ठौर पसक २ हरि निकटी बौर ॥टेर॥
इस तत पितवत गई बिलाय, हरिहै हजूरि मन तहां जाय।
प्रेम प्रीति का बेह बंध ज्यूं स्फटिक सेवै मन भकुच ॥१॥

नाभि कवल निज सुरति लाई, तहां वस्त है राम राय ।
हरि सकल वियापी परमदेव, त कूं वहोत भांतिसूं तहां सेव॥ २॥
जागी २ रे जाची २, हरि अगम २ तूं तहां राचि ।
जन हरिदास हरि सकल साचि, हरि निकटि२ मन विकटिवाचि॥३

॥ पद २ ॥

मतवाली [1]मालणी नहि दूरि, हरि परम सनेही है हजूरी ।।टेर।।
अरध उरध मधि कंवल मूल, आत्म निज फूलि ब्रह्म फूल ।
अजववास कछु कही न जाय, जहां मनसामाल निरहि लुभाय ॥१
रवि शशि मेला पछिम धूरि, तहां नदी निवासै वहै पूरि ।
भरि २ पीवे अठार भार, तहां वसुधा भींजै अखंडधार ॥२॥
सकल वियापी सहज भाय, मथुरा पति महलां वसी आय ।
जन हरिदास तहां चरणां लाग, जहां गोपि ग्वालन रमै फाग॥३॥

॥ पद ४ ॥

सखी हो मास वसन्त विराजै, गोपी ग्वाल घेरि गोकुल में—
बेणि मधुर धुनि वाजै ॥ टेर ॥
धागे सुरति पांच नग गुथ्या, मन मोती मधि आया ।
विगसत कवल परमनिधि परकट, हरि कूं हार चढाया ॥१॥
गरव गुलाल चरण तलि चूर्‍या, अरग अवीर खिडाया ।
परमल प्रीति परसी पर पूरया, पीव में प्राण समाया ॥२॥

१ मनसा रूप

बंक नालि निरधार नौ निरभै ऐ कौतुकधारी ।
जन हरिदास आनन्द निजनगरी सेवै लागि मुरारी ॥३॥

॥ पद २ ॥

अबधू अमर भाग निज जागो, ताकी उत्तम बास ले जीवै ।
निरभै डोरि निरन्तरि लागी मगन भयो रस पीवै ॥ टेर ॥
अब फूल की बास मस्त है, भमी महारस लागा ।
सुखदेव पी मतवाला हुवा, ऊठि बना कूं भागा ॥१॥
सुनि भरथ की बाणी बिगसै, सहज सकल रस लाधा ।
जन हरिदास हरिजी का सेवक, अमकै बंध न बाधा ॥२॥

॥ पद ३ ॥

मन मति वाला सहज भाय, जोगसुख गहि रहा समाय ॥टेर॥
अम अगनि परखा अपार भरि भरि पाव अठार भार ।
राग अमन मधि बसन्त राग, मंवर गुंजार गहर बाग ॥१॥
चन्द सूर रथ खिन्या फाग, ज्ञान ध्यान स्यौं गगन लागा ।
प्रेम प्रीति का महोच्छव हाय, पांच सखा सब सौंज साथ ॥२॥
हरख साग दुख दुभ्या दाय, यह गति अखि साध कोय ।
त्रिवेणी तटि ध्यान धारि परम ज्योति प्रकटै मुरारि ॥३॥
सकल विरापी राम राय, परम पुरुष गति लखी न जाय ।
जन हरिदास अगति अनंत, भजि अलख निरंजन हरि बसंत ॥४॥

॥ पद ७ ॥

चलौ सखी जहां राम राय, रामराय बिन रह्यौ न जाय ॥टेर॥
यहु आलम कहा लग्यो तोही, बात सखी यह कहौ मोही ।
जन्म अमोलिक चल्योजात, नाऊ तरवर लमे फिर तूटे पात ॥१॥
एक सहर में विविध राज, हस्ती पायक हेम बाज[1] ।
काल बांधलिये फिरतमांही, तहां बस्यौ कछु चैन नांही ॥२॥
परम उदार आनन्द अछेह, सुत तात मात जीवे न देह ।
जन हरिदास मन तहालीन, समद बिछोहै मरे मीन ॥३॥

॥ पद ८ ॥

चलहूं सखी करि बसन्तराग, जिस बनमन मोहन रमेह फाग॥टेर॥
पांच सखी सब स्योंज हाथी, मिलि खेलण चाली पीव साथी ।
तुम अगाध मैं न क्यू जीव, आई रुति बसन्त रंगि रमोह पीव ॥
ज्यूं चकवी मनि रहै उदास, ऐसे आतम फूलि ले सुबास ।
यहौ बागमें रहे लोभाय, एसो बाग बन्यो पीव रमोह आय॥२
जन हरिदास मन अति उमंग, ऐसा लागा प्रेम रंग ।
प्रेम पियाला घटत नांही, हरि अगाध जन पीवत जाही ॥३

॥ इति राग बसन्त सम्पूर्ण ॥

१ घोड़ा

॥ राग बंगालो ॥
॥ पद १ ॥ ( तीताला )

कई मोर के कहे सहमां, तुम बिन हम पे ठौड़ छुडावो ।
अब हम र्यूँ ऐसे मन राखो अन्तरि ज्योति जगावो ॥ टेर ॥
तन सूँ तन मन सूँ मन मेला, अंतरि २ मेला रे ।
और सकल सुख बिसमरि जागत, तुम जागत हो सेजा रे॥१॥
नैननि में नैन बैननि में बैनां समझि समझि सुख दीजे।
तुम बिन जीव चात्रिग की नांई, तलफि २ तन छीजे ॥२॥
तुम बिन पीर न जाने कोई, तुमहीं १डोरि लाई ।
जन हरिदास गुरु मुरली धारी, विरहनि विरह जगाई ॥३॥

॥ पद २ ॥ ( तिलवाड़ा )

पीव पाए हो जागि जागि भव मोह मागि ।
सीतल सबद सुहाए हो ॥ टेर ॥
मनहीं सूँ मन मेला बैनहां सूँ बैन सेला१ ।
निज घर नैन समाए हो ॥ १ ॥
आँनि आँनि प्रीति लाए सेजां सनेह पाए ।
माल मों मनि माए हो ॥ २ ॥
जहाँ तहाँ सुख भरे, मोही हूँ विरत खरे ।
आनन्द अनत रिझाए हो ॥ ३ ॥

१ यहां 'डोरी' यह पाठ भी है २ सीन

भवन गवन कीया, मन मेरा हरि लीया।
अरस परस रस पाए हो ॥ ४ ॥
जन हरिदास तहां वास, सुख में सुख निवास।
समझि २ सुख पाए हो ॥ ५ ॥

॥ इति अडाणो राग संपूर्ण ॥

## ॥ राग कनड़ौ ॥

॥ पद १ ॥ राग ( तीताला ) ( मालकोप में भी गावो )

सन्त सुधारण जम चोट विदारण, परम उदार करतार विशंभर।
गहर गम्भीर समद भौ तारण ॥ टेर ॥
हरि पावक पावक[1]पख जारण, पार ब्रह्म अघ मेटण कारण॥१॥
जल थल बास अरि आस निवारण, नावनिरूप घट घाट संवारण२
हरिजनहरिदासभूभारउतारण, हरि परमज्योति जम उरविस्तारण३

॥ पद २ ॥ ( तीताला )

जो मन कबहूँ हरिजी सूँ लागो, जठर अगनिभी वहौड़िन खेलो।
जमके पटे चढे नहिं आगो ॥ टेर ॥
त्रिविध ताप तत पांच न परसो, जोनी जीव जन्म नहिं आवे।
तजि संसार धारते उतरे, उलटो खेलि परम पद पावे ॥१॥

---

१ अमित्र तापदायक शत्रु

मन महि पवन गगन हरि पाया, पाया रहै लागि तब दरसे ।
जनहरिदास मन पलटि परमगति, निरमल होय निकटि निधि परसे२

॥ पद ३ ॥

जो कबहू मन हरि सुख चाखे उनमनि लागि अगम घरि खेले ।
और सकल सुख जाहि न चाखे ॥ टेर ॥
ज्यूं लग्गुल [1]पहुप में पैरे, सब मल तजे आप समावे ।
यूं सति सुरति निरखि निधि निरमे
या सुख अटकि उलटि नहिं आवे ॥ १ ॥
[2]ज्यूं सूरि सुत अनल गगनकूं उलटे, ज्ञान प्रकाश पिता पद पावे।
यूं फिरि जीव सिव संगि खेले, जन्म जन्म का कलि विष धावे ॥२॥
सलिता गोष्टी करे तब न्यारी, समद समाय समद सभि होवे ।
जन हरीदास यूं अरस परस मिलि, हरिजन हरिमें आप समोवे॥३॥

॥ पद ४ ॥

साजिन बाजि परम पद आपे, रामदयाल अमर करि थापा॥टेर॥
करवा करण सदा सगि जाके, चिनतनि कहाँ कहाँ घू ताके ।
करम कुठार लिया हरि [4]हाथ, जन हरिदास नर हरि हरि आपे२

१ घमला २ समीप आत्म स्वरूप ३ अमर पेद का बना ४ काटता है।

## ॥ राग मारू ॥

### ॥ पद १ ॥ ( गत ताल धमाल )

[1]जग जियां जागिन जोयारे, नर देही हरि नां भज्यो ।
यूँ ही तन खोया रे ॥ टेर ॥

स्वारथ का सब कोई सगा, बादल की[2] छांही रे ।
सुपनैं का सुख छाड़ि दे, जागे क्यूँ नांहीं रे ॥ १ ॥

झूठा सुख संसार का, साचा करि लीया रे ।
मोह नदी में बहि गया, माया मद पीया रे ॥ २ ॥

मूरख कू समझाइये, औगण करि बूझे रे ।
आपा की आंटी पडी, सति साच न सूझे रे ॥ ३ ॥

परम सनेही रामजी, साचा सुखदाई रे ।
जन हरिदास गोविन्द भजो भरमौ मति भाई रे ॥ ४ ॥

### ॥ पद २ ॥ ( रूपक )

अपणां हीरा जनमन हारि, बार बार तो मूं कहू ।
तूं योही ज्ञान विचारि ॥ टेर ॥

---

१ पृथ्वी २ परछाई

लागि लागि सोवै कहा, हरि सुमिरण सुख लाहि ।
अन्ति आस बूझै नहीं, तूं कालरि बीजन माहि ॥१॥
अपस माथै भैनजे, जम की मिटै न त्रास ।
तू क्यूं रोवै आपकूं, म न आपनैं पास ॥२॥
जो जाग्या तो सोय मां, जो सूता तो जागि ।
जन्म अमोलिक जात है, तू धोषा मारेमि लागि ॥३॥
सुर नर अर पावै नहीं, पंडित लहै न मान ।
जहां आपो तहां आंतरो, मोहि अमरांबर की आन ॥४॥
राम भजन सुख परहरे, माया तहां मन जाय ।
जा घटि सुबुधि न संचरै, मोह रहा लपटाय ॥५॥
तात मात बंधू सखा, सुत बनिता सुख लोय ।
सब को स्वारथ का सगा, घट छूटे सगा न कोय ॥६॥
परम सनेही राम है, और सगा दिन च्यारि ।
जन हरिदास दुआ तज्या तजि जीवा राम समारि ॥७॥

॥ पद १ ॥ ( राग कहरवा )

पक्षी को तन बैली लो, काली बसि बसकी लो ॥ टेर ॥
चंद सूर दोइ समि करि राख्या, मास सहज संगि लायाली ।
गगन मूल जहां रस उलटै, अलिन को रस खायाली ॥१॥

निज निरसिंघ अगहि अभि अन्तरि, बरण विवर्जित वाणीलो ।
इला पिंगुला सुख मनि मेला, ता सुखि वेलि समांणीलो ॥२॥
तरवर अगम अणी तहां लागि, वेलि किया बिस्तारा लो ।
काटी वेलि अमर फल लागा, विण काटि फल खारालो ॥३॥
बास विकट कोई पान न खंडै, मृग वसै ता मांही लो ।
पायक पांच पहरवा राख्या, उदै अस्त दोय नांही लो ॥४॥
गगन मंडलमे वेलि बिलूधी, मूल मतामे आया लो ।
जन हरीदास आतम के अन्तरी सतगुरु साच बताया लो ॥५॥

॥ पद ४ ॥ ( ताल धमाल )

जीवड़ा जन्म सिरायो रे, सोवत सोवत सोय रह्यो ।
अजहूं नींद न धायो रे ॥ टेर ॥
जन्म अमोलिक जात है, विणीया रस मांही रे ।
काल गह्यौ ग्रासै जुरा, जागै क्यूं नाही रे ॥१॥
जाकूं तैं तन मन दीया, अपणां करि लीया रे ।
इन में तेरा को नहीं, भलै विष पीया रे ॥२॥
सूतां सखस जात है, जांणै सो जागै रे ।
जन हरिदास आछै मतै, हरि सुमिरण लागै रे ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( राग दीपचन्दी ) ( मंगल में भी गावो )

रैणि गई दिन आप सखीमैं, क्यूं करूं, हरिबिन कछुन सुहाय ।
पिछो है मैं हर्क ॥ टेर ॥
जल बिन मीन कहो क्यूं जीवै, जाकी जीवनि पांणी ।
ऐसे हम हरि बिन दुख पावत तलफत रैनि[1] बिहांणी ॥१॥
पीव पीव करत बिरह तन जारयो, चात्रिग घनकूं टेरे ।
यूं मम प्राण दुखत हरि तुमबिन, मनसा मार गहेरे ॥ २ ॥
मनके भवन गवन हरि कीजे, बिलम कहा हरि आवो ।
रमता राम सकल घिप व्यापी, हा हरि दरस दिखावो ॥३॥
या बड बिथा राम मन जांने, बिरह बसे तन मांही ।
जन हरिदास हरि महलि पधारो, कै अब जीवनि नांही ॥४॥

॥ पद ६ ॥ ( रागदीपचन्दी )

सेज सनेही आप आवो देव नरहरि, बिकल भई मन मांही।
क्यूं हो पीव पर हरि ॥ टेर ॥
सुरति संवाहि माथ निति हेरूं, चित चेतन चौकी चढी ।
तलफि तलफि तन जाय, सुरकी मै पढी ॥१॥
पहु बिसवास भास आस निस अन्तरि, अबला चौबारे खरी । ॥
मस्तग ले ले हाथ, पथ हेरू हरी ॥२॥

---

1 रैणि

जांणि प्रवीण परम सुख दाता, विरहनि विरहा परजरी ।
जन हरिदास बलि जाय, विलम्ब कहा करी ॥३॥

॥ पद ७ ॥ ( दीपचन्दी )

बालिम विरह विवोगी रे, भुरकी मो परि डारि गयो ।
जग मंडल जोगी रे ॥ टेर ॥
सारा सुख संसार का, मोहि खारा लागे रे ।
तूं मेरा जीवनि जीवकी, रहौ नैंना आगे रे ॥ १ ॥
परम सनेही प्रीतमा, प्रानन ते प्यारा रे ।
महल पधारो माधवे, सारां सिर सारा रे ॥ २ ॥
विरहणी के रस एक तूं, दूजा सब ज्वाला रे ।
जन हरिदास यूं बिनवे, गृह आवो बाला रे ॥ ३ ॥

॥ पद ८ ॥ ( दीपचन्दी )

रे मैं राम रस पीया रे, छाक चढी सुधि बीसरी ।
सिर सौदा कीया रे ॥ टेर ॥
अगम पियाला प्रेमका, सहजि पिया धरि ध्यान ।
इतउत चितवन विटगई, सब बिछरन मरन समान ॥१॥
जिन पीयासो जानि है, और न जानें कोय ।
रसिया रसमें मिलिरह्या, अब टलै न दूजा होय ॥२॥

कहा कहूं ऐसी मरै, मन पुष्पा हरीवै साय।
जन हरिदास मतिवालमें, मेरा मन हरि लीया चुराय ॥२॥

॥ पद ६ ॥ ( दीपचन्दी )

अरे मैं पी मतिवाला रे, सुरति समांनी साधमें।
पीया अगम पियाला रे ॥ टेर ॥
गोली चाढी ज्ञान की, ममता कस दीया रे।
काम क्रोध बालणि कर्‌या, गम हीं गुड़ कीया रे ॥१॥
गगन मंडल माठी चिणी, सरवै बहो धारा रे।
पोष सखी सन्मुख सदा, गुर पावणहारा रे ॥२॥
राम रसायण रीत है, सार्‌या कू भावे रे।
जो पीवै सोई छकै, छकि मांहि समावे रे ॥३॥
प्रेम पीया जब जांणि है, तनमें मन भावे रे।
जन हरिदास भालै मतै, कछु मान न भावे रे ॥४॥

॥ पद १० ॥ ( दीपचन्दी )

गोविन्दो ज्यूं भांवै त्यूं गाय, जन्म ममोलिक जात है।
तूं हरि सूं हत लगाय ॥ टेर ॥
भजन निरंजन उरि बसै, रांम नाम निज भेद।
राम बिसारयां होत है, सही जन्म का छेद ॥१॥

रवि शशि मिलै न मुक्तिफल, पति सूं प्रीति न होय ।
कर्म काट मोरचा जब्या, तूं नांव नीर लै धोय ॥२॥
सात समन्द नौ से नदी, चनी अठारै भार ।
गिर रवि शशि तारा मंडल, तहां परै दीदार ॥३॥
एक सेज का सोवणा, एक महल मे वास ।
जन हरिदास हरिसूं मिल्या, गहि प्रेम प्रीति प्रकास ॥४॥

॥ पद ११ ॥ ( दीपचन्दी )

निरञ्जन नाथ लागा हो, भरम अन्धारा मिटि गया ।
सूता था जागा हो ॥ टेर ॥
अगम तहा गमको नहीं, मै गम करि लीया हो ।
प्रीति पियाला प्रेम का, तुम दीया पीया हो ॥१॥
जाक गांव ठांव कुल को नहीं, कैसे करि पाउ हो ।
गुर डोरी दीन्ही साच की, तिस लागा आऊं हो ॥२॥
भगति निवाजण मै सुणयो, तुम कारिज सारचा हो ।
नामां जन रैदास मां, ले पारि उतारचा हो ॥३॥
अगम पियाला प्रेम का, तुम दीया पीया हो ।
गोरखनाथ कबीरसा, अपणा करि लीया हो ॥४॥
पीपा सोभा सेन सा, हरि लोक बसाया हो ।
जन हरिदास हरि मौजिसुणि, चरणा चलि आया हो ॥५॥

(नोट) मारू राग के ११ वें पद से प्रगट होता है कि गोरखनाथ, कबीर, पीपाजी आदि आदि सिद्ध पुरुष स्वामि जी से बहुत पहले हो कर हरिलोकनिवासी हुवे हैं ।

## ॥ राग केदारो ॥

॥ पद १ ॥ ( कहरवा )

सनेही(भोंदू)भाखस कीयोरे भभाव,हरि हरि सुमरि समो हरिवेरो– सुं हरिका गुण गाय ॥ टेर ॥
माल मुलक भपणों करि बैठा, तरा नांही कोय ।
यहां सुख भलप भनन्त दुखमामे, भंति चलेगा रोय ॥१॥
काहू कूं सिरभार सहत है, सकै तो बोझ उतारि ।
जन हरिदास भजि राम सनेही, तूं भपण्यां काज संवारि ॥२॥

॥ पद २ ॥ ( रूपक ताल )

मनरे गोविन्दा गुण येद भगति भवरिपुमरममैजन ।
करन सब सनेह ॥ टेर ॥
स्वयं भद्र सनाथ नृपस पखि बन्ध्या जन के माथ ।
भकल तरवर सकल व्यापी, भगह गह्यौ नहिं जाय ॥१॥
परम ज्योति परकास पूरण, भगम वार न पार ।
जन हरिदास सो सुख रासि नैनों, निरखि वार वार ॥२॥

॥ पद ३ ॥ ( रूपक )

मनरे गोविन्दा गुण गाय, भबकै भव तब ऊठि चलगो ।
कहत हैं समझाय ॥ टेर ॥

अटकि अरि हरि ध्यान धरि मन, सुरति हरि सूँ लाय ।
भजसि भगवन्त भरम भंजन संत करन सहाय ॥१॥
तरल तृष्णा त्रिविधि रस बसि, गलित गत तहां चंद ।
जाय जोवन जुरा ग्रासे, जागिरे मति मन्द ॥२॥
मोह मन रिपु ग्रास में ते, गहर गुण जल देह ।
जन हरीदास आजि स काल्हि नांही, हरि भजन करि लेह ॥३॥

॥ पद ४ ॥ ( कहरवा )

जागोरे अब नींद न कीजे, निसदिन आयु घटे तन छीजे॥टेर॥
बहूत दिनो ते यहु छूक पाया, सो तें कौड़ी सटे गमाया ।
हीरा था पणि हाथि न आगा ॥ १ ॥
काम क्रोध माया मद माता, निशदिन देखे काल न खाता ।
राम भजौ हरि समाथ दाता ॥ २ ॥
ज्ञान प्रकाश निजरि निज एही, दुरि है तन न रहै या देही ।
जन हरिदास भजि राम सनेही ॥ ३ ॥

## ॥ राग बिहंगड़ौ ॥

॥ पद १ ॥ ( कवाली )

रातड़ियो[१] जात सिरांणी, पीव बिन प्रान तरसि तलफत है ।
ज्यूँ मछली बिन पांणी ॥ टेर ॥

---

१ रात ( किसी देश भाषा का पद है )

अंतरि चोट विरह की लागी, नख सख चोट समांणी ।
विकल्प भय हरि मजहुं न भागे, हरि मांगत है मैं जांणी ॥१॥
जोग प्रवीण परम सुख दाता, निरगुण नाह पिछांणी ।
प्रीति विचारि मिल्यो परमानंद, भवजल नहीं विलांणी ॥२॥
कहा कहिये कछु कहत न आवै, उनमनि रहत सुमांणी ।
जन हरिदास हरि सूं मन मांन्या, आदि अन्ति सुख खांणी॥३॥

॥ पद ९ ॥ ( कहरवा )

हसि कारणैं बोलिए पीव सूं परचो नाहीं, अन्तर खालिए ॥टेर॥
रेणि सवाई बहि गई, तन मन बैठी खोय ।
हूं थके दुखिया दुरदरशनी, सकवि सुहागन होय ॥१॥
पीव के पतिवरता घणी, तहा रहे मन लाय ।
हूं तरसे बोल नहीं, यो दुख कहां समाय ॥२॥
भनखा को बल को नहीं प्रीतम रहै रिसाय ।
सदा संगाती रामया मोहि प्रेम पियाला पाय ॥३
अन्तर जामी तुम बिनां दूजा कछु न सुहाय ।
जन हरिदास हरि बिन मिल्यां, जन्म अमोलिक जाय ॥४॥

## ॥ राग धनाश्री ॥

॥ पद १ ॥ ( ताल अद्दा )

राम सनेहड़ा हरि बिन दूजा अलप सनेह, दूजा देखत जांहिला।
ज्यूँ धूंवर का मेह ॥ टेर ॥

तन धन जोबन नां रहे, दुबध्या दरसन होय।
चौरासी चौपड़ी मंडे, तामे चोट म बंचे कोय ॥१॥

पूत कलित परबार में, सकल रहे उलझाय।
स्वारथ का सबको सगा, अन्ति अकेला जाय ॥२॥

समझि पड़ी सतगुरु मिल्या, पैंडा दिया बताय।
जन हरिदास आनन्द भया, ता सुखमें रह्या समाय ॥३॥

॥ पद २ ॥ ( तीताला )

प्रीतम प्रांणीया राम सनेही जोय, राम सनेही बिन भज्या
तूं कबहूं न तृपति होय ॥ टेर ॥

जिन जलतें पैदा किया, सगली सोज बनाय।
सो सदा संगाती गोबिन्दो, तूँ तासूँ ताली लाय ॥१॥

ज्यूं बादल मिलि बीछड़, आप आप कूं जांही।
दिन दसका मेला भया, निहचे रहणां नांही ॥२॥

बहोड़ि बहोड़ि लाभै नहीं, मनिख जन्म औतार।
अबके नर हरि ना भज्यो, तौ तोकूं वार न पार ॥३॥
परि मति कूड आपड़ा, सलिल मोह की धार।
जन हरिदास हरि गाय ले, मजि केवल सिरजनहार॥४॥

॥ पद १ ॥ (कहरवा)

अवधू अगम पियाला पीजे, हरि रस अमर अरे हा जीजे।
सिरके सौदा कीजे ॥ टेर ॥
सत रस सम रस पांच रहत रस, ता रस सूं मन लागा।
अमृत झरे औंधा रस पीवे, मरम गया भै भागा। ॥१॥
मलगहि पवन सहस दस संगी, दस द्वयोद सईस सो सारा।
ऐसे छोरि एक रस लागा, गुर गमि ज्ञान विचारा ॥२॥
विकसत कंवल परम तत दरसन, परसि परम तत पाया।
जन हरिदास मधुकर मतिवाला, बंक नालि रस खाया ॥३॥

॥ पद ४ ॥ (तीतला)

या देस सनेह रा जहां उदे अस्त अघ नांही, रूप अरूप भार सब मांही।
मिन्ह बसै ता मांही ॥ टेर ॥
स्याम न सेत पीत रंग रहता, अगमवार नहिं पारा।
जहां तहां सुणे जहां तहां देखै, रह सकल ते न्यारा ॥१॥

मुक्ति महलि जाय मन बैठा, गुर किरपा तें लहिए ।
उन मनि रहै तिको मनि खेले, वातो वादिन वहिए ॥२॥
पछिम देस हाट नहिं पाटणि, सौदा तहां हमारा ।
जन हरिदास बिणज सिर साटे, बिणजि बिणजि मन प्यारा ॥३॥

॥ पद ५ ॥ ( तीताला )

तब मन निरमलो है, जब लागो हरिनांय ।
भरमें तो लागे नहीं, लागे तो भरमें कांय ॥ टेर ॥
राम भजे विषिया तजे, समझि पिछांणो साच ।
साच सनेही गोविन्दो, और सकल सुख काच ॥१॥
मोह द्रोह ममता तजे, भजे निरंजन देव ।
सकल वियापी संगि वसे, आनन्द अलख अभेव ॥२॥
अरक रूप आसा मुखी, दीसे सब संसार ।
जन हरिदास के राम है, जीवनि जगत अधार ॥३॥

पद ६ ॥ ( कहरवा तीताला )

संतों सतगुर पर उपकारी, [1]भौजल वह्या जात जब देख्या ।
तब गुर बांह पसारी ॥ टेर ॥

---

1 ससार रूप जल

मरा करम कांसे होय लागा, तब गुरु औषधि लाई ।
थोड़ा रोगे बहोत दारू दे, वेदनि दूरि गमाई ॥१॥
आत्म कमल सिंघासण करिहूं, रतन जड़ाऊं मांही ।
तन मन वारि वारि में डारूं, तोमी[१] उरण नांही ॥२॥
उपजी प्रीति परम सुख पाया, तब गुरु मिल्या हमारा ।
जन हरीदास ले परचा राख्या, मठ्या भरम अंधारा ॥३॥

॥ पद ७ ॥ ( तीताला )

वीर बटाऊवा हरिजी सूं कहियो रे जाय, रातदिहूमर भईमोहि तारा गिणत विहाय ॥ टेर ॥
साम्या मास अकेलियां, सेज न सही जाय ।
पीव नैड़ो परसे नहीं, मोहि विरह विलम्ब्यो आय ॥१॥
रैणि अंधारी में दुखि घरस दुरोयां होय ।
तलफि तलफि तनमातई मरां नाथ मिला न कोय ॥२॥
विरह मन्दा में धासहै, तासा वेली जीव ।
जन हरिदास हरि आइये, मेरे परम सनेही पीव ॥३॥

॥ पद ८ ॥ ( तीतम्बा )

राम मिलायल हां होर मर परम सनेही राय ।
बहोलक दिन बिछड्या भया, अब मो पै रह्यो न जाय ॥मेरा परम सनेही प्रियतमा, सेज अमोंघी आय ।
तुम कहिम्व हो सोहनों, मुझ सुफ यसलहहा थाव ॥१॥

१ वेरण ( पैन्य )

अंतरि जामी आंतरो, नैडा बसौ हकदूरी ।
विरहनी पीव पावै नहीं, मेरा नैन रह्या जलपूरी ॥२॥
हरदम यह तन जात है, हम बल कछू न बसाय ।
महलि पधारो माधवे, जन हरिदास बलि जाय ॥३॥

॥ पद ९ ॥ ( तीताला )

सुमरि सनेही आंपणा, जाकि आदि अंत मधि नांही ।
सतगुरु साच बताइया, मेरा प्रांण बसै ता मांही ॥ टेर ॥
पांडव कृष्ण समीप था, गल्या हिमालै जाय ।
लोहा कूं पारस मिले, तो क्यूं काटी खाय ॥१॥
कान्हां क्यूं गोपी हरे, यहु अचिरज मन मांही ।
अनना भगति गोपी नहीं, कै वो करता नांही ॥२॥
पलक फुरंतां जग फुनां, हरि जुग थापै पल मांही ।
छल बल करि हरि क्यूं लडै, समझि पडै पछु नांही ॥३॥
हिरणाकुश रावण हत्या, जरा सिंध सिसु पाल ।
जन हरिदास यूं जाणिए, यौ कालहि ग्रासै काल ॥४॥

॥ पद १० ॥ ( तीताला )

सतगुरु दीया भेद बताय, रहै राम दूजा सब जाय ॥ टेर ॥
धरी देह तैता आकार, सो क्यूं कहिए सिरजिनहार ।
जाकै रागद्वेष कछु व्यापै नहीं, सोई रमता रांम सकल घटमांही ॥१॥

भक्ति हेतु कोई भक्त पठाया, आप अगाध यहां नहिं आया ।
पहरया भेख मिटी भक्तपूरी, नैड़ा राम बतावै दूरी ॥२॥
दस औतार कहो क्यूं आया, हरि अवतार अनन्त करिआया ।
अक्ष पक्ष बीस बिना अवतारा, चन्द्र ससि ज्यूं देखो ततसारा ॥३॥
हरि अपार पार को नांही, साधूजन खेलै ता मांही ।
जन हरिदास भजि केवलराम, निरमल नांव तहां बिसराम ॥४॥

॥ पद ११ ॥ ( सोरठा )

गोविन्द भजि मन मांहिला, अब जिन पाछै हारि ।
हरि सुमिरन सबहीं सिरै हरि भजि निज मन उतरै पारि ॥टेर॥
सत गुरु माथै कर धरया, सोसत सौपा अगाध ।
सोवण की बिरियां नहीं, यहि हटवाड़े माध ॥१॥
हटवाड़े विणजी भली, खैरे खाई साह[1] ।
खोटा बुधि कांनें करी, तो नैं दोस न दे को साह ॥२
साथ सकल ले साथवो, गगन मंडल मठ छाय ।
छकाई लागै नहीं, आनन्द में दिन जाय ॥३॥
मगन नदी अक्ष मत पैंवै, पीवत क्षेम सुहाय ।
बूढे खोरे बापड़ा निकस्यो बहोड़ि न जाय ॥४॥
सुणा संगी सोमूं कहूं, म भा भपरि न पाक्ष ।
मन का मूल उपाडि लै, पारै अंतरि ऊंडा साल ॥५॥

[1] लाभ

जन हरिदास हरि भायले, अंतरि अलख पिछाणा ।
मन मधकर मुकर्यो फिरै, उलटि अपूठो आणा ॥६॥

॥ पद २१ ॥ ( तीताला )

प्रीतम प्राणीयां तूं देवलि बैठो आय, निज देवल खोज्यो नहीं ।
तौ जासी जनम ठगाय ॥ टेर ॥

[1]देवल एक खंभ[2]दोय जाकै, पांच भांति[3]रंग दीया ।
दस दरवार[4]बहोतरि छाजा, गली गांव बहो कीया ॥१॥
बहोत जतन करि आणिक बांणयां, ऊपरि कलश[5]चढाया ॥
ए दोय रतन उजागर दीसै, बहोत भांति सू लाया ॥२॥
तामैं सागर सपत अष्टगिर परवत, नदी निवासे लाई ।
वसुधा भार अठार गवन पुनि, तीनि सबल ठकुराई ॥३॥
दोय परधांन सदा संगि खेलै, तिनगति लखी न जाही ।
सूनी एक मोनि गही बैठा, सो तैं खोज्या नांही ॥४॥
तामें बरत चौबीसवार तिथि कंवला, अगमनि ममता मांही ।
गाजै गगन गहर धुनि ऊठै, बेद धुनि (होय) ता मांही ॥५॥
तारामण्डल भवन भवन पति, नऊं नाथ सूं गिलिया ।
जाणी एक जुगति सब जाणी, सहजि खोजि सुख लिया ॥६॥

---

१ शरीर २ चरण ३ पांच भौतिक रंग ४ देह में ७२ नाडियें ५ मस्तक

सुरतीस बसे ता मांही तीरथ पुरी सवाया ।
शेष महेस विष्णु ब्रह्मादिक रवि शशि लगि लाया ॥७॥
इन्द्र कुबेर दामणा झिलमिलि गगन गाजि घन आया ।
जन हरिदास एक अविगत देख्या सोई देवल[1] मूरति लाया ॥८॥

॥ पद १२ ॥ ( तीताला )

भारी आत्माएं रामसनेही ओंधी, आदि अंत था हरि सबसोई ।
ते सारे पाखिक बोली ॥ टेर ॥
आदि अगम कुल नांही जाके, सो निकुल निरधार ।
ऐसो अपथ पाव नहिं आवे, नहीं वार नहिं पार ॥
पार न पावै निज चिन्तामणि, पारपरै निज सार ।
जलधर पवन गगन अरु ज्वाला, वाके एक सबद विस्तार ॥१॥
सात समन्द धर[2] भार अठारा, सबह निकु हरि पावी ।
सुनि सनेही सहजैं करिस्या उलटी नदी चलावै ॥
उलटी नदी अगम गम मांही, कोई विरला जन जानें ।
मनकूं पकड़ि सहज घरि लेवै, पांचूं उलटा तानें ॥२॥
निज मन निज भरणां का पेरा, कोऊ न जानें भेव ।
उलटि सुरति अगम रस पीवै, करी अकल की सेव ॥

---

१ शिव को गंभीर रूप देवल में दिखाया २ अठारह भार वनस्पति ।

सेवा सकल अकल विधि जांणो, बपघट अरणयां न जाई ।
निराकार निरंजन ऐसे, व्यापि रह्या सब मांही ॥३॥
शिव सनकादिक रहे निरन्तरि, शेष सहंसमुख गावे ।
गोरख हणू भरथरी सुखदेव, उलटी सुरति चलावे ॥
सुरति चलावे पार न पावे, घाघत मांहि समाया ।
व्यापक ब्रह्म ऐसे हम जान्यो, गहणी मांहि न आया ॥४॥
भजि गोपाल अकल अविनाशी, हरि निरमल निज सारा ।
भौसागर तिरवे कूँ भेरा, खेय उतारे पारा ॥
पारि उतारे नरकि निवारे, सुख पावे निज दास ।
ज्यूँ हरि गया त्यूँ सुख पाया, सुख सागर में वास ॥५॥
दास कबीर नामदे छीपो, उलटी ताली लावे ।
अगम अगम करि तनमन खोजे, तन खोज्यां वित पावे ॥
ज्यों तन खोज्या ते घरि आया, उलटि अकल सूं लागा ।
जन हरिदास अविनाशी भजतां, काल भरम भै भागा ॥६॥

॥ पद १३ ॥ ( तीताला )

तुम आवो हो राम तुम आवो, अहो मेरे अन्तरजामी देव ॥टेर॥
साथणी सखी सहेलड़ी, एक मनि एकैं तार ।
पथ निहारे पीव को, मिलिए सिरजनहार ॥१॥

विरहणि विरह बियोगणी, दरसन कारणि पीव ।
विप्स मई विलम्बे कहा, लाला बेगी जीव ।।२।।
अगम गमम गमको, नहीं चितवत रेखी विराम ।
मुख दिखलावो गोबिन्दा, जन हरीदास बलि जाम ।।३।।

।। पद १४ ।। ( तीताला )

वस्त बिछोयी रे जीवड़ा हरि लगो, हरि सुमरें क्यूं नांही ।।टेर।।
नरपति भोपति हरि वाहा, दास भया फकराज ।
अवधि अपीती छंगि को नहीं उलट मकेला जाय ।।१।।
हैवस गैवस छगि चले, फरस बांधे शादी ।।
माल मुलक क्यों का त्यूं रहे, धसि चल कर फाड़ी ।।२।।
सिर छत्र सिंघासण बैसणां ऊंचा ऊंचा महल अवास ।
या सुखि हरि सुखि बीसरया, तातैं तेरा जमपुरि वास ।।३।।
परम सनेही प्रीतम आपणां, जीवन जगत अधार ।
जन हरिदास हरि गाय ले, हरि सकल सुखां सिरसार ।।४।।

।। पद १५ ।। ( तीताला )

रातड़ी सवाई हो रामजी वहि गई पल पल छीजे गात ।
करयां सुमिर करुणामई, महलि पधारो हो नाथ ।।टेर।।

१ तीतर्फ १ ताल

सब मतिवाला हो रामजी सब भक्या, नींदड़ी न आवे हो मोही।
मेरी वेदनि रामजी जांणि है, कै जिस वेदनि होई ॥१॥
यो तन रामजी यूँ ही जात है, हम बल कछु न बसाय।
परम सनेही रामजी तुम मिलो हरि सकल भवन पति राय२
प्यांणां चोकी रामजी चित धरों, आत्म सेज संवारि।
नैंन लुभाना रामजी प्रीति सूं, दरसो देव मुरारि ॥३॥
जन हरिदास रामजी यूँ बिनवे, मेरा नैनन खडे हो[1]धार।
दरस दिखावे मो रामजी आंपणां, हरि समथ सिरजनहार ॥४॥

## ॥ अथ आरती ॥

( समय देख कर हरेक राग में गाबो )

॥ पद १ ॥ ( कहरवा )

आरती जग जीवन देवा, आतम अगर निरन्तर सेवा ॥टेर॥
चित चोकी हरिचरणां चित धरिहूं, आतम कवल सिघासण करिहूं१
दीपक ज्ञान सबद उजियाला, पांचू पहोप सुरति की माला॥२॥
प्रीति परसिल्यों चंदन लाऊं, प्रेम कलम ले कलस बंधाऊ ॥३॥
सूंघो साच ज्ञान गहि जारी, वहो विधि [2]चरचूं देव मुरारि ॥४

१ प्रेम धारा २ चन्दन चढ़ाऊँ

निरमंस नेह चंवर करि मनके, गगन मंडलमें कामरि ठमके ॥५॥
जन हरिदास मया मनमञ्जन, आतम आरती करै निरञ्जन ॥६॥

॥ पद २ ( कहरवा ) ॥

अविगत आरति भगति तेरी, राम सनेही जीवनि मेरी ॥टेर॥
पूनी जन्म जूरा नहिं वाके, बरनन बप रूप नहिं वाके ॥१॥
पाकुल मतीत सकल घट मांही, अपरंपार ममति कछु नांही ॥२॥
असम अमेम अरंभी रामा, पूरण ब्रह्म परम सुख धामा ॥३॥
आगम अगाध पार नहिं पारा, सो पति मेरे प्राण अधारा ॥४॥
एकता राम सुमरि मन मांही, [1]कलविष सहमि सबै मिटि जांही ॥५॥
आगम्य ज्योति सकल परकासा, प्रेमप्रीति गावै जन हरिदासा ॥६॥

॥ पद ३ ॥ ( तीताला ) ( धनासरी )

तेरी आरती हो मगल निरञ्जन राई, हो नाथ निरञ्जन राव ।
शिव विरंचि पार नहिं पावे, सेष सहसमुखि गाव ॥ टेर ॥
आरती अम्मर तें रच्या पंदहर अमि कीन ।
पावन पवन अग्न हरि कीया आब चौरासी जीव ॥१॥
आप निरञ्जन [2]रूप धरै भगति हेति हरि आय ।
अनत रूप अवगति अविनाशी, तुम गति लखी न जाय ॥२॥

१ पाप २ अवतार

अनत भक्त धरि[1] ऊथपै, करण मतै सो होय।
तुम बलवन्त जीव सब निरबल, पार न पावे कोय ॥३॥
सुरनर सब जै जै करे, अगम कहत है वेद।
निराकार धणी नांमी, तुमपति कोई न पावे भेद ॥४॥
अधम उधारण हम सुणो, अब कै है भल डाव।
जन हरिदास अभय गुरु स्वामी, दीजै भक्ति[2]पसाव ॥५॥

॥ राग धनाश्री सम्पूर्ण ॥

॥ अथ कड़खा छन्द राग सोरठ ॥

॥ पद १ ॥ (तीताला)

वा सुर आयरे निस आय पहुंती, छिटरो रह्यो निरदावे।
हरिभजि सेण वेण सुणि चेतत, सखे यहु छक आवे ॥टेर॥
तजि तिणरूप खिजै कांय[3]खड़ू चर, पर छवि विषे समाई।
घट छूटां दुःख सहसि फूटा, राम सुमरि सुखदाई ॥१॥
रे रिणमोड़ फिरै काय रूठो, रूठों किम रंगरहमी।
अब कादि कर जब आये काला, चले त ईह दुःख दहसी ॥२॥

१ उठा देता है २ बक्सीस ३ घास चरने वाला।

निरमंस नेह पंजर करि मनके, गगन मंडलमें झालरि ठमके ॥५॥
जन हरिदास अया-अभभञ्जन, आतम आरती करै निरञ्जन ॥६॥

॥ पद २ ( कहरवा ) ॥

अविगत आरति अगति तेरी, राम सनेही जीवनि मेरी ॥टेर॥
जुनी जन्म जुरा नहिं जाके, बरनन बप रूप नहिं ताके ॥१॥
अकल अतीत सकल घट मांही, अपरंपार अगनि कछु नांही ॥२॥
असंग अभंग अरंगी रामा पुरष अलख परम सुख धामा ॥३॥
अगम अगाध पार नहिं पारा, सो पति मेरे प्राण अधारा ॥४॥
रमता राम सुमरि मन मांही, [1]ज्यूंबिप सहजि सबै मिटि जांही ॥५॥
जगमग ज्योति सकल परकासा, प्रेमप्रीति गावै जन हरिदासा ॥६॥

॥ पद ३ ॥ (तीताला) (धनासरी)

तेरी आरती हो अलख निरञ्जन राई, हो नाथ निरञ्जन राय ।
शिव बिरञ्चि पार नहिं पावे, सेष सहसमुखि गाय ॥ टेर ॥
धरती अम्बर तैं रच्या चंदसूर मधि कीव ।
पावन पवन अम्ब हरि कीया, लख चौरासी जीव ॥१॥
आप निरञ्जन [2]रूप धरे भगति हेति हरि आप ।
अनत रूप अगति अबिनासी, तुम गति लखी न जाय ॥२॥

---

१ जग २ अवतार

अनत भक्त धारि[1] ऊथपै, करण मतै सो होय ।
तुम बलवन्त जीव सब निरबल, पार न पावे कोय ॥३॥
सुरनर सब जै जै करे, अगम कहत है वेद ।
निराकार धणी नांमी, तुमगति कोई न पावे भेद ॥४॥
अधम उधारण हम सुणो, अब कै है भल डाव ।
जन हरिदास जगत गुरु स्वामी, दीजै भक्ति[2] पसाव ॥५॥

॥ राग धनाश्री सम्पूर्ण ॥

॥ अथ कड़खा छन्द राग सोरठ ॥

॥ पद १ ॥ (तीताला)

वा सुर आयेरे निस आय पहुंती, खिजरो रहो निरदावे ।
हरिभजि सेवग बेग सुणि चिंकत, क्यों यहु छक आवे ॥टेर॥
तजि तिणरूप खिजै कांय[3] खड़ चर, पर हरि विषे सगाई ।
घट छूटां दुःख सहसि फूटा, राम सुमरि सुखदाई ॥१॥
रे रिणमोड़ फिरै काय रूठो, रूठों किम रंगरहमी ।
अब काहि कर जब आये काला, चले न देह दुःख दहसी ॥२॥

---

१ उठा देता है २ बख्शीस ३ घास चरने वाला ।

भाई साखि सरणिमो खोटा, क्या कथा कोथ खिडावे ।
पाँच पचीस प्राण मन मनसा देले कोबान घरि आवे ॥३॥
सील सन्तोष सति दया सबूरी, पच्छ अक्सर यम कीजै ।
जन हरिदास सति मनसावाचा, रसना राम रटीजै ॥४॥

॥ इति सोरठ संपूर्ण ॥

॥ राग सींधू ॥

॥ पद १ ॥ ( झपताल )

राम महराज मनहि साचे मते, सुमरि हरि निशदिन नामपाया ।
प्रासि गुण प्राह मभि राम मरणां पड़ी ॥
सोई मो प्रासि है काम काया ॥ टेर ॥
राम गोपाल कृपाल करया मई मकल अरूप धरि ध्यान धारूं ।
हंठ मैरिपु हरण निपट निर्मै करण, राम मार्गों नहि छाडि हारूं ॥१॥
गहर गंभीर नि तृष्णा नदी सखि बहै, अनन्त मायें बस गिनती नहीं ।
साध आकाश में भटकि उपटा पवना,
प्राण मन लागि आकाश मांही ॥२॥

समद संसार जल सुजल तिरवो कठिन ।
जन हरिदास नितनेम हरि भजन कीज,
परम उदार करतार समरथ धणी।
नाथजी हाथगहि राखि लीजै ॥३॥

॥ पद २ ॥ ( झपताल )

काम जल हेत सा सँप सुधहि गया ।
कोई वेद मिलियो नहि सधहि साचो ॥
आंखि फूटि अघटि और दिस ऊघडी ।
अरथि आंजी नहि आंन रातो ॥ टेर ॥
त्रिविधि तिणरूप बडमेर हरि निचि मराड्यो
खंभ दोय सकलां जड्यां जोवै ॥
परम निधि भेद मधि माघ लाधो नहीं ।
मूल पंखू आपरो आप खोवे ॥१॥
रोग में रोग अघ रोग दारण दहे ।
कुबुधि कांटै कल्यो सुबुधि नांही ॥
काच सूं परसि निज साच न्यारो रह्यो ।
भेद तजि भ्रम जल घस्यो धाई ॥२॥
रोग तोडं तिको एकसूं एक है ।
नांव तो निज जड़ी निकटि जाणो ॥

जन हरिदास मधि राम मनि मेल राखै नहीं।
सुरति संसार सूं उलटि चाखे ॥३॥

॥ पद १ ॥ ( जयताल )

गुरु पोर बिन नीर की परख जाणै नहीं।
खीर निज निज मंगत परसि भीजै॥
गगन चढि सींचवो पछिम दिस बावड़ी।
उलटि सींच निजा साध पीवै॥ टेर॥
सुरति कीहोरि सन्धि अगम घर सखिवो।
अगम धरि खेलि निज कंवल फूलै॥
सुनि मैं साध निधि कंवल उलटा सुलटि।
गहर मधि स्वामनी गोपी झूलै ॥१॥
थारक धरि तरक तजि समद मधि सुरकरै।
द्वादशी छाड़ि दिस एक ध्यावै॥
पैसि पाताल म अगम जल भांखिया।
सहज धरि आतमा बेलि पावै ॥२॥
आभमें भसत्र मधि उलटि खेलै नहीं।
प्रीति प्रमाणं निज प्रेम चाखे।
जन हरिदास निजरूप निर्गाध निर्मल कथा
पौधा निज मरथान सुरति राखे ॥३॥

॥ पद ४ ॥

निज्ञ भक्ति सदा निजरूप निरखत रहै ।
अकल अलगो नहीं सकल मांही ।
सकल सुखसागर अगम अन्तरि अगइ ।
ऊगि वरतै तिको अगम नांही ॥ टेर ॥
सति सदा आप आकार सी मति नांही,
परम निज सार सो सकल सांई ।
और पंखांति को ठौड़ पावे नहीं ।
अनल पखी रहै उरवार मांही ॥१॥
अकल तरवर तिको सकल जग ऊपरे,
डाल विन मूल विन सदा छाया ।
आय जावे तिको समझि मन सति नहीं,
रूप धारे तिती सकल माया ॥ २ ॥
सकल व्यापी करसि परसि पति आंपणों,
गगन अस्थान मन उलटि लाया ।
जन हरिदास प्रकाश पांचू विसण अजल्या,
घऱ्या में अघर घर निकटि पाया ॥ ३ ॥

॥ पद ५ ॥ (झपताल)

सुमरि मन राम सति रूप समय पखी,
भजसि भगवन्त भव सिंध भारी ।
बांधी जगदीस सब ईस अवसर युद्द,
विरधि पहो फंद कार्टे मुरारी ॥ टेर ॥
साहि गुर ज्ञान जीव आंधि मैंदी छुरा,
सांच लो जो जोर करि कांहि सोवे।
इसो हीरा जन्म बले बहोड़ि सामसि नहीं,
काच ले लाम क्यूं कांहि खोवे ॥ १ ॥
माथ परमाथ सिर मौत मोटी बिथा,
काल बट पाड़ निति घात हेरे ।
कलित परवार सुत सजन स्वारथ सगा,
आदि अंगि सदा राम तेरे ॥ २ ॥
बंबूल तर छांह कांटा पखो कामना,
रचसि मां रहसि मति पार मांही ।
जन हरिदास हरि हेरी मन फेरि मरमैं कहा,
निझर भरि देखि हरि दूरि नांही ॥ ३ ॥

॥ पद ६ ॥ (झपताल)

काम क्रम माल की पोट जोरे बहै ।
मारि घे मीर कछू संक नांही ॥

तास भै कांपि निज नांव हरि चित चढ्यो रहै,
निज नांव निज सुरति मांही ॥ टेर ॥
राव रांणा गहै जोर कोई नां रहै,
सहज साझै सकल अकल वैडो ।
काच कोने कियो सांच सहजे लियो,
भजो रे भलौ निज नांव नैडो ॥ १ ॥
अकल की आस खरि आन सब दूरि करि,
सकल सासो मिट्यो साच पायौ ।
ता साच की चोट निज दास निति उच्चर्‌या,
राखि साचा धणी सरणि आयो ॥ २ ॥
भक्त की भीड हरि आप आतुर करे,
प्रीति पूरे सदा कांम सारे ।
जन हरिदास हरि नांव को तत खरो,
चित चढ्यो राम प्रहलाद ज्यूँ प्रीति पारे ॥ ३ ॥

॥ पद ७ ॥ ( झपताल )

मनां देखि रे देखि [१]छक भलो लाघो,

ऐसो अवसर बले बहोरि आमसि नहीं।
राम भजि ( राम भजि ) राम सग काल खायो ॥ टेर ॥
सोहड सीधड चढे छत्र मसतगि धर,
निज नांव परतीति हरि निकटि नांही।
अजर की चोट नरपति छत्र मारिया,
पड्या अपराज धुनि धरणी मांही ॥ १ ॥
जाके सीस दश बीस भुज कोट लंका जिसो,
समद जिसि खिसि करे सबल खाई।
तिको दशरथ सुत रामचन्द्र मारियो,
काल की चोट में सकल भाई ॥ २ ॥
इन्द्र की कथा कहूँ चढीत मथा करे,
करे करणी कहे काल मार।
जन हरिदास निज भक्त कबीर नाम जिमा,
सबल की चोट नहीं काल मारे ॥ ३ ॥

॥ पद ८ ॥

जाति को भेद पणि सकल ऊपरि भयो,
राम रंगि रंग्यो रंग मस्त राता।
दास कबीर मन सोक आवे नहीं,
अमल रस पीव मस्तानि माता ॥ टेर ॥

चोट सूं चोट खिमि खेति चाल्यो नहीं,
पांच परबल पिसुन मारि लीया।
अकल का चोट जम चोट लागे नहीं,
उलट का पुलट रस भला पीया ॥ १ ॥
साध की चाल सुणि सकल संशय मिट्यो,
रह्यो त्यूँ रह्यो कछु संक नाही।
आन की आस बिसवास बाधो नहीं,
रह्यो पणि रह्यो रमि राम मांही ॥ २ ॥
जलमें कंवल पणि नीर भेदे नहीं,
जगत में भक्त यूं रहे [१]जूवा।
जन हरिदास हरि समद में बूंद कबीर जन,
समद में बूंद मिलिए एकहूवा ॥ ३ ॥

॥ पद ६ ॥ ( कहरवा )

[२]ग्रहडौथ को राम गुण गावे, दूजी दसा लीयौ मन तांणी।
एक दसा निरभे हे लागो. नांमां नरहरि के दीवाणी ॥टेर॥
माया देखि न डरियो छीपौ, ज्ञान खड्ग बल कीया चूर।
हरि रस पावे अडि गमन अवधू, अणहद वेणि बजांवे तूर ॥१॥
मन का नास करे मति कोई, नामें मन पलट्या दम दीप।
उलट सुरति सकल रस पीवे, निज तत निरखत रहे समीप॥२

१ जुदा २ मार्गगामी

सबद अगम अविगत निज वाणो, अंतरि उलटी आवे नांही ।
जन हरिदास नामें निज दाख्ये, सो नर विराजे पैना मांही॥१३॥

॥ पद १० ॥ ( कहरवा )

मोटि मने रस फेरि के डूबो, हरि मीठम मीठा कोई नांही ।
चकदा मगन गगन गुण मामी उपति खपति सकल हरि मांही ॥टेर॥
समन्द अथाह तिको नर थाये, हरि अथाह थाचियो न जाय ।
कोई थाये अथघ अघम भरि खेले, नि॥ तठ निरखत रहे समाया १।
गगन अगम गोविन्द गुण आंखे, गोविन्द गम कोई लहे साध ।
उलटो खेलि अकल रम पीवे, परसे अवगति अगम अगाध॥२॥
मन उनमानि निकटि निधि जीवे, सुरति सर्बाहि गहे मन पौने ।
जन हरिदास अवगति गति ऐसी, भेद अभेदी लहे सकौन ॥३॥

॥ पद ११ ॥ ( कहरवा )

सांवत सोदइ घर सति मन मुखि, राम रखवां बोलि मावां ।
आवम सार टोप सिर सुमिरया, कौकरि आप सहीवा ॥टेर॥
पसी पोस पटा भय पर हरि, भरि म सुर मल होरा ।
साधम लाज राम मधि मांडे, टिकि टिकि मके स योधा ॥१॥
पोच पचीस मोह दल माया, काम कोध दल धूरा ।
चढ़के सेल खड़ा चढ़ चसता, बाजे अनहद तूरा ॥ २ ॥

गुरज नालि गोला सर छूटे, कमध ऊपाडे थांणा ।
[1]खाग खिवे ज्यूं आभे दामणि, कायर कटक उडांणा ॥३॥
मन गहि पवन पलटि पहिराखे, आछा अमल छहोडे ।
जन हरिदास मान ममता तजि, यूं [2]मैवासा तौडे ॥४॥

गोरखनाथ तुह्मारी गति मति, कोई सुरनर मुनि नहिजांणे ।
जांणै सिधसाधक अर अलकनिरञ्जन,गौरखमुनि सुधारसमांणै॥टेर
जीत्या करम भरम करि कांनै, गगन चढ्यौ रस पीवै ।
जा मांहि मिलि छांटौ डारै, सो मृतक सति जीवै ॥१॥
जांणै जोग भोग नहि जांणे, नाथ इसी विधि खेलैं ।
जन हरिदास गोरख सति सन्मुख, अमीं महारस झेलै ॥२॥

॥ इति कड़खा छन्द सम्पूर्ण ॥

## ॥ अथ रेखता राग काफी ॥

॥ पद १ ॥ ( रूपक )

[3]सइयां उलटि देखि हजूरी, औ जुद मैं मौजूद मीरां ।
कहां खोजै दूरी ॥ टेर ॥

निकटि निजनिधि तरया तारख, निम सुरति तहां पूरि ।
दिलमांहि मक्का है रु मथुरा, पांच प्रबल चूरि ॥१॥
मही मूरत पगरद गाफिल, साहि क्या सुलतान ।
हरदम हजूर सम्मलि निशदिन, दरद सूं दीवान ॥२॥
चुस्त चस्मा उरध अन्तर, गरब गस्त निवार ।
है सहाबर भगम यारां, मासिकां दीदार ॥३॥
दरबार दोजिक गरक गुरमां, मनीं मार मीर ।
महरका [१]मकसद एही, पहद पीछै पीर ॥४॥
दिलसदा स्वाफिक हरकमकरि, पीव सदा संगि सोप ।
जन हरिदास भासा काटि पासा, मिस्ति खेलो कोय ॥५॥

॥ पद २ ॥ ( रूपक )

महयां दुरस है दीदार, सैतान का सिर तोड़ि निरमै ।
खेलि म्यापाली यार ॥ टेर ॥
भरवाह मं मन भाषि उलटा, है सहाबरि होय ।
एक सूं मिलि म्बेलि सुसमति [२]कहर कांटा खोय ॥१॥
सिर पाय परसि कुरांन काबिल बैसि पथि दिल मांहि ।
तहां खाविक पुरक, सुंदी खाली मांहि ॥२॥
[३]रूद रायेर बरस रुषि, गहर शुया गलतान ।
है सहाबर भगम यारां मो मनां सुलतान ॥३॥

१ मभव २ कास ३ बारमा ।

पीर मुरसद एक आसथा, अरस परसै दोय ।
जन हरिदास पीवसूं ख्याल परगट, सहज सिजदा होय ॥४॥

॥ पद ३ ॥ ( रूपक )

मैरे एक तूं रहमान, मकसूद मेरी प्रीति तुमसूं ।
और सूं क्या काम ॥ टेर ॥
तूं था सदा भी सदा रहसी, निकुल तूं निरधार ।
और सब आधार तेरे, तूं [1]पाक परवर दिगार ॥१॥
वेखुदी वे आदि वैगम, अजर अचल अचाल ।
चिदानन्द अरूप अवगति, खवर दारों ख्याल ॥२॥
तूं अकह सब कह सुनतहै, कहै तैसा नांही ।
जन हरिदास अमर अलेख निरभै, तूं खेलता सुखमांहि ॥३॥

॥ पद ४ ॥ ( झपताल )

क्या कहूं [2]रब कछु कहत न आवै, हूवा सा जायगा ।
जाय सो सति नहीं, अला आले मे रह्या आवै ॥ टेर ॥
रिजक राजिक रजा खलकखालिकखुसी, है तिसाहै सजांणं नकोई,
यार का यार दीदार यारो दस्त, नूर निरसंव निजरूप सोई ॥१॥
जिंदमें जिंद अर वाह मे एकतूं, सकल भरपूरि निजदूरी नांही ।
वंदगी छाड़ि बंदा कहां उबरै, मगन मस्तान तस नूर मांही ॥२॥

१ पवित्र २ अब ।

निरभर भरि कायामां देखि कलसमांभई, सेजसुखां नसो सकलसोई।
जन हरिदास दिलवारि दरसदिल आसिकां,
खूब दीदार निज महल मांही ॥ ३ ॥

॥ पद ५ ॥ (रूपक)

तर[1]सौंस का सुख मोहि नैन भरि निज नूर पखूं।
मैं न छाडो तोहि ॥ टेर ॥
सांई सेफ माया मुक्त माया, प्रीति का उरहार ।
इस्क तेरा रहो मेरे, यार तूं दिलदार ॥१॥
सुरति मेरी लारि फरि, जिद में घर छाय ।
खोलि घट पर देखि नैनां, रहूं उर लपटाय ॥२॥
महर मालिक अवर खालिक परसतां मैं पार।
मारि गोता दरसपाया उर समें दीदार ॥ ३ ॥
महरबान दीवान दाखां, जहां न तहां सुख भाख ।
जन हरिदास कैं सुख रहो तेरा, और सुख दे लाख ॥४॥

॥ पद ६ ॥ (रूपक)

मस्तहर भाव भरी बार, इस्क कहै महास प्याइस्स ।
दरस यो दीदार ॥ टेर ॥

---

[1] सुबक

इस्क तेरा जिद मेरा जाय यहु तन जाय, तुम जांणवेहो कहूं कासूं।
कब मिलोगे आय ॥१॥
फरक फारक तरक दुनियां, हेतु सांडा चाव ।
सेज मेंडी आव सइयां, सीस पर धरि पाव ॥२॥
अल्लाह आले विरह जाले, विरह वाले घाव ।
जन हरिदास कूँ दीदार दीजे, खूब खालिक आव ॥३॥

॥ पद ७ ॥ ( रूपक )

दुनिया दुरसि भूलों दीन, वा खस्म की कछू खबरि नांही ।
और की आधीन ॥ टेर ॥
एक जलेखां का जाप जांणे, आदमां असथांन ।
एक पीरां सइदां जाय लागे, ऐसा सा कछु ज्ञान ॥१॥
एक जडी बूंटी धात या खण्ड, इष्ट भैरू वीर ।
सुरति सुलटिन चल्या उलटा, वहि गया तलसीर ॥२॥
एक तन्त मन्त उडन्त आगम, सुरति दिह दस पूरि ।
जन हरिदास तिनकूं भिस्ति कैसे, रह्या खालिक दूरि ॥३॥

॥ पद ८ ( रूपक ताल )

बंदे बंदगी हुसियार, जोर करि भी जेर होयगा ।
बहोत खायगा मार ॥ टेर ॥

भूलि गाये फूलि बैठा, यहां स तहां भ्रम प्रास ।
काल नट के हाथि डोरी, कंठि बन्ध्यो कपि ज्यूं पास॥१॥
पालग्या पुर पिसण पहुंता, गुण ग्रासि गोविन्द ध्याय ।
हरि नाम लै नर छाडि मैं स, बन्ध जुवा जाम ॥२॥
घोर दह दिस थोर भागा, छुटि है गढ देह ।
जन हरिदास जोगी जागि सुध करि, राम भावध लेह ॥३॥

॥ इति पदावली सम्पूर्ण ॥

॥ अथ कवित, सवैया छप्प आदि लिख्यते ॥

तुम सतीर्थ तुम मत तुम सयो रूप सबलाई ।
तुम स बन्धु तुम बीर आंन चित घट न काई ॥
तुम स मात पिता परिवार तुम स सज्जन सुखदाई ।
तुम स ज्ञान तुम ध्यान रामजी राम दुहाई ॥
अगम वस्त अन्तरि अगह कलिविष काट्या तापती
जन हरिदास के एक तूं आंन न जाणूं बापजी ॥१॥
गुर तीरथ ज्यूं मरु समद ज्यूं थाह न कोई ।
मति गम्भीर ज्यूं गगन चन्द ज्यूं सीतल सोई ॥
समदिष्टि ज्यूं सूर पवन ज्यूं लिपै न लोई ।
वसुधा ज्यूं मनधीर परम संगी गुर सोई ॥

जन हरिदास गुरगमि अगम कहतन आवै क्या कहूं ।
गुर गोविन्द चरणारविन्द माथविट लागा रहूं ॥२॥
दीवांन यसा जाचूं नहीं एकमम दीवान स औरहै ।
जहां सागर सलिता नांहि पवन गिर पृथिवी नांही ॥
बरण नहीं बैकुण्ठ विघन कौतूहल नांही ।
वपघट नहीं बिचार करम मै भरमौं नांहीं ॥
रवि ससि द्यौंस न राति तिमर तारायण नाही ।
व्यापै सीत न धूप गगन वसुधा फुनि नांही ॥
जन हरीदास सबतैं अगम तास गम कोई विरला लहै ।
दीवान इसा जाचूं नहीं एक ममदीवन स और है ॥३॥
अवगति गति को लहै कौण गैणायर मापैं ।
कौण मेरुकूं तोलि थापनां उलटी थापैं ॥
कौण समद जल तिरै कौण गुर यह मति आपै ।
ब्रह्म अगनि में पैसि कौण सिध अन्तर तापै ॥
जन हरिदास पूरण ब्रह्म नहीं नैड़ा नहि दूरि ।
कीमति कहि कहि कहि अकहि हरि जहां तहां भर पूरि ॥४॥
जोग जिग असमेध सीस गहि ईस चढावै ।
पांच अगनि तप सिला करौ ऊभा तप भावै ॥
अम्र विवर तनसीत सुनौ मध तीरथ न्हावै ।
कासी छाडै देह हेम वसि हाड़ गमावै ॥

मिवधि घरम तपस्या विविधि फल्म भ्रुके पर बुस सहै ।
बन हरिदास हरि नांव बिन (नर) कहि फोंस बाट निरमै रहै ॥५॥
भगम वीरस गुरगम सुगम भगम तपस्या मिस जोमबिचारा ।
एकादशी भमम् भगम नांव नरहर न बिसारो ॥
सन्त सरासन भगम भगम गुर ज्ञान उर धारो ।
गंम भमन मथि पैसी हरि भगम वस्त भन्तरि खहो ॥
बन हरिदास निरभै भई तहां उनमनि लागा रहो ॥६॥
सोक क्षाव फलमेस तहो मिथि भन्म हारा ।
राम नाम उरधारो भाप बन मरि न पसारो ॥
सौसागर भार भार मथि नांही (घट) घाट सथि भपट्ट बिचारो ।
परम ज्ञान पर ध्यान हरि निम नाथ नहि [1]निमस्र बिसारो ।
बन हरिदास इन्द्री भटकि पिसय पछाटि परमगति साहौ ॥
भममवस्त भन्तरि भमह तहां उनमनि लागा रहो ॥७॥
परम ज्ञान पर ध्यान परमगुर गुर गमि गावो ।
राग दोष रस पांच रसे मन तहां न पावो ॥
काम क्रोध भमिमान कपट कांटा मति लावो ।
भलख भमन उरधरो मरो मति मौत चुकावो ॥
बन हरिदास मनगहि पवन भय भगनि विषवन दहो ।
भमम वस्त भन्तरि भगह तहां उनमनि लागा रहो ॥८॥

---

१ पलक तप भावि बिना मीलि स सब पलकब है ।

पूत कलित परिवार माल बहौ मुलक बड़ाई ।
ऊंचा महल अवास सेल सजन सुखदाई ॥
बहो सूंधो बहौ पान सेज खासा दरियाई ।
करधर मूंछ मरोडि कहै मेरिज दुहाई ॥
हरि सुमिरण हिरदै नहीं दहुंदिस माया घेरी ।
जन हरिदास यूं जांणिये यहुं तिल सुख दुख असमेर ॥९॥
जहां जीव तहां सीव बीचि माया का सरवर ।
गिरवर अजंग उतंग विवधि विष का वन तरवर ॥
सर्पसिंघ जख जुरा जीव धरि सकै न तहां धर ।
नदी वहै मैं मंत मछमरणां मधि एइ डर ॥
जन हरिदास हरितहां चलौ ज्ञान पर उरधरि तजि घर।
जहां जीव तहां सीव विचि माया का सरवर ॥१०॥
गहर बाग रंगराग तहां ध्यान धरि जोगी बैठा ।
जंबक मारया सिंह सूर शशिहर अंग पैठा ॥
गया पाप परदेस पहोम जित घुरतें धेठा ।
गंग चढी ब्रह्मण्ड अठ्या हट करता हेटा ॥
अरस परस रस परम गति परम भेद निरभै भया ।
त्रिविधि तिमिरगत गर्वगत जन हरिदास सत गुरु दया ॥११॥
नाथ मछिंदर देखि देखि गोरख गुण रत्ता ।
रह्या धणी मूं लागि छाड़ि भौजल का मत्ता ॥

गोपीचन्द भी चाखिये जोग ध्यान ऐसैं गह्या ।
हैगे भैगे छाड़िकै माया सूं न्यारा रह्या ॥
सुखदेव भी माया तजी बास छाड़ि बनमें बस्या ।
जन हरिदास वे ऊबर्‌या अग सारा माया डस्या ॥१२॥
नाथ निरञ्जन देखि भगति संगी सुखदाई ।
गोरख गोपीचन्द सहज सिधि नवनिधि पाई ॥
नामैं दास कबीर राम भजतां रस पीया ।
पीपै जनरैदास परे छकि छाछा छीया ॥
मनमें वस्त विचारिकै जन हरिदास लागा तिहीं ।
राम विमुख दुख्या करैं तै निरभख पहुंचै नहीं ॥१३॥
हैवर गैवर गांव फौज फर हर बहो पायक ।
बहो शोभा दरबार खसै धांखूमी लायक ॥
सरभार्‌यां तन तोजि चढं मसीमां मुह लायक ।
प्रतिमाक्षी करभर किवर पकि मुखि विकस बायक ॥
सोह छाक गोखी गिखैं परदल भीडै पर पुरा ।
तऊ जन हरिदास हरि नाम बिन नर विकट रूप शीसै पुरा ॥१४॥
बीरघटा भर हरी छुटै गै रिख में गाजे ।
पडै सोह पोछाड खड्ग लसतां रिख बाजै ॥

करवर करसूं तोलि [1]खिसणां तन पीसण अवाजै ।
सूरवीर सन्मुख चढै खेत तजि कायर भाजै ।
नीर उतर्‍यो वीर नांव क्षत्री पण लाज ॥
दोऊ पखां निरभै रतन स्यांम धरम अरुमांण ।
जन हरिदास यूं कहै बालि निमाणों जाण ॥१५॥
भजि करणां निधि करतार नांव नारांयण लीजै ।
भजि निरामूल निरसिंध काम आरंभ यह कीजै ॥
भजि अलख निरञ्जन नाथ छाड़ि विष अमृत कीज ।
भजि परम उदार अपार ज्ञान गहि ध्यान धरिजै ॥
जन हरिदास वार पार की मति नहिं राम नाम मोटौ रतन ।
उरमंडण उरधारि प्रेम प्रीति दीजै जतन ॥१६॥

॥ इति कवित्त सम्पूर्ण ॥

## ॥ अथ कुंडलिया लिख्यते ॥

### ॥ श्री गुरुदेव को अंग ॥ १ ॥

साचे गुरु साचे मते भजे निरञ्जन नाथ ।
जन हरिदास ता साध का सिष क्यूं छाडे साथ ॥

---

१ पाठा खिसणा तन पार भी है

शिष ज्यूं छाडे साय नांव निज भेद बतावे ।
अमरथ अगह अरूप अगम गुर गमत पावे ॥
गरम छाडि गोविन्द भजो सिर सतगुरु का हाथ ।
साचा गुरु साचे मते भज निरंजन नाथ ॥ १ ॥
काचा गुरु काचे मते काचा ही फल खाय ।
बुगला का दृष्टान्त दे बुगला ही होय जाय ॥
सो बुगला ही हा जाय ध्यान बुगला ज्यूं धारे ।
पांखि मांही पेसि मीन पांणी में मारे ॥
जन हरिदास गुरमुख तहां ताहू मीति न आय ।
काचा गुर काचे मते काचा ही फल खाय ॥ २ ॥

॥ गुरु सिष्य पारिष्य को अंग ॥ २ ॥

गुर सिर पर कर तब धर जब गुरु लायक होय ।
बिनहीं परचे सिस करे बडा अधम्मा दोय ॥
बडा अधम्मा दोय बात या कासं कहिए ।
खोटा गुरके साथि परम गति कदे न लहिये ॥
अगम ठोड आसण अचल जन हरिदास गुर साम ।
गुर सिर पर कर तब धरे जब सिष्य लायक होय ॥ १ ॥
गुरु होय सिष सांखा करे मिली का सा मोह ।
जन हरिदास [illegible]

भला विगोया ओह रामसुख नैड़ा नांही।
जहर जड़ी जीव खाहि अहूं तरवर की छाही ॥
काची संगति वूडिए साहिव जी की सोह।
गुरु होय सिख साखा करे मिन्नी का सा मोह ॥ ३ ॥

## ॥ साध संगति को अंग ॥

संगति कीजे साध की मनकी दुवध्या खोय।
साध बतावे परम सुख पहुंचे विरला कोय ॥
पहुंचे विरला कोय देह सुख दिलतैं धोवे ।
जाय बसे दरबारि नींद भरि निसे न सोवे ॥
जन हरिदास आनन्द यह दूजा दखल न होय।
संगति कीजे साध की मनकी दुवध्या खोय।
साध बतावे परम सुख पहुँचे विरला कोय ॥ १ ॥
संगति कीजे साध की जामें रामदयाल
अरस परस आनन्द सदा गाइ जै गोपाल ॥
गाईजै गोपाल प्राण पति प्राण पिछाणे ।
धरयो धरया कूँ छाड़ि अधर अभि अन्तरि जाणे ॥
जन हरिदास पति परसता पला न पकड़े काल
संगति कीजे साध की जामें रामदयाल ॥ २ ॥

साध मिल्यां सुख पाइए भजिए केवल राम ।
नर पारा गोविन्द विमुख तहां नहीं साध का काम ॥
तहां नहीं साध का काम धस्या ऊंडा अब मांही ।
विणचे शख सराफ हाट हीरा की नाहीं ॥
जन हरिदास हरि परस कूं खोचन दोय सकाम ।
साध मिल्यां सुख पाइये भजिए केवल राम ॥ ३ ॥
राम सनेही साधवा बड़ा वैद अग मांही ।
सूना जीव अमाम करि भोर देस लेजांहि ॥
भोर देस लजाहि सबद राखे ज्यूं रहिए ।
सबद कहै त्यूं करे सबद कसणी सब सहिए ॥
जन हरिदास ता मुलक में सुरा काल मै नांही ।
राम सनेही साधवा बड़ा वैद अग मांही ॥ ४ ॥
साध सदा भेला रहै कबहूं दूरि न जाहि ।
जिनकी थब ऊंडी गमी मध मौमि ता मांही ॥
मध मौमि तामांहि सुरति निज जाय समाई ।
दरसे परसे प्रम परम निधि अन्तरि पाई ॥
जन हरिदास तहां भगम फल हिलिया हरजन खाहि ।
साध सदा भेला रहै कबहूं दूरि न जाहि ॥ ५ ॥
कोई भावा प्रीति ले कोई भावो भरिभाय ।
साध दोउं कूं पोख दे जो वाका फल खाय ॥

चो वाका फल खाय रूंख तैसा फल दरसे ।
आंधी के मुखि धूरि घटा मुखि पांणी बरसे ॥
जन हरिदास आछे मते सुख में रह्या समाय ।
कोई आवो प्रीति ले कोई आवो अरि भाय ॥ ६ ॥
आठ पहर की उनमनी आठ पहर की प्रीति ।
आठ पहर सन्मुखि सदा यह साधों की रीति ॥
यह साधों की रीति एक रस लागा जीवै ।
अगम पियाला हाथि राम रस पावै पीवै ॥
जन हरिदास गोविन्द भजौ आन असुर अरि जीति ।
आठ पहर की उनमनी आठ पहर की प्रीति ॥ ७ ॥

## ॥ अथ सुमिरण को अंग ॥ ४ ॥

हरि भजि भेद विचारि हारि मति चालो लोई ।
एकै साथि साथि और साथी नहि कोई ॥
और साथ नहि कोइ जांणिया जीवमै साची ।
रसना राम रटीरि रखे मति थाप काची ॥
जन हरिदास गोविन्द विमुख सौज त्यौ सद्गति खोई ।
हरि भजि भेद विचारि हारि मति चालो लोई ॥ १ ॥
कहा दिखावे और कूं उलटि आप कूं देख ।
कर लेखणि मसि कागद कहां लिखिए तहां अलेख ॥

लिखिए जहाँ अलेख सुतौ निर्मल करि लीजै ।
दिल कागद करि पाक सुतौ लिखि लिखि ठिक दीजै ।
जन हरिदास हरि सुमरतां लेषर रह न लेख ।
कहा दिखावै औरकूं उलटि आपकूं देख ॥ २ ॥
गुरु गोविन्द गोविन्द भजन गोविन्द ही सूं प्रीति ।
हरीदास जन यूं कहै या साधां की रीति ॥
या साधां की रीति अगमपुर गमते पाया ।
निरामूल निरलिप कालभै जाल न काया ॥
जन हरिदास तहां एक सुख नहीं हारि नहिं जीति ।
गुर—गोविन्द गोविन्द भजन गोविन्दही सू प्रीति ॥ ३ ॥
निश दिन राम संभालि जागि निरभै पद लहिए ।
जहां तहां मन लाय आप परदुख क्यूं सहिए ॥
आप परदुख क्यूं सहिए सिरि सुरा जम चोट न सूकै ।
यह लाह हाइ काम जीव अपथि करि चूकै ॥
जन हरिदास अगगति अगम फेरि ममता सुखि रहिए ।
निसदिन राम संभालि जागि निरभै पद लहिए ॥ ४ ॥

॥ विरह को अंग ॥ ५ ॥

मनो हाथ की होस धरि तन आसन कू मांहि ।
लोक लाज लै अलख है मसलि सति सो नांहि ॥
मसलि सति सो नांहि पीव की खबरि न जाणी ।
धीरज रह्या न लोयणां दुख को पख पाथी ॥

जन हरिदास ऐसा विरह जहां तहां जग मांहि ।
सति होंग की होम धरि तन जालन कूं जाहि ॥ १ ॥

## ॥ ज्ञान विरह को अंग ॥

बात सुणी सुणि पीव की सिरने डारया चीर ।
लिया मन्दोरा हाथ में पैंडै लागी वीर ॥
पैंडै लागी वीर देह सुत वित सब भूलि ।
जीव गया तहां पीव पैसि दावानल झूलि ॥
जन हरिदास संसार की लगी न काई सीर ।
बात सुणी सुणि पीव की सिरतें डारयो चीर ॥ १ ॥
विरह मढीमैं पैसि करि दहि दिस दीन्हि आगि ।
जीव लग्या पखि पीव के रही निरन्तरि लागि ॥
रही निरन्तरि लागि आन चित चोट न धारी ।
प्रकट जली मैदान लोक लज्जा सब डारी ॥
जन हरिदास पीवका विरह तहां बसै धसि जागि ।
विरह मढी में पेसि करि दहि दिस दीन्हि आगि ॥ २ ॥
असली सति आतुर कहा अर आलस भी नांही ।
धीरे धीरे ऊठि चली एक रेख मन माही ।

एक रेख मन माँहि और दुनियाँ सब खारी ।
जीव गया तहाँ पीव देह लेखे हमें हारी ॥
जन हरिदास ऐसा विरह भल्या छाडि कहाँ जाहि ।
मसखी हति आतुर कहा मर आलस भी नाँहि ॥ ३ ॥

॥ चिन्तावर्णी को अंग ॥

आय सिंघासण बैसता हसि हसि करता बात ।
सुत वनिता परवार सूं उठि गया घरि घात ॥
उठि गया कर घात सगि हात न माया ।
भाई सगि न मोमि बन्धि साथी नहिं काया ॥
कहूं काल चोट चूके नहीं जन हरिदास तिलमात ।
आय सिंघासण बैसता हसि हसि करता बात ॥ १ ॥
चोवा चन्दन लाय तन करता बहोत सिंगार ।
जन हरिदास देमाँ नई बलि बलि हूवा छार ॥
बल बलि हूवा छार भार अपणों सिर धारया ।
या रसनाँ के स्वादि जीव नाना विधि मारया ॥
बहोदि बहोदि जामें मरे जुरा काल म सार ।
चोवा चन्दन लाय तन करता बहोत सिंगार ॥ २ ॥
माल मुलक हैगें घणाँ, छत्र छांह मन छाक ।
के मारया के मारसी, काल करत है हाक ॥

काल करत है ताक अन्ति कोई छूटै नांही ।
सुर नर असुर अनन्त मत्र, लोक जम के मुख मांही ॥
जन हरिदास गोविन्द भजो और सबै मुख थाक ।
माल मुलक हैं गैं घणां छत्र छाह मन छाक ॥ ३ ॥
तन धरि धरि मरि मरि गया हरि हरि भजै न भेद ।
सद् गति सुख जांणा नहीं तहां कंध का छेद ॥
तहां कंध का छेद आन नर वोट न छूटै ।
दस दरवाजा रोकि काल काया गढ लूटै ॥
जन हरिदास अवगति अगम झूठ और उमेद ।
तन धरि धरि मरि मरि गया हरि हरि भजै न भेद ॥४॥
जागो रे सोवो कहा अवधि घटै घटि वीर ।
कहो कहां लो राखिये फूटै भांडै नीर ॥
फूटे भांडे नीर गरक गाफिल नर सोवे ।
भजे नहीं भगवन्त, वहोडि मल सू मल धोवै ॥
जन हरिदास सुर नर असुर सब मछली जम कीर ।
जागौ रे सोवो कहां अवधि घटै घटि वीर ॥ ५ ॥
जन हरिदास निस दिन घडी बाजे बारवार ।
घटत घटत सब दिन घट्या मरणां सही तियार ॥
मरणां सही तियार न्याय निधडक नर सोवै ।
सीह दीह छक छक्या मूल माया मद खोवै ॥

अनम अमोलिक मात है यों नित कर पुकार ।
अन हरिदास निसदिन भई बाजे बरंबार ॥ ६ ॥
राधा राम नमो नमे नारायण नरसिंघ ।
अन हरिदास समां नई, आहि अधो[1]गति अन्ध ॥
आहि अधोगति अध अग्यान अंधारस उर लागा ।
त्रिविध अ धार वेसि ग्यान [2]धारण नहिं नागा ॥
भान ध्यान गुर ग्यान बिन और अधोरा पन्थ ।
राधा राम नमा नमे नारायण नरसिंघ ॥ ७ ॥

॥ अथ परचा को अंग ॥

बिन बादल बिरखा सदा छद रुति बारा मास ।
आतम अन्तरि देखिये परम ज्योति परकास ॥
परम ज्योति परकास अथाग सागर में झूलं ।
अनहद सबद उचार सुरति निश साथ न भूलं ॥
जन हरिदास आनंद भया अरधि समांनी आस ।
बिन बादल बरखा सदा छद रुति बारा मास ॥ १ ॥
ग्यान पत्र मनसा अगति निस दिन बैठा खाय ।
आसा रासं मजलसमें मरमत फिर बलाय ॥

१ अध गति २ धारण का अर्थ

भरमत फिरै बलाय सिंघ दत्र महल पधारे ।
[1]मूंसो ग्रासै [2]शेष [3]धूसो[4]सुनहा कूं मारै ॥
जन हरिदास उदबुद कथा तहां मन रह्या समाय ।
ज्ञान पत्र मनसा भुगति निश दिन बैठा खाय ॥ २ ॥
खग उड्या आकास कूं चींटी परां समाय ।
जहां चींटी की गमन नहीं तहां खग बैठा जाय ॥
तहां खग बैठा जाय मुलक वो औरे भाई ।
सीत धूप परस रहत एक रस तौ सुखदाई ॥
जन हरिदास चींटी तिको उलटि न पूठी जाय ।
खग उड्या आकास कूँ चींटी परां समाय ॥ ३ ॥
ज्ञान गुफामें पेसि करि बैठा ताली लाय ।
सुख पाया सत गुरु मिल्या सूता लिया जगाय ॥
सूता लिया जगाय हरि आप कू आप बतावे ।
घट घूंघट पट खोलि साध तहा दरसण पावे ॥
जन हरिदास आनंद यह तहां मन रह्या समाय ।
ज्ञान गुफामें पैसि करि बैठा ताली लाय ॥ ४ ॥
परापरै पूरण ब्रह्म परम ज्योति परकास ।
सकल वियापि संगि बसे सबतें रहै उदास ॥

---

१ मन २ ओंकार पावन ३ ज्ञान ४ मन

सबसें रहे उदास वार नहिं लागे पार ।
निम्र तरवर निरसिष प्राप्त तहां बसे हमार ॥
जन हरिदास अंतरि अगह मनका तहां निवास ।
परापरें पेरख ब्रह्म परम ज्योति परकास ॥ ५ ॥
सब को सरबस देत है अपणी अपणी प्रीति ।
साहिब कूँ सरबस दिया या कछु उलटी रीति ॥
या कछु उलटी रीति प्रीति गुण गोविन्द गावे ।
सुन मंडल में बसि सोच सुरति लगावे ॥
जन हरिदास आनंद भया छूटी सब अनीति ।
सब को सरबस देत है अपणी अपणी प्रीति ॥ ६ ॥
सहर अघर पैंडा अघर कसर करम नहिं कोर ।
धरम अघर रहनी अघर अघर सब्द की धार ॥
अघर सब्द की धार अदर बिरला भख आया ।
जहां तहां भरपूरि अघर गुरु गमते पाया ॥
जन हरिदास निरभे नगर तहां भ्रम करि सके न जोर ।
सहर अघर पैंडा अघर कसर करम नहिं कोर ॥ ७ ॥
निगम अगम मन तहां बसे जहां साधों की ठौर ।
परमानन्द पति परसतां छूटि गया भ्रम भोर ॥
छूटि गया भ्रम भोर राम निरभे सुख पाया ।
रूप रेख रस रहत काल में आस न काया ॥

जन हरिदास अंतरि अगह पहुँचन का पंथ और।
निगम अगम मन तहां बसे जहां माधों की ठौर ॥ ८ ॥
सोवत सोवत सोय रह्या जागि जागि कहां जाय।
सोवण जागण ते अगम तहां मन रह्या समाय॥
तहा मन रह्या समाय प्रथम अपणां घरि आया।
निरामूल निरसिंघ अगम गुर गमतें पाया॥
जन हरिदास अवगति अगम जहां मन रह्या समाय।
सोवत सोवत सोय रह्या जागि जागि कहां जाय ॥ ९ ॥
मन चंचल निहचल भया त्रिवेणी तटि वास।
आंखि अजब अञ्जन पड्या परम ज्योति परकास॥
परम ज्योति परकास अगह अघ बिन अघ जारण।
सीत धूप परस रहत करम भै भरम निवारण॥
जन हरिदास पति परसतां काम क्रोध का नाश।
मन चंचल निहचल भया त्रिवेणी तटि वास ॥ १० ॥
धुनि मांही मुनि मठ रच्या दहि दिस बाजे [1]तूर।
जन हरिदास आनन्द भया सहजि प्रकास्या सूर॥
सहज प्रकास्या सूर अजर निरमे निरधारं।
तहां मन रह्या समाय वार नहि लाभे पारं॥

[1] बाजा ( ध्वनि )

अजर बात आनंद पद जहां तहां निज नूर।
धुनि माँहि मुनि-मठ रच्या दहि दिस बाजे तूर ॥ ११ ॥
मन पंचल निहचल भया भरम न कोई भूत।
पहली का पैंडा रुक्या उलटि चल्या अवधूत ॥
उलटि चल्या अवधूत निरखि निरमे पद लागा।
काम क्रोध अभिमान मान मनरथ भरि भागा ॥
जन हरिदास आनंद भया उलटि सहूँ पा सत।
मन पंचल निहचल भया भरम न कोई भत ॥१२॥

॥ मन को अंग ॥

अधर नीर आकास में राखे विरला कोय।
मन पांखी सुखि शबद क राखपांही सुख होय ॥
राखपां ही सुख होय हरि गाँव मनका भवि भारे।
अब अगनि अमली मन पारा मैं मार ॥
नीर पलटि पावक तब (गत) जन हरिदास पख होय।
अधर नीर आकास में राख विरला कोय ॥ १ ॥
मनके वसि सब जीव है मनि वसि कर स कोय।
जन हरिदास मन राज है तहां राज बिराजी होय ॥
राज बिराजी होय नाथ मन बहुत नचाय।
तबही सुखी उछाह बहौदि मन ही सुख पाये ॥

राम भजन का भैं नहीं पैंडा तजे न दोय।
मनके वसि सब जीव है मन वसि करे स कोय ॥ २ ॥
मन [1]विष हर मुख [2]पांच श्रांखि [3]अगणित तमासा।
[4]द्वादस डसण पट जीह मोह बबई तहां वासा ॥
मोह वंबई तहां वासा पूछ गहि चिन्ता तांणे।
डक भरे तहां जहर जुगति कोई जोगी जांणे ॥
जन हरिदास गुर ज्ञान जडी लेगहि मुख की ले श्रासा।
मन विष हर मुख पांच श्रांखि अगणित तमासा ॥३॥
पांचू इन्द्री सर्प मन चिन्ता जहर मुख लोय।
कील्या तब निर्विष भया डंक भरि सके न कोय ॥
डंक भरि सके न कोय जुगति जांणी जब जागे।
[5]नागदवणि हरि नांव रहे मनके मुख श्रागे ॥
जन हरिदास मन उन्मन(लागा)रहे पवन सुरति संग दोय।
पांचू इन्द्री सर्प मन चिता जहर मुख लोय ॥ ४ ॥
जन हरिदास कहिए सदा रूप [6]गैं ज्यूँ मन धारे।
काया वनमे चरे डरे नहि डहकिन हारे ॥

१ सर्प २ ज्ञानेन्द्रिय ३ वासना ४ विषय वृत्तियें अथवा सूर्य की बारह कला जो रोमावली ग्रंथ में कही है ५ नागदमनी औषधि । जिससे सर्प का विष दूर होजाता है ६ गज

उर नहि बाकिन हार चले अपच्छी गै भोरे।
सुर नर असुर अनन्त सुखी विष का ज्यूं तोरे ॥
विविध दांव धरि चूरि सुखी सब सिष्टि सवारे।
जन हरिदास कहिए कहा रूप गै ज्यूं मन मारे ॥ ५ ॥
मन पंखी काया सुवन डाली डाली धाव।
मांहि अनन्त हित सुख अनन्त विविध पंख वहीं पाव ॥
विविध पंख वहीं पाव सुखी सति सब्द न भाखे।
हरि तरवर सुख अगम विविध तरवर फल चाखे ॥
जन हरिदास चंचल चपल कूड़ मरम वहीं माव।
मन पंखी काया सुवन डाली डाली धाव ॥ ६ ॥
ज्यूं मन फरे त्यूं फिरे मनकू फरे नांहि।
निवाला पूछा तके ध्याइ बाहरा मांहि ॥
ध्याइ बाहरा मांहि तांहि मन विकल गावे।
सीधी मोंही दृष्टि एह सिद्ध रूप कहावे ॥
जन हरिदास ऐसा बही हम देख्या कलि मांहा।
ज्यूं मन फरे त्यू फिरे मनकू फरे नांहि ॥ ७ ॥
नांव तुम्हारो रामजी लेतां लागे न दाम।
मन निकमा बैठो रहइ करे और ही काम ॥
करे औरही काम ज्ञान उर अन्तर नांही।
हरि सुख सागर छाड़ि बसे विष का बन मांही ॥

जन हरिदास नर जामें मरे हरि सूँ एह हराम
नांव तुह्मारो रामजी लेतां लगे न दाम ॥ ८ ॥

## ॥ अथ माया को अंग ॥

एक बीज ताका [१]विरछ अनत रूप वहो भाय ।
ता तरवर का फूल में सबको रह्या समाय ॥
सबको रह्या समाय वहोत भूखा वहो धाया ।
ताही में उपजे खपे आपही आप अन्धाया ॥
जन हरिदास हरि सुख अगम तहां साध एक को जाय ।
एक बीज ताका विरछ अनत रूप वहो भाय ॥ १ ॥
माया दरखत जहर फल अगम वार नहिं पार ।
च्यारि [२]खांणिका जीव सब गरक फरक बिसतार ॥
गरक फरक विस्तार खुशी खेले ता मांही ।
जन हरिदास हरि तरवर सुख अगम तहां ते पहुँचे नांही ॥
खट दरशण उडि उड़ि थक्या विवधि पंख उरभार ।
माया दरखत जहर फल अगम वार नहिं पार ॥ २ ॥
या अञ्जन सूँ प्रीति है तहां निरञ्जन दूरि ।
अञ्जन भञ्जन होयगा तहां काल भै पूरि ॥

१ अश्वत्थ ( ससार ) २ जरायुजादि ४ योनि

तहाँ काल भै पूरि जन्म, ऐसा क्यूं हारे ।
मीं कौड़ी सूं हव हाथ सैं हीरा जारे ॥
जन हरिदास गोविन्द भजो तजि मोनि बड़ाई धूरि ।
या भञ्जन सैं प्रीति है तहाँ निरञ्जन दूरि ॥ ३ ॥
सकल बियापी संगि बस दुरया देह की ओट ।
कुमा मोहुय को नहीं या भञ्जन का खोट ॥
या भञ्जन का खोट आगि आगी जुध कीजे ।
ज्ञान खड़ग ले हाथि रणजीति काया गढ लीजे ॥
जन हरिदास हरि सुख तहाँ भ्रम करि सकै न चोट ।
सकल बियापि संगि बसे दुरया देह की ओट ॥ ४ ॥
माता होय सेवा करे देह पलटि होय नारि ।
पिता पलटि भी पुत्र होय देख्या सोधि बिचारि ॥
देख्या सोधि बिचारि पाप या काय कहिए ।
आप आप सा आंखि आपलो न्यारा रहिए ॥
जन हरिदास हरि सुमरतां उरकटि लगे न मारि ।
माता होय सेवा करे देह पलटि होय नारि ॥ ५ ॥

॥ व्यापिक को अंग ।

सकल सकल थकि थकि वस्या बसत बसत गए हारि ।
बसत बकत थकि थकि बस्या मनकूं सम्या न मारि ॥

मनकूँ सक्या न मारि देह सुख दुःख दारण।
पार ब्रह्म सुख दूरि रह्या माया का कारण ॥
जन हरिदास हरि सुख अगम तहां मन सक्या न धारि।
तकत तकत तकि तकि थक्या चलत चलत गये हारि ॥१॥
पढत पढत पढि पढि अपढ अरथ करत भए अंध ।
हरि पर हटि चाल्या कुपह गली में ते दोय फंध ॥
गलि में ते दोय फंध नाम नरहरि नहिं लीया।
पार ब्रह्म पति छाड़ि और नाना रस पीया ॥
जन हरिदास हरि नां भजे नारायण निरसिन्ध।
पढत पढत पढि पढि अपढ अरथ करत भए अंध ॥२॥
सुणत सुणत सुणि सुणि असुणि कथत कथत गए कोड़ि ।
रहत रहत रहि रहि रह्या पालि गया मन फोड़ि ॥
पालि गया मन फोडि राम भजि पार न कीया।
काम क्रोध अभिमान मोह माया मद पीया ॥
जन हरिदास हरि सुख अगम तहां मन सक्या न जोड़ि।
सुणत सुणत सुणि सुणि असुणि कथत कथत गये कोडि ॥३॥
[1]एकादस गीता पढी अनभे अरथ अनेक ।
पैंडा दोय दोय करत है बात करत है एक ॥

[1] भागवत का ग्यारहवां स्कंध

पाठ कहत है एक सुरति तहाँ लागी नाँही ।
धरा पर पति छाडि धाया ऊँडा जल माँही ॥
जन हरिदास नर बोले कुरति पायाँ थि।थि बमक ।
एकादस गीता पढी मनमे भाव अनेक ॥ ४ ॥
[१]बेद [२]कुलम पढी भारथी सबका कर बयान ।
भी फिरि दुनियाँ मैं मिले पड़ बडा हैरान ॥
पड़ बडा हैरान परम सुख पड़ु ता पोदा ।
माया के असवान बस विषका मन माँही ॥
जन हरिदास निर्भिप नहीं चित माँही चित भौन ।
बेद कुलम पढि भारथी सबका कर बयान ॥ ५ ॥
चारि बेदि चारूं पढ्या कुलम भारथी भाषि ।
मन चंचल निहचल नहीं तो कछू न आवे हाथि ॥
तो कछून आवे हाथि बाद करि ब्योरा दीया ।
हरि संभ्रम बिषि घोट जहर अमृत करि पीया ॥
जन हरिदास कहिए कहा नर मन सक्या न नाथि ।
चारि बद चारूँ पढ्या कलम भारथी भाषि ॥ ६ ॥
पाठ पढ्या सुमिरत सबे कुलम भारथी भाषि ।

१ गुरु मन्त्र स्वीकार २ मरण देह की क्रिया

कहिए त्यूँ रहिए नहीं तो कछू न आवे हाथि ॥
तो कछू न आवे हाथि अलख गति लखे न कोई ।
पार ब्रह्म पति छाडि अवधि [1]खर ज्यूँ नर खोई ॥
जन हरिदास कहिए कहा मन वसे बिडाणे साथि ।
पाठ पढ्या सुमिरत सवे इलम आर्च्या आथि ॥७॥

सब सुमिरत श्रवणां सुणयां सब देख्या ओगाहि ।
भगथ रसत के सबद का अरथ करे वहो भाइ ॥
अरथ करे वहो भाय अरथ अणभे मब जांणे ।
अगम अगम दृष्टान्त कथा मे परसग आंणे ॥
जन हरिदास ओगण यह त्रिविधि ताप तन ताहि ।
सब सुमिरत श्रवणां सुणयां सब देख्या ओगाहि ॥ ८ ॥

स्वामी तो वैठा सही मानि छानि की छांह ।
[2]मानि छानि उड़ि जायगी जब जम पकड़े बांह ॥
जब जम पकड़े बांह पकडि धरती सूं मारे ।
जन हरिदास गोविन्द विमुख नर कौण दरबार पुकारे ॥
माया ठगि ठगि खात है यूं मति जांणे खांह ।
स्वामी तो वैठा सही मानि छानि की छांह ॥ ६ ॥

---

१ गधा २ अभिमान्

चात कहत हैं एक सुरति तहां लागी नांही ।
परा पर पति छाडि माया ऊंडा भ्रम मांही ॥
जन हरिदास नर बोले सुरति बांध्यो विधि बमक ।
एकादस गीता पढी मनमे भरम भनेक ॥ ४ ॥
[1]वेद [2]इलम पढी भारवी सबका करे बखान ।
जी फिरि दुनियां मैं मिले यह बडा हैरान ॥
यह बडा हैरान परम सुख मडु ता पांही ।
माया के भ्रमधान बस विपका बन मांही ॥
जन हरिदास निर्विष नहीं चित मांही चित मौन ।
वेद इलम पढि भारवी सबका कर बखान ॥ ५ ॥
चारि बेदि चारुं पढ्या इलम भारवी भाखि ।
मन बेपख निहपख नहीं तो कछू न भावे हाथि ॥
सो कछून भावे हाथि बात कहि ज्यौरा दीया ।
हरि संभ्रम विधि खोट जहर अमृत करि पीया ॥
जन हरिदास कहिए कहा नर मन सक्या न नाथि ।
चारि बेद चारूं पढ्या भखम भारवी भाखि ॥ ६ ॥
पाठ पढ्या सुमिरत सबै इलम भारवी भाखि ।

[1] कुरान मन्त्र स्वीकार [2] अरब देश की विद्या

तहां जीव तोडे तान घरस चौथा नहिं पाया ।
भेख घर्‍या धरि छिप्या जीव जीवों की छाया ॥
जन हरिदास कहिए कहा कहि कौण न पूजे आन ।
तामस गुण रस वैरता राज मरस अभिमान ॥ १३ ॥
स्वादी सूं स्वादी मिले जहां समझि तहां साच ।
मान अमान में तैमनी स्वाद नचावे नाच ॥
स्वाद नचावे नाच पांच इन्द्री रस पीवे ।
जहा जीव का नाश तहां हीं लागा जीवे ॥
जन हरिदास हरि स्वाद तजि कौण गहे कर काच ।
स्वादी सूं स्वादी मिले जहां समझि तहां साच ॥१४
ऊपरवाडे सेटिया कहै पीर सूं प्रीति ।
यों बातों सहि परसि के कौण गया जग जीति ॥
कौण गया जग जीति राम सुख लहै न क्यूंही ।
साखी सबद अरथ कहै कहि ज्यूं का त्यूँहीं ॥
जन हरिदास औगुण यह रजा आन रस रीति ।
ऊपरवाडे सेटियां कहै पीव सूं प्रीति ॥ १५ ॥
पखा पखी सबको मिले जहर भर्‍या मुख १नाग ।
जन हरिदास बोल्यां बिगति कहा कोयल कहां काग ॥

१ सर्प ।

जन हरिदास सबको सुखी राग दोष रस हाथि ।
अरस परस होय मिलि रह्या गुण इन्द्रियों के साथि ॥
गुण इन्द्रियों के साथि जहर अमृत करि पीवे ।
सांपां बरखा बात तहां ही लागा जीवे ॥
कोई जन जाग्या सो आखिसी राम नाम निज भाषि ।
जन हरिदास सबको सुखी राग दोष रस हाथि ॥ १० ॥
भेख पहरि मांडी करी हारि जीति यूँ हेत ।
अरस परस मा इक अहर यूँ लाड करि लेत ॥
यूँ लाड करि लेत हेत रस बांटे भारी ।
अधिक प्रीति परवेश मिले ज्यूं स्वान मजारी ॥
जन हरिदास करिए कहा पैठे नहीं अचेत ।
भेख पहरि मांडी करी हारि जीति यूं हेत ॥ ११ ॥
लोगां सेती प्रीति साध वेस्यां दुख पावे ।
विरक्त दीसे दूरि घर मोहि अधरम भावे ॥
घर माहि अधरम भावे अदर दारथ दुख दासे ।
नीसाखां की बात मूठि दुष्यमा में रासे ॥
जन हरिदास भोगम घट मापका भोगम छावे ,
लागां सती प्राति साप वेस्यां दुख पाव ॥ १२ ॥
वामन गुण रस वेरता राम सरस अभिमान ।
स्वाति गगन रस मारकसी नहीं जीव मोहे नाद ॥

ज्ञान तखत ते उतर्‌या झुक्या झरोखे आय।
देखि मगन मन मोहनी पीछे लागा धाय॥
पीछे लागा धाय चोरि चंचल चित लीया।
संकर ते को सबल कांम अपणैं बसि कीया॥
जन हरिदास कहिए कहा बहौत भाति करि खाय।
ज्ञान तखत ते उतर्‌या झुक्या झरोखे आय॥ २॥

घटत घटत सब यूं घट्या ज्यूं किसाण का लोह[1]।
जन हरिदास जीव करत है आप आपणा दोह॥
आप आपणा दोह दुख मदा गण तहा जीवे।
पार ब्रह्म पति छाडि नाना रस पीवे॥
साच सबद श्रवणां सुणे तब उटि प्रकटे छोह।
घटत घटत सब यूं घट्या ज्यूं किसान का लोह॥३॥

जन हरिदास संसार सुख लोह अगनि की प्रीति।
लोह घटे कोयला जले दहूँ अंगा यहुं रीति॥
दहू अंगां यह रीति कहा पुरष कहा नारी।
क्रोध अगनि प्रजलै[2] धवणी दोय दुःख सुख भागी॥
मोह लुहार में ते सुघन विथा गई बय जीति।
जन हरिदास संसार सुख लोह अगनि की प्रीति॥४॥

[1] हल में रहा हुआ लोह (हलवानी) [2] धमनी (फूंकनी)

कहाँ कोयल कहाँ काग भगति ब्यौरा भारी ।
वा भखै रस आंम काग करंका बिभचारी ॥
¹शरण छाडि अशरण भजै ताके मस्तकि भाग ।
पड्या पड्या सबको मिलै महर मरणा मुख नाग ॥ १६ ॥
मुक्ति गयार मांडी करी परम सनेही राम ।
जहां तहां त जीव, सब न्याय सहै सिर घाम ॥
न्याय सहै सिर घाव नाव निरभै नहि पाया ।
मूरख मुख सू प्रीति अगम हरि तरवर छाया ॥
जन हरिदास गोविन्द विमुख कद न नर निहकाम ।
मुक्ति गयार² मांडी करी परम सनेही राम ॥ १७ ॥

॥ अथ कामी नर का अंग ॥

काम गयन्द गरमत फिरै पवन पखा फहराय ।
जा जा घरि सेचर करै सो काम रूप होजाय ॥
सो काम रूप होजाय सेक काहू की नहि मानै ।
बस्ती माहि उजाडि कोस द्वादश की जानै ॥
जन हरिदास गति मति रहै कुचिल्ल कछू न बसाय ।
काम गयन्द गरमत फिरै पवन पखा फहराय ॥ १ ॥

---

१ अपने इष्ट को छोड़ कर जो मनुष्य अन्य इष्ट को ध्यावत हैं उनका मुख सर्प के समान है इस अंग से सिद्ध होता है २ पुरी ।

जदपि मछिन्दर मन डिग्यां देखि नाटिक घट नारी ।
राजा जत जतन कर्त्ते धूत्यौ धूतारी ॥
धूत्यौ धूतारी काम वसि तौ मति काची ।
पकड़ि नचायो कान्ह साथि महियारी नाची ॥
जन हरिदास संतन ठग्या देह जब गंगा धारी ।
जदपि पछिन्दर मन डिग्या देख नाटिक घट नारी ॥८॥
दुसासन की भुजा लात दे उरां उपाडी ।
पांडो ले पेठि हेम सैनि कैरवां सिधारी ॥
सैनि कैरवां सिधारी चिरत एक और बणाया ।
जन हरिदास दशरथ सुत सो रामचन्द्र वनवास पठाया ॥
सींगी रिपि वन मांही ठगि साथि ले चली ठगारी ।
दुसासन की भुजा लात दे उरां उपारी ॥६॥

॥ भ्रम विध्वंस को अंग ॥

पुरप नारि मैं ते मती नहि पासा नहिं सारी ।
डाव नहीं चौपडि नहीं नहीं जीति नहिं हारी ॥
नहीं जीति नहि हारी यह मोहि अचरज आवे ।
नहीं काल नहिं जाल कौण जम लोकि पठावे ॥
जन हरिदास जीव तुलत है आप आपणों भार ।
पुरुप नारि मैते नहीं नहीं पासा नहि सार ॥ १ ॥

नारी के पख नर बंध्या ज्ञान परा पख नाश।
फिरि देखे आकाश कूँ भी उडर्यां की आस ॥
भी उडर्यां की आस सकति उडर्यां की नांही।
धरया धरया यूँ इव विविध चिन्ता घट मांही ॥
जन हरिदास नर जामें मरे अस मग जहां तहां धाम।
नारी के पख नर बंध्या ज्ञान परा पख नास ॥५॥
जन हरिदास नारी नरां मोटी विषा विकार।
रूप दीप सुर नर पतंग अखि बखि तन मन छार ॥
अखि बखि तन मन छार अंत दोन्यूं पख छीजे।
काम[1] करींद करि कुबधि कैसि यह कीया के कीजे ॥
एक कुरन कूं चोट है राम नाम तत सार।
जन हरिदास नारी नरां मोटी विषा विकार ॥६॥
राम सघन में छल्या सकति भगता की खोयण।
पारा सुरस पहरण मुचकुन्द सिसुपाल बिगोवण ॥
मुच कुन्द सिसुपाल बिगोवण गरबण लंका गढ हारण।
[2]रावण सेन्यां मारि नारक नरकासुर टारण ॥
जन हरिदास नारी सरूप परम गति टरत चोवण।
राम सघन में छल्या सकति भगता की खोयण ॥७॥

१ हाथी २ रावण ने मणिहरणी स्त्रिया के वश होकर मराई।

जदपि मछिन्दर मन डिग्यां देखि नाटिक घट नारी।
राजा जत जतन कर्त्त धूत्यौ धूतारी ॥
धूत्यौ धूतारी काम वसि तौ मति काची।
पकड़ि नचायो कान्ह साथि महियारी नाची॥
जन हरिदास संतन ठग्या देह जब गंगा धारी।
जदपि पछिन्दर मन डिग्या देख नाटिक घट नारी॥८॥
दुसासन की भुजा लात दे उरां उपाडी।
पांडो ले पेठि हेम सैनि कैरवां सिधारी॥
सैनि कैरवां सिधारी चिरत एक और वणाया।
जन हरिदास दशरथ सुत सो रामचन्द्र वनवास पठाया॥
सींगी रिषि वन माही ठगि साथि ले चली ठगारी।
दुसासन की भुजा लात दे उरां उपारी॥६॥

॥ भ्रम विध्वंस को अंग ॥

पुरप नारि मै ते मती नहि पासा नहिं सारी।
डाव नहीं चौपडि नहीं नहीं जीति नहि हारी॥
नहीं जीति नहि हारी यह मोहि अचरज आवे।
नहीं काल नहि जाल कौण जम लोकि पठावे॥
जन हरिदास जीव तुलत है आप आपणों मार।
पुरुष नारि मैते नहीं नहीं पासा नहि सार॥ १ ॥

ऊँच नीच निर्भे मत कोई परसो पाव ।
ता करि तैसा फल्ल पदि जाके जैसा भाव ॥
जाके जैसा भाव तिसे सुखि आय समाव ।
गुण परमा पाई मिले निर्गुण निर्भे पद पावे ॥
जन हरिदास खेलो कई दई मंगो मई दाव ।
ऊंच नीच निरभे मते कोई परसों पाव ॥ २ ॥
मेरे हिरदे मंहि रह्या निर्गुण ब्रह्म बिसतार ।
माई मूको भान की सार उडाऊं छार ॥
छार उडाऊं धार मोर सिर सहया न जाई ।
भजि करयादार करतार छाड़ि दूबा दुख जाई ॥
जन हरिदास काया इट ले आय झाड़ी भार ।
मेरे हिरदे मंहि रह्या निर्गुण ब्रह्म बिस्तार ॥ ३ ॥

॥ अथ उपदेश को अंग ॥

अवधि घटे श्वासे पुरा काल पहुंता आय ।
राम भजो विधि रात को जन्म अमोलिक जाय ॥
जन्म अमोलिक जाय जीव जांणें तो जांणी ।
हरि सुमिरण उर धारि आन उर इट न आंणी ॥
जन हरिदास हरि सुख अगम फेरि तहां मन लाय ।
अवधि घटे श्वासे पुरा काल पहुंता आय ॥ १ ॥

मन सज्जन एक बात घात या तुम सूं कहिए।
तजि काम क्रोध अभिमान राम राखे तहां रहिए॥
राम राखे तहां रहिए सिर जुरा जम चोट न लागे।
आतम के अस्थान जोग जरणां ले जागै।
जन हरिदास निरभै वस्तु अगह अभि अन्तरि लहिए॥
मन सज्जन एक बात घात या तुम सूं कहिए॥ २॥
गरब छाडि गोविन्द भजौ भूलि पड़ो मति कोय।
जन हरिदास हरि सी वस्तु भूला भली न होय॥
भूला भली न होय फुनिग मणि बिन क्यूं जीवे।
जहर पियाला कहर हाथि अपणा नर पीवे॥
उर अन्तरि कांटा यहूं [1]ज्ञान निजरि ले खोय।
गरब छाड़ि गोविन्द भजो भूलि पडो मति कोय॥ ३॥
आप आप कूं मारि करि आप आप कूं खाय।
आप आप कू छाडि करि आप आप तहां जाय॥
आप आप तहां जाय राम निर्भे सुख जांणे।
ता सुखि रहै समाय आन उर इष्ट न आंणे॥
जन हरिदास गोविन्द भजो मैं ते मोह चुकाय।
आप आप कूं मारि करि आप आप कूं खाय॥ ४॥

---

१ ज्ञान दृष्टि से खोज करके

जन हरिदास सिरके सटे कोई सौदा स्योंह ।
सिर सौंपो संसार कूं यहु साहिब कूं १दोह ॥
यहु साहिब कूं दोह मूल थोंड़ी मत साखा ।
राम भजनविहूत गाय गहो सतगुरु की साखा ॥
२मदन मोह मैं है रमो एक महामत मोह ।
जन हरिदास सिरके सटे कोई सौदा स्योंह ॥ ५ ॥

जन हरिदास ३रचिमा विरचि नांव निरंजन लेह ।
जामें दै अपणी कहे सा तो दूजि देह ॥
सो तो दूजि देह झूठ है नेह न कीजे ।
उलटा गोता मारि अगम अनहद रस पीजे ॥
पांच तत्त तहां मिले दुरे देखतां देह ।
जन हरिदास रचिमा विरचि नांव निरंजन लेह ॥ ६ ॥

जो तूं चाहे मुझकूं तो मान न सरधरि माव ।
मैं मारया मैं मिलूंया मैं न्यारी धरि भाव ॥
मैं न्यारी धरि भाव जाणि वेसे नहि कोई ।
परस परस रस एक और संचर नहि कोई ॥
जन हरिदास गोविन्द भया ए पासा ए दाव ।
जो तूं चाहे मुझकूं तो आनन धरि ठर माव ॥ ७ ॥

---

१ मजको है २ काम

आन वोठ ऊभा अजूं सकैं तो पड़दा डालि।
साहिब के पड़दा नहीं तूं अपणी वोड़ि संभालि॥
तू अपणी वोड़ि संभालि जागि नर जागिन सोई।
नर नारायण देह राम बिन वा दिन खोई॥
जन हरिदास अन्तरि अगह अगम वस्तु सोई भालि।
आन वोठ ऊंभा अजूँ सकैतो पडदा डालि ॥८॥
जहां जीव तहां जोर है जोर जीव के साथि।
सहर मांहि बाजी मंडो खाली पासा हाथि॥
खाली पासा हाथि साथि सब खोटा साथि।
काम क्रोध अभिमान मोह मद वहता हाथि॥
जन हरिदास गोविन्द भजो हरि निरभे आथि।
जहां जीव तहां जोर है जोर जीव के साथे ॥९॥
वैर वृक्ष हिरदे बसे दिन दिन बधतो जाय।
या वेदनि कूं हरि जडी लाय सके तो लाय॥
लाय सके तो लाय रोग कोइ रहण न पावे।
जन हरिदास तजि आन राम भजि रामहि गावे॥
भरि नरवर सींचे तिको जहर फल खाय।
वैर वृक्ष हिरदे बसे दिन दिन बधतो जाय ॥१०॥
भले मते बुद्धि ऊपजे बुरे मते बुद्धि जाय।
भले मते गोविन्द भजे बुरे मते विष खाय॥

पुर मते विष खाय पाप का तरवर बोवे ।
राम नाम मत छाड़ि काल का घरमें सोवे ॥
जन हरिदास यों जीव बुधि पल¹ देह के माय ।
मले मत बुद्धि ऊपजे बुरे मत बुद्धि जाय ॥११॥
धनि माता मैणावती पुत्र किया ²दरवेश ।
निज बुद्धि ज्ञान वताय के मसल दिया उपदेश ॥
मसल दिया उपदेश काम पे भाख्य सुखामा ।
मोसा घरमें काढ़ि नाथ की परख्या कामा ॥
जन हरिदास गोपीचंद निरमे भया मिटिगया मोह³भयदेश ।
धनि माता मैणावती पुत्र किया दरवेश ॥१२॥

॥ समर्थाई को अंग ॥

जहां जल तहां हरि थल करे थल तहां फिरि जल होय ।
कुदरत तेरी आपकी मति गति लखे न कोय ॥
मति गति लखे न कोय राम तुम सबके दाता ।
जीव हरामी खोर भई माया मद माता ॥
जन हरिदास हरि परसतां ¹गाहर किया गत दोय ।
जहां जल तहां हरि थल करे तहां फिरि जल होय ॥१॥

१ फकीर २ अपार ३ जन्म मरण का दुःख

जहां हरि राखे तहां मैं रहूं मैं राखे तहां नाही।
मैं राखे तहां मैं रहूं तो मैं बूड़ा मांहि ॥
तो बूडा मांहि नाथ या तुमसूं कहिए।
पार ब्रह्म पति छाड़ि आन मारग क्यों चहिए ॥
जन हरिदास गोविन्द विमुख भूंहूं भूला जाहि।
जहां हरि राखे तहां मैं रहूं मे राखे तहां नांहि ॥२॥
कहा [१]अमाप का मापिए वार पार मधि नांहि।
सकल वियापी संगि वसे ताहि छाडि मति जाहि ॥
ताहि छाडि मति जाहि रोग में भोग न लोई।
अरस परस मिलि खेलि पार नहिं पावे कोई ॥
जन हरिदास अवगति अगम जहां तहां सब मांहि।
कहा अमाप का मापिए [२]वार पार मधि नाही ॥३॥
राम रजा गिर सर मरू सर तहां फिरि गिर होय।
रंक राव राजा सुरंक उलट पलट पख दोय ॥
उलट पलट पख दोय नांव करता तौ करसी।
खाली भरे भंडार भरया खाली करि धरसी ॥
जन हरिदास उद्बुद कथा ऐसा समृथ सोय।
राम रजा गिर मरसरू सर तहां फिर गिर होय ॥४॥

---

१ नही मापने योग्य २ आदि अन्त

अरि भंजन अनराथ हरन गरब हरन गोपाल ।
जन हरिदास अकरन करन हरि अकल सकल प्रतिपाल ।।
हरि अकल सकल प्रतिपाल नाथ निरमे निरधारं ।
निराकार निर्लेप वार नहिं आवे पारं ।।
मन चंचल निहचल तहाँ जम का लगे न जाल ।
अरि भंजन अनराथ हरन गरब हरन गोपाल ।।५।।
बात नाथ के हाथि है करता करे स होय ।
जन हरिदास गोविन्द बिमुख सद्गति सुपनीं न कोय ।।
सद्गति सुपनाँ न कोय जीव सीव कहा भाखे ।
हरि आप आपकौं ज्ञान दे जीव कहा भाखे ।।
जन हरिदास राखे जहाँ तहाँ रहन नहिं कोय ।
बात नाथ के हाथि है करता करे स होय ।।६।।
जन हरिदास हरि अगम है पहुँचे बिरला कोय ।
साहिब की ही बंदगी साहिब ही ते होय ।।
साहिब ही ते होय भेद हरि मनकी खोवे ।
पूरब अघ अगाध करम कोटी सब खोवे ।।
अहर निहर निरमे निरगुण तहाँ मन लगे न कोय ।
जन हरिदास हरि अगम है पहुँचे बिरला कोय ।।७।।

## ॥ साध को अंग ॥

तब थी सो मति अब नहीं तब टोटा अब लाह ।
दोखी सब सोखी भया चोर भया सब शाह ॥
चोर भया सब शाह साच ले सौदा लागा ।
भजे निरंजन देव आंन अनरथ अरि भागा ॥
जन हरिदास हरि सुमरतां सब घरि सदा उछाह ।
तब थी सो मति अब नहीं तब तोटा अब लाह ॥१॥
राग दोष हिरदे नहीं करसूं करे न चोट ।
मुख मिथ्या बोले नहीं श्रवणां सुणे न खोट ॥
श्रवणां सुणे न खोट नाव निरभै सुख पाया ।
ता सुखि रह्या समाय छाडि सब छूटी छाया ॥
जन हरिदास हरि सुमरतां दूरि आन सब बोट ।
राग दोष हिरदे नहीं करसूं करे न चोट ॥ २ ॥

## ॥ साचको अंग ॥

साच सबद हीरा खरा राखे विरला कोय ।
पख पाडा लागे नहीं सो फिरि हीरा होय ॥
सो फिरि हीरा होय सीसके साटै लीजे ।
जन हरीदास भी बहोड़ि काम हीरां का कीजे ॥

भरि अभ्रन अनरथ हरन गरब हरन गोपाल ।
जन हरिदास अकरन करन हरि अकल सकल बिशपाल ॥
हरि अकल सकल बिशपाल नाथ निरमे निरधारं ।
निराकार निर्लेप वार नहिं आवे पारं ॥
मन चंचल निहचल तहाँ भ्रम का लगे न भाल ।
भरि भंजन अनरथ हरन गरब हरन गोपाल ॥५॥
बात नाथ के हाथि है करता करे स होय ।
जन हरिदास गोविन्द बिमुख सद्गति सुपनाँ न कोय ॥
सद्गति सुपनाँ न कोय जीव सीव कहा मांहि ।
हरि आप आपसौं ज्ञान दे नोब नदा भाँहि ॥
जन हरिदास राखे जहाँ तहाँ दखल नहिं कोय ।
बात नाथ के हाथि है करता करे स होय ॥६॥
जन हरिदास हरि अगम है पहुँचे विरला कोय ।
साहिब की ही बंदगी साहिब ही से होय ॥
साहिब ही से होय मैल हरि मनको धोवे ।
पुराय अघ अगाध करम काटा सब खोवे ॥
अक्षर निक्षर निरमे निरगुण तहाँ मन लगे न सोय ।
जन हरिदास हरि अगम है पहुँचे विरला कोय ॥७॥

## ॥ सुरातन को अंग ॥

सूरवीर साचै मते साचा रोपै पांव ।
पैला अरिदल जीति के राम भजन सूं भाव ॥
राम भजन सूं भावभेद कोई विरला जाणै ।
गग जमन मधि बैसि पांच पायक परि ताणै ॥
जन हरिदास साचै मतै रमै स साचा डाव ।
सूर वीर साचै मतै साचा रोपै पांव ॥

## ॥ भेखका अंग ॥

[1]कलरि बाहै खेत माहकी पूंजी खोवै ।
भेख धर्‍या भी भरम परम गति जागिन जोवै ।
परम गति जागिन जोवै खुशी खेलै ता मांही ॥
चितमांही चित विपति नाव नारायण नाही ॥
जन हरिदास ममकारि लगी बहोड़ि [2]मसीसू मसि धोवे ।
कालरि बाहै खेत माह को पूंजी खोवे ॥ १ ॥

## ॥ निर्गुण नरको अंग ॥

औगुण ग्राही जीव की सुणो संत एक बात ।
गुण छाडे औगुण ग्रहे तजि अमृत त्रिप खात ॥

---

१ ऊसरभूमी २ स्याही से

जैसाकि सब वैसा उतन छाय पंई नर खोय ।
साध समद हीरा खरा राखै बिरला काय ॥ ९ ॥

॥ बिरकता को अंग ॥

शील सज्या निरगुण दशा अन्तरि अति अनुराग ।
जनहरिदास निज निरखतां बड़ी सूसी बैराग ॥
बड़ी सूसी बैराग निज रिझै रिज तत आवै ।
सम्मुख देख साध ज्ञान गैमर चढि धावै ॥
[१]थाघै समद अथाह अगम का हीरा ल्याव ।
परखि परखि निज पारख हीरा उन हीरां मिसा ॥
प्रावतिहि ता पाइये शील सज्या निरगुण दसा ।

॥ निर्वैरता को अंग ।

आप आपकू मारि करि आप आपकूं खाय ।
आप आपणों नाश करि न्याय रसातलि जाय ॥
न्याय रसातलि जाय आपकू आप सतावे ।
काच महल बसि श्वान दसै हसि [२]दसन गमावे ॥
जन हरिदास सब आत्मा एक रूप बहो माय ।
आप आपकूं मारि करि आप आपहि खाय ॥

१ थाह लेना २ दन्त मैंवाता है ।

## ॥ हेत प्रीतिको अंग ॥

मेरा मन हरि सूं लग्या हरि मेरा मन मांहि ।
मैं हरि कूँ छाडों नहीं हरि मोहि छाडे नांहि ॥
हरि मोहि छाडे नाहि हरि आपकूं आप बतावे ।
निराकार निर्लेप साधु कूं पैंडे लावे ॥
जन हरिदास हरि सुमरतां जुरा काल भै नाहि ।
मेरा मन हरि सूं लग्या हरि मेरा मन मांहि ॥ १ ॥

## ॥ दया निर्वैरता को अंग ॥

चींटी कूँ दीजे [1]धका तबही अनरथ होय ।
तत मत का जाप जपि बुरा करो मति कोय ॥
बुरा करो मति कोय जीव पैला दुख पावे ।
सबद जगावे बीर बीर अपणा भखि आवे ॥
जन हरिदास साहिब सहत वैर पड़त है दोय ।
चींटी कूँ दीजे धका तबही अनरथ होय ॥ १ ॥

॥ इति कुण्डलिया सम्पूर्ण ॥

[1] धका देना ( सताना )

तजि अमृत विषस्वाद हरि नांव हिर्दै नहि धारे ।
कुबुधि काग कर गहै हाथ तैं हीरा डारे ॥
जन हरिदास आठौं पहर पच ऊकर धाव ।
औगुण ग्राही जीव की सुण्यो सन्त इक भाव ॥
चन्दन बिरछ उपाड़ि अहर तरवर अब रासे ।
पार मम पति छाडि विविध बांधी नर मासे ॥
विविध बांधी नर मास सेय परि माई खोवै ।
ज्ञान सिंघासण छाडि पल [1]सज्या सुख सोवै ॥
जन हरिदास हरि सुख अगम दुख सकारन सुख भासे ।
चन्दन बिरछ उपाड़ि अहर तरवर अब रासे ॥ २ ॥

॥ बैरागको अंग ॥

अकथ कथत कहि कहि थकहि सुपथ सुपथ सुखसार ।
अलख लखत लहि लहि थकहि अगम वार नहि पार ॥
अगम वार नहि पार नांव कछु धरया न जाहि ।
निराकार निजसार साध परसे सुखदाई ॥
जन हरिदास अरपित[2] अरथ हरि समर्थ सिरजन हार ।
अकथ कथत कहि कहि थकहि सुपथ सुपथ सुख सार ॥१॥

१ कांटों की सेज व कुटिया के सुख हरके पावा ।

विरखा बारामास अमीरस झेलिये ॥
हरि हां जनहरिदास आन धरम सब झूठापवनम् फेलिये ॥३॥
राम नाम तन धारि विषे विप डारिए।
सुखमनि पवन संबाहि त्रिविध रस हेरिए॥
पैंडा करणा बीर देखि पाव धरिए।
हरि हा जनहरिदास उल्टा पवन निरोध मपारा मारिए॥४॥
राजा राम बिसारि सजन्म न हारिए॥
मोटा बैरी मोह महारिपु मारिए।
काम क्रोध अभिमान अगनि मुख जारिए॥
हरि हा जन हरिदास भजि राम सकाम सुधारिए ॥५॥
पार ब्रह्म सूँ प्रीति सरीति विचारिए।
दूजा रीति अनीति हाथले डारिए॥
काम क्रोध मनि मल अगनि मुख जारिए।
हरि हा जन हरिदास अभयाम अलख उर धारिए॥६॥
अब तो एक अनूप उलटि पर धरत है।
सुनि मंडल में बैसि सु आरभ करत है॥
भजि अलख निरंजन नाथ अभै भखि जरत है।
हरि हा जन हरिदास निरभै भया निसंक साध नहिं डरतहै॥७॥
ज्ञान गुफा में पेसि अगनि पर जारिए।
[1]आठ काठ अभिमान ले तहा डारिए॥

[1] काम क्रोध को दुर करिये।

॥ श्री गुरुदेव का अंग ॥

गुर समर्थ सिरजन हार सनही राम है ।
मखि करुणानिधि करतार भजन मृ काम है ॥
बिसम न कीजै बीर [१]रंचिका बाम है ।
हरि हां गन हरिदास निरमल अंग अभंग अजब बिसरोम है ॥१॥

॥ सुमिरण को अंग ।

चंद सूर रथ भटकि निरंजन पाइये ।
उलटी पंख सँवारि तहां मन लाइये ॥
तज घट औघट घाट अगम तहां आइये ।
हरि हां जनहरिदास गगन गुफा म पसिकर गुण गाइये ॥१॥

सील सन्तोष विचारि सज्ञान जगाइये ।
उलटी पंख सवारि अगम तहां आइये ॥
निगम अगम रस एक तहां मठ छाइये ।
हरि हां जनहरिदास हरि तरवरमें वास अगम फल खाइये ॥२॥

ज्ञान चक्र ले हाथि मगन खंड खेलिए ।
परम ज्योति बिसराम तहां मन मेलिए ॥

१ [illegible]

गग जमन मधि पसि अगम तहां जाइये ।
परम जोति परकाश परम गति पाइये ॥
वार पार मधि नांही कहा कहि गाइये ।
हरि हां जन हरिदास तेज पुञ्ज एक तहां मन लाइये ॥५॥
जन हरिदास ल्यो लाय तहां चलि जाइये ।
तहां न व्यापे धूप शीत संताइये ॥
वर्षा बारामास तहां मन लीजिये ।
हरिहां जनहरिदास अगम पियाला हाथि सदा रस पीजिए॥६॥
जन हरिदास भजि राम भली यह टेक है ।
जाय बसे ता देश तहां रम एक है ॥
वकनालि चिसराम सदा हरि पाइये ।
हरि हां भिल्ल मिल होय तहां मन लाइलें ॥७॥

## ॥ कालको अंग ॥

जीवे सूता नींद अघोर मनि मद खात है ।
काल करत है ताक पकड़ि लेजात है ॥
काल तमाचा जोरि लग्या मुरझात है ।
हरिहां जनहरिदास भजि गरव हरण गोपाल वंचण की वातहै॥१॥
नर सूता जागे नहीं नींद की छाक है ।

रस पोष सात गुण तीनि भगनि सुखि सारिए।
हरि हां जन हरिदास प्रम भगनि प्रकास अगाध बिचारिए।।८।।

॥ परचाको अंग ॥

लोक लाज पल मेल्ह अपूठी पाल है।
त्रिवेणी तटि ध्यान तहां एक ताल है॥
गरम सिखा करि दूरि एह बड़ [1]साल है।
हरिहां जनहरिदास मति पूरख मद अगाध अमोलिक मालहै॥१॥
अलख निरंजन नाथ समाधि पूर है।
मजि करणहार करतार स राम हजूर है॥
दीनानाथ दयाल सबनि का मूर है।
हरि हां जन हरिदास तेज पुंज परकास अखंडित नूर है।।२।।
मनु पलाय्यों मन मांहि अचंभा होत है।
नीर बूंद निर्मोलिक हीरा होत है॥
हीर हीरा बध्या साम पोत का पोत है।
हरि हां जन हरिदास उन हीरांकी जाति हमारा गोत है।।३।।
परम सनेही राम तहां मन जात है।
बंक नालि बिसराम सदा रस खात है॥
मथिए रमता राम एह बड़ बात है।
हरिहां जनहरिदास हरि परम उदार अपार हमारा तात है।।४।।

[1] शल्य काँटा

काल जाल की चोट न सूझै जीव कूं।
माया के मुखि लागि बिसारे पीव कूं ॥
विषमूलों मति हीन खुशी सु खात है।
हरि हां जन हरिदास तैं अन्ति ममूला जात है ॥७॥
कहै आथि औधूत शक्ति का पूत है।
गाति थोंम जक नही लग्या कोई भूत है ॥
उलझि न सुलभया मूल सुरति का सूत है।
हरि हा जन हरिदास कालन छाडे ताहि दूत परि दूत है ॥८॥

## ॥ चिंतावणको अंग ॥

नरदेही नर धारि कुपह[१] उरझात है।
आसा नदी गरक मजन की बात है ॥
मोह दोह पखमाहि पसू पच्च जात है।
हरिहा जनहरिदास भजि राम अगाध साध अमर फल खातहै॥१॥
विष बन मांहि पैसि त्रिपे रस खात है।
जहां तहां तन धारि बहौडि मरि जात है ॥
जीवन है छिन बात काल की घात है।
हरि हा जनहरिदास [२]ध्यान धरम उरधारि गाड दतरात है ॥२॥

१ संसार में २ दूसरा का बन।

माया छाया नीर स [1]थरबर भाक है ॥
समझि पड़ी पर हरि काल की ताक है ।
हरि हां मनहरिदास रामभजन बिन बात सबात बेपाक है ॥२॥
जीव मोह मांझेटा माहि, गरक गहि आत है ।
काम तमाचा मोर खुसी मूं खात है ॥
संकटि पड्यां दुख होय तबहि मरिखात है
हरि हां मनहरिदास भजि परम सनेही रामभजनकी बात है ॥३॥
राम नाम मत छाडि मान सुख लेत है ।
जहर पियाला हाथ पीवत है हस है ॥
काल तकत है तोहि अज्ञान अचेत है ।
हरि हां मनहरिदास सास-समालिक भाखि [2]ऊपर क्यूँ पतहै ॥४॥
राजा राम बिसारि, कहां पर कहो हगा ।
लख चौरासी जोनि जन्म धरि मरोहगा ॥
पड्या काल की बंदि महा दुख भरोहगा ।
हरि हां मनहरिदास गर्भबास दस मास अमिमुख भरोहगा ॥५॥
बूढा हुआ नीर नैन मा झरत है ।
काल पहुता आय अजौं नहि डरत है ॥
मोह नदी में पैसि [1]बूडि क्यूं मरत है ।
हरि हां मन हरिदास रामसनेही साध भज नहीं करत है ॥६॥

---

१ भाक का पेड़ है २ ऊपर का ।

गढ करं गड़डाट सदा दरबार में ।
राम सनेही छाडि छक्या [1]भट छार में ॥
चोरासी लख चोट सहैगे धार मे ।
हरि हां जन हरिदास वेरांन वसे धसि खार में ॥८॥
कर गहि मूंछ मरोडी मच्छर मनि भावतां ।
नाना विध रस राग रजा में गावता ॥
सुत वनिता सुख सेज महल गढ मालिया ।
हरि हां जन हरिदास ते जोध स जङ्गल जालिया ॥९॥
सूँगो तेल फुलेल स अंगी लगावता ।
नाना विधि देह सँवारी महल में आवता ॥
खांन पांन बहु भोग खुशी सूं खात है ।
हरि हां जन हरिदास अंति समूला जात हैं ॥१०॥
आय झरोखे बैसि खुशी मन कीजता ।
काम क्रोध अभिमान अगनि मन छीजता ॥
देता लेता खोसी अहूं मन भावता ।
हरि हां जन हरिदास ते जोध गया पछितावता ॥११॥
पटदा रहता पोलि पहरवा जागता ।
पर धन लेता चूरी कहर होय लागता ॥

१ शूरवीर

काया बिष बन बिबिध तहां क्यूं राखिए ।
बिषफल फूल अनेक खात ही मोखिए ॥
कांटा लाग पाव तहां पड़ि चाखिए ।
हरि हां जनहरिदास लखचौरासी घर घालि पड़ाम परि नाखिए ॥३॥
चाकी छाया देखि सहर फल खात है ।
मन मही मदरको छाक ज्योंदि इतरात है ॥
राजाराम बिसारि स नरकां जात है ।
हरि हां जनहरिदास भजि पूरण ब्रह्म अगाध और सब मिथ्या बात है ॥४॥
नांव निरंजन लेह सनहीं जागि र ।
सुमका बैठा आय उखोखा काग रे ॥
नोपखा गया हिसाब लकुटिया हाथि र ।
हरि हां जन हरिदास मी भगति कमाई साथि रे ॥५॥
नाराना तन की बात सदा ही रहत है ।
छूटी जायगी कान्हि साध कही गहत है ॥
नांहि भरोसे लागि उपह स्पू भहत है ।
हरि हां जन हरिदास रामसनेही साध रामही कहत है ॥६॥
सदा सही तन आय न लागे साध मैं ।
कंचन कर सूं डारि रमा मिलि काच में ॥
जीव ही परचा नांहि कहाय राच र ।
हरि हां जन हरिदास हरि सद न माने [1]साचर ॥७॥

१ साचा ।

सकल जीव अंगी लाय सदा जागे नगी ।
हरिहांजन हरिदास माया ठगी खाया संसार सुतो साधां ठगी॥१॥
आथी बसत है साथी सदा ही रहत है ।
काम क्रोध अभिमान स आशा दहत है ॥
तृष्णा तरंग अनेक तहां मन बहत है ।
हरिहां जन हरिदास विरला कोई साध परमगति लहतहै ॥२॥
माया छाया बैसि कौंण सुख लेतहै ।
प्रीति करै या रीति कपट का हेत है ॥
जन्म अमोलिक जाय [1]ऊसर खेत है ।
हरिहां जन हरिदास भी अन्ति रसातलि देतहै ॥३॥
माया चढी सिकार तुरी चटकाईया ।
कै मारे कै मारि [2]पताखां लाईया ॥
जन हरिदास भजि राम सकल जन वेरिया ।
हरिहां मुनि जाय बसै दरबारि तहा तैं फेरिया ॥४॥
माया का दल देखि सकायर कादरे ।
[3]खिस चाल्या धसि गेत धकामें धसि परे ॥
ऊजल निरमल नांहि काले कापरे ।
हरिहा जन हरिदास हरि भेद न जानें बापरे ॥५॥

१ खारी मिटि वाला २ ढवाला की धजा ३ भग गया

सूरवीर संग्राम सगरिया गाजता ।
हरि हाँ जन हरिदास त भति गया पै भाजता ॥१२॥
माया मलत परि येमि छत्र शिर धारता ।
दहि दिस जोधा देखि मनि विसतारता ॥
पर धन पर दल चूरी खर्ड खसि मारता ।
हरिहाँ जनहरिदास तें भूप मम्म्या कालखड़ कर धारता ॥१३॥
गोपी ग्वाल न भाय गाय वन चारता ।
मथुरा मैंदी मारि पिमस खमि मारता ॥
करम् डूंगर ठोलि आर विसतारता ।
हरिहाँ जनहरिदास त भन्त गया तन छाड़ि पईत तनधारता १४
नव ग्रह पाय बाँधि सूली है बाजता ।
मोह महल में बसी लङ्क कर तामता ॥
मह गाठि उरधारि महाको नहीं खोलता ।
हरि हाँ जन हरिदास काल दसिया दह कन्ध मनिमर बोलता १५

॥ अथ मायाको अंग ॥

माह दाह में गरक सुरति काची लगी ।
नहीं राम भजन मैं प्रीति प्रथम माया मगी ॥

१ महद्वार २ रावण

## ॥ अथ उपदेश को अंग ॥

जोग मूल की बात सघात बिचारी ए ।
सौं सो हंस्या छार उमनी सब डारी ए ॥
जापिए अजपा जाप आन धरम सब हारि ए ।
हरिहां जन हरिदास अलख भजन उरधारि अलेख जुहारि ए॥१॥
त्रिवेणी तटिवास तहा क्यूं ना जाइये ।
ए पासा एडाव सीसले चाडये ॥
वोछै पांणी पैसि समद क्यू छाडीए ।
हरिहां जन हरिदास भजि अलख निरंजननाथ तहां मिलि [१]लाडीए
मनिख जन्म नग हाथि कुपह क्यूं डारिए ।
मोह महलमें सोय सजन मन हारिए ।
नख सिख लागा रोग सरोग निवारिए ॥
हरि हां जन्म हरिदास ज्ञान खड्ग हाथि काल मै मारिए ॥२॥

## ॥ अथ सूरातन को अंग ॥

[२]भडा हांक पै कंमप तीर गोली बहै ।
सुभटन ताके वोट चोट सन्मुख सहै ॥

१ लागिये २ योधा ।

माया मैं मन खाय कहा सुख सोइये ।
हीरा जन्म अपार अमोलिक खोइये ॥
गरभवास दशमास सदा दुख पाइये ।
हरिहां जन हरिदास भजि राम न छेह चुकाइये ॥६॥

जन हरिदास तजि मान भजो हरि गोरख ।
माया का दल देखि भंज्या है मोरख ॥
नरवर कैसुर मारि लिया जग कारम ।
हरिहां काली पीली हाल भसि दश बारम ॥७॥

कै भावै कै भाव पखाळै लोग है ।
माया मोह विवेक बह बड़ राग है ॥
बाहर मढ़ी जीव खोदि करै यह मांग है ।
हरिहां जन हरिदास भजि राम भया मन ओर है ॥८॥

मूक पुष्ठ संसार तहां मन लाइय ।
काल गरासै आय बहोड़ि पछिताइय ॥
रहणा नहीं निदान अकेला जाइये ।
हरिहां जन हरिदास १तसमात निरंजन गाईये ॥९॥

---

१ इस लिये (तस्मात्)

ब्रह्म अगनि मे पैसी अभख भख अजग जरै।
हरिहां जन हरिदास राम नाम व्रत धारि न आनन उरि धरै॥१॥
पांच जीव का जीव निरञ्जन राय है।
उपजिन चिनसे मूलि न आवै जाय है॥
परम पुरुष परकास साधु मन लाय है।
हरिहां जन हरिदास परगट घूंघट मांहि एक को पाय है॥२॥

॥ अथ साध को अंग ॥

[1]बोछा करै गुमान बडा कै नाहि रे।
भादू बरसै मेह नदी घर गाहि रे॥
दरिया उभलै नांहि ता माहि समाहि रे।
हरिहां जन हरिदास यूं साधि देखि जग मांहि रे॥१॥
रामसनेही साध मंडै मैदानमें पहरी सीलस[2]नाह गरक गुर ज्ञानमें।
बाजै अनहद तूर बसै धसि राममैं।
हरिहां जन हरिदास धुनि ध्यान सदा बिसराममै॥२॥
जहा जीव तहां सीव एक को जानिहै।
मनकूं पूठा फेरि सहज घरि आनिहै॥
जोग मूल की बात म वात पिछांणिहै।
हरिहां जन हरिदास भजि पूरण ब्रह्म अगाध सुनो व्रत ठांणिहै॥३॥

---

१ ओछा ( लघु ) २ कवच।

ज्ञान खड्ग ले हाथि न फिरि पूठा फिरै ।
हरिहाँ जन हरिदास सरवीर अरिभीति सहरिको हाम रहै ॥१॥
समदरूप ससार अपर उठि चालिए ।
त्याग भाग रस एक पवन पड़वालिए ॥
पिसवाँ उपरि चाटस सन्मुखि घोड़ा चालिए ।
हरिहाँ जन हरिदास पैसा अरिदल जीति परमसुख पालिए ॥२॥
भाग पथ में पैसि सपूठी न फरिए ।
ज्ञान खड्ग ले हाथि सबल गढ घेरिए ॥
ल्यौ डोरी करि साहि तहाँ मन फरिए ।
हरिहाँ जन हरिदास भजत निरञ्जन नाथ निरन्तरि हरिए ॥३॥

॥ अथ सजीवनि को अंग ॥

हरि पूरण मन अगाध अखडित राम है ।
साध बसे तादेस मुझकि निह काम है ।
पुरा काल मैं नाँही सीत नहीं घाम है ॥
हरिहाँ जन हरिदास परापरैं पति एक भजन विसराम है ॥१॥

॥ अथ पतिवरता को अंग ॥

[1]रखा तुम्हारी राम कहो त्यू मैं करूं ।
मनगहि पवन समाहि अगकि उलटो धरु ॥

---

१ आज्ञा

चाद विवाह निवारि बहौड़ि पछितायगा ।
हरिसूं नाही हेत रसातलि जायगा ॥
मदन मोह गुणमांहि गरक लपटायगा ।
हरिहां जन हरिदास राजारांम विसरिस खोटा खायगा ॥२॥

॥ इति यति चन्द्रायणी सम्पूर्ण ॥

## ॥ अथ साखी ॥ श्री गुरुदेव को अंग ॥

जन हरिदास कै ज्ञानगुर, सतगुर सिरजनहार ।
निधि[1]पाइ निरभै भया, अरस परस दीदार ॥१॥
जन हरिदास कै ज्ञानगुरु, साधों सेतीं प्रीति ।
साध सदा गोविन्द भजै, देही का गुण जीति ॥२॥
जन हरिदास के ज्ञान गुरु, गूदडियों मूं नेह ।
दुखसुख दोय व्यापै नहीं, गूदड़ियो गुण ऐह ॥३॥
गोरख हमारे गुरु बोलिए, पाढा हमारी चेली ।
संतका सबद सहज घरि खेलूं, यहि विधि दुरमति पेली ॥४॥

---

१ आज्ञा ( लघु ) २ कवच ३ चले जाते हैं ४ खजाना ।

नोट—इस गुरुदेव के अंगमें गोरख शब्द से परब्रह्म और पाडा शब्द से पहाड़ी जानना चाहिये ।

॥ अथ मन को अंग ॥

चंचल मन कूं पूरि कहां चलि जायगा ।
करि विसहर का रूप यह फिरि आयगा ॥
यही समीवण लाय कछू न पसायगा ।
हरिहां जन हरिदास हरिराय तहों उरझायगा ॥१॥

॥ अथ समर्थाई को अंग ॥

हरि जहां तहां प्रतिपाल हमारी करत है ।
हरि आप आपणां ध्यान हमारे हिए धरत है ॥
सब खलक राम सुख छाड़ि अगनि में जरत है ।
हरिहां जन हरिदास मन उलगा चल्या आकासी मारया—
नहि मरत है ॥ २ ॥

॥ कुसुमी भर को अंग ॥

[1]भनत भांत घट मांहि रैणि दिन घड़त है ।
कंचन हिरदा मांहि कायदे जड़त है ॥
उमकि चाल्या जावत आसहि पड़त है ।
हरिहां जन हरिदास मन खलक दिवांना मापि कहीं कू खड़त है॥१

[1] अनेक प्रकार की चातुरी ।

गुरु सिख दोऊ उठि चल्या, जन हरिदास हरिमांहि ।
सिख चालै गुर यहुडै, तो वै गुरसिख नांहि ॥
जन हरिदास भै सिन्धतजि, भेरै बैठा जाय ।
सो गुर सिख कूं ले चल्या, अपणे मते मिलाय ॥४॥
जो कछु गुरु सिख सूं कह्या, सो जे गुरुपै होय ।
जन हरिदास करि बन्दगी, गुरु गोविन्द नहीं दोय ॥५॥
गुरु निरभै गोविंद भजै, तैसाही सिख होय ।
जन हरिदास मत एक है, तब कहण सुणण कूं दोय ॥६॥
जन हरिदास गुरु [1]गारडू, विष झाडै झडि जाय ।
सिख शठ तो गुरु क्याकरै, सिख फिरि विषही खाय ॥७॥
जन हरिदास गुर क्या करै, सिख मूरख गुण जार ।
अमृत पाया ना पीवै, विष का पीवण हार ॥८॥
ज्ञानी गुरु सूं सिख मिलै, सो सिख भी ज्ञानी होय ।
इष्ट एक एकै भजन, तब कहिवे कूं होय ॥९॥
बात कहै आकाश की, आप रसातलि जाय ।
वा ज्ञानी गुरुसूं मूरख भला, सकै न ओर भुलाय ॥१०॥
सिख साचों साचै मतै, गुरु दीरघ भ्रम नाश ।
रहत एक ऐकै वस्त, एक दिसावरि वास ॥ ११॥

[1] गारुडिक ( विषहर मन्त्रवादी )

माई मूंडा सिद्ध कौं, भजु निरंजननाथ ।
हरिदास जन यूं कहै, सिरि गोरख का हाथ ॥५॥
दिष्टि दई सतगुरु मिल्या, हीरा लिया सुभाय ।
हरीदास जनम्१ जौहरी, खोटा कद न खाय ॥६॥
बलती अगनि बुझाय करि सीतल किया अगार ।
जन हरिदास मांदि भया सतगुरु का उपगार ॥७॥
बलती अगनि बुझायकरि, सीतल किया सरीर ।
जन हरिदास गुरु गमतैं, पीया निरमल नीर ॥८॥
जन हरिदास नाथका बालक, रहै नाथकी छाया ।
पूरवा भक्त परम सुख दाता निरमै निरंजन राया ॥६॥
जन हरिदास सतगुरु शब्द, अन्तरि लागा बाण ।
हरि हरत हरिमन हर्‌या, पत्रपत लहद न माण ॥१०॥

॥ अथ गुरु सिष२पारस को अंग ॥

गुर गिरही माया गहै सिख बैराग होय ।
जन हरिदास मत क्यूं मिलैं, परगट पैंडा दोय ॥१॥
गुर लागा संसार सूं सिख अन्तरि हरि साथ ।
जन हरिदास मत क्यूं मिले, बो कञ्चन वो काच ॥२॥

१ इधर उधर २ शिष्य

गुरु सिख दोऊ उठि चल्या, जन हरिदास हरिमांहि ।
सिख चालै गुर रहुडै, तो वै गुरसिख नांहि ॥
जन हरिदास मै सिन्धतजि, भेरै बैठा जाय ।
सो गुर सिख कूँ ले चल्या, अपणों मते मिलाय ॥४॥
जो कछु गुरु सिख सूं कह्या, सो जे गुरुपै होय ।
जन हरिदास करि बन्दगी, गुरु गोविन्द नहीं दोय ॥५॥
गुरु निरभै गोविंद भजै, तैसाही सिख होय ।
जन हरिदास मत एक है, तब कहण सुणण कूं दोय ॥६॥
जन हरिदास गुरु [1]गारड्ड, विष झाडै झडि जाय ।
सिख शठ तो गुरु क्याकरै, सिख फिरि विषही खाय ॥७॥
जन हरिदास गुर क्या करै, सिख मूरख गुण जार ।
अमृत पाया ना पीवै, विप का पीवण हार ॥८॥
ज्ञानी गुरु सूं सिख मिलै, सो सिख भी ज्ञानी होय ।
इष्ट एक एकै भजन, तब कहिबे कूं होय ॥९॥
बात कहै आकाश की, आप रसातलि जाय ।
वा ज्ञानी गुरुसुं मूरख भला, सकै न और भुलाय ॥१०॥
सिख साचों साचै मतै, गुरु दीरघ भ्रम नाश ।
रहत एक ऐकै बस्त, एक दिसावरि वास ॥ ११॥

---

१ गारुडिक ( विषहर मन्त्रवादी )

सिख सता आगै नहीं [1]रैणि पहुंती आय ।
वासिख के मति गुरु मिलै, तो मन्दि रसातलि जाय ॥१२॥
पच्छिम देस पंथ पर हरे, पूरब रहै समाय ।
या गुरुके मतै सिख मिलै, तो परि पहुंच जाय ॥१३॥

॥ अथ सुमिरण को अंग ॥

साहिबजी की मदगी कीजै मन मन लाय ।
जन हरिदास खेलौ वहां, जहां काल न परसै आय ॥१॥
अविनाशी आठों पहर मर्यों हिरदै धारि ।
जन हरिदास निरभै मतै निरभै वस्त विचारि ॥२॥
नांव निरञ्जन निरमला, मर्त्ता होय सहोइ ।
हरीदास जन यूं कहै मुसि पडै मति काइ ॥३॥
हठ करि कोई मति मरो परै न पहुंचै हाथ ।
जन हरिदास निरभै मतै भजो निरंजन नाथ ॥४॥
हरि साहि दै विसारियां ऊठि और कै साथि ।
लोक लाज पहि आयगा हीरा न आवै हाथि ॥५॥
उलटा गोता मारि करि मतरि मसतक विचारि ।
राम भजन आनन्द सदा, कदे न आवै हारि ॥६॥

---

१ रात्रि

सनकादिक जोगी जनक, मति गति लखै न कोय ।
जन हरिदास ताकूं भजो, भजतां होय स होय ॥७॥
मैं हरि सुख छाडौ नहीं. बात कहतहूँ तुझ ।
हरीदास जन यूँ कहै, मीठा लागै मुझ ॥८॥
मैं हरि सुख छाडौं नहीं, मीठा लागै मोहि ।
करम कठिन सब कंकरा ज्ञान सूप लै सोहि ॥९॥
मै हरि सुमिरण छाडो नहीं, मनकूँ मारि अटकि ।
जन हरिदास करम भरम सबतूंतड़ा[1], गहि गुरज्ञान फटकि॥१०॥
जन हरिदास निरभै भवै. भजो निरञ्जन राय ।
काल जाल लागै नहीं, सुखमै रह्या समाय ॥११॥
जन हरिदास या जीवकूं, अटकि अटकि समझाय ।
दुजि दुरमति दूरि करि, हरि चरणां चितलाय ॥१२॥

॥ अथ विरह को अंग ॥

विरहनी ऊभी दरदमूं, अबला मूं क्या मांग ।
कै मिलिहो कै तनतजूं, सुणिहो कन्त सुजाण ॥१॥

---

[1] निकम्मी वस्तु ।

जन हरिदास फाग कहै, अपणां परकी लाय[1] ।
ज्यूं आत्मा त्यूं ही नरस्या, जलि बलि रह्या समाय ॥२॥
विकल भई बिलमैं कहा, आशा चली जीव ।
हरीदास जन बिरहनी, मिलो सनेही पीव ॥३॥
अन्तरि बिरहा आइया, रोम रोम के मांहि ।
जन हरिदास को हरि मिलो, कै अब जीवण नांही ॥४॥
अविनाशी आठों पहर, अपणे हिरदै धारि ।
जन हरिदास निर्ममते, निज ज्ञान बिचारि ॥५॥
[1]फकनी खफल सरिखी, पड़रे बिरला कोई ।
जन हरिदास भ्रम अगनि में पसि करि जलि बलि कोयला होय ॥६॥

॥ अथ परचा को अंग ॥

जन हरिदास सुख अगम[2], सोधि लाई है सन्त ।
अरस परस आनन्द सदा, बारामास बसन्त ॥ १ ॥
राम तहां मूंघो सहज, पावै राग अनन्त ।
चन्दन वा होय सुबास, ले खेले सन्त बसन्त ॥२॥
जन हरिदास बसन्त रुति, फूल्या सबही बाग ।
अघमांही कौतिग भया हरिजन खेलै फाग ॥३॥

---

१ मूर्ख का कपड़ा

जन हरिदास तहां जाइये, जहा बारामास बसन्त ।
पान पहोप जाको तहा, खेलत है सब मन्त ॥४॥
जन हरिदास बसन्त रुति, खेले गोपी ग्वाल ।
हरि सन्मुख जहा का तहां, करि पहोपन की माल ॥५॥
जन हरिदास बसन्त रुति, प्रकटै राम अगाध ।
प्रेम प्रीति पहो पले खेलै चरचै साध ॥६॥
जन हरिदास परचापखै, कोडी का चौमारी ।
डाव पड्यां छूटै नहीं, कांने लीजै मारि ॥७॥
वरि आई निरभै भई, डाव पड्या यूं होय ।
जन हरिदास ता सारिकूं, पासा लगै न कोय ॥८॥
परम जोति पलटै नहीं कोटि करै जे कोई ।
लोहा कूं पारस मिले, परसी कंचन होय ॥९॥
जन हरिदास अन्तरि अगह, दीपग एक अनूप ।
जोति उजालै खेलिए, जहां [1]छाहडी न धूप ॥१०॥
विविधि पहोप सेवा विविधि, मधि मोतिन की माल ।
जन हरिदास खेलो तहां, जहां गोपी गाय न ग्वाल ॥११॥
आछा डष्ट कबीर का, अगम वार नहि पार ।
हरिदास जन मिलि रह्या, गहि गुरु ज्ञान विचार ॥१२॥

---

१ छाया ।

जन हरिदास अन्तरि अगह, परम ज्योति परकास ।
अगम ठौर आनन्द महा मन का तहां निवास ॥१३॥
तिरता तिरता तहां गया, जहां अगंमा पार ।
चित चमटि पहुंचै नहीं जहां साधों की ठौर ॥१४॥
मैं भागा निरभै भया हरि सकल बियापी एक ।
हरिदास जन यूं कहै ता सुखि पहुंता पुरुष अनेक ॥१५॥

॥ अथ चितावणी को अंग ॥

आदि अन्त गोविन्द सगा दूजा सगा न कोय ।
जन हरिदास दूजा सगा सो फिरि बैरी होय ॥१॥
जन हरिदास संकटि पड्यां सगा न आवै काम ।
राम सगा सो पाइया, कुसल करासी राम ॥२॥
चर छूटे फाटै तिमिर मन मरि सकै न धीर ।
जन हरिदास तब हरिसभा रखै बिसारै पीर ॥३॥
एक रति का सांसा जीवण पला जांणि ।
जन हरिदास हरि भजन बिन ताहूं मोहि हांणि ॥४॥
नख सख सूं पैदा किया जांणि कणित रूपा मार ।
जन हरिदास हरि बीसरया सो कहां उरामी मार ॥५॥
बीज चमकि भाम दुरं यूं सति जांणी देह ।
रिदास जन यूं कहै राम भजन करि लेह ॥६॥

मरण है जीवण नहीं, जीवत मरै न कोय ।
जन हरिदास जीवत मुए, सो अविनासी होय ॥७॥
जा मुखि राम न ऊचरै, आन कथा मन चोल ।
जन हरिदास ते मानई, काग पिलाई [1]कोल ॥८॥
जा मुखि राम न उचरे, रसनां बैठी हारि ।
जन हरिदास ते मानई, सूकर की उणिहारी ॥९॥
प्राणनाथ पति छाडिकरि, भूहु भूला जाहि ।
जन हरिदास ते मानई, न्याय हला हल खाहि ॥१०॥
जन हरिदास या जीव के दुख सुख चाले साथि ।
अब या चीरी क्यूं मिटे, ता दिन आई हाथि ॥११॥
जीव सीव कै संगि वसै, करम जीव कै साथि ।
जन हरिदास खेलो कहूं, दोऊं पासा हाथि ॥१२॥
क्या जाणु कछू कालिह है, काइज बाजे वालि ।
जन हरिदास औसर यह, तूं अपणां राम संभालि ॥१३॥
कालों के हलचल हुई, धौला बैठ आय ।
जन हरिदास गढ पालस्या, गुण गोविंद का गाय ॥१४॥
[2]अह पुर मह पुर इन्द्रपुर, स्यौ ब्रह्मा लो जोय ।
जन हरिदास दुभर दुनी, सूभर भर्‌या न कोय ॥१५॥

[1] ब्रह्मा [2] पाताल ( नागपुर )

जन हरिदास गोविन्द भजा, तजी आन उपदेश ।
भगति गति जोग्यों नहीं, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥१६॥
छांह देख तर बंबूल की, बसै बटाऊ आय ।
जन हरिदास पंडा चल्या, सूल गडी तब पाय ॥१७॥
राति बसै दिन ऊठि चलै, या संसार सराय ।
जन हरिदास दुनियां सरै पैंडै लागी जाय ॥१८॥
जग हटवाडै विसामई, मिलि बटाऊ आय ।
जन हरिदास सब जात है दिन दश [1]पीटि लगाय ॥१९॥
कोई काहू का नहीं, ए सब कोठी काज ।
साह कह्यो मधू माछरी, पदि पदि चलै कुलाज ॥२०॥
जन हरिदास पारिख परिख मथिन तह सब कोय ।
फिरि पीछे पछतायगा, जब [2]नागमा देख्या खोय ॥२१॥
जन हरिदास ऊंचा भविक, क्रिया मप हरी पीर ।
तमी भगनि महाकसी सोनै सेवा शरीर ॥२२॥
जन हरिदास संसारसूं प्रीति करी जिनि कोय ।
काल चार चूकै नहीं, दुख सुख व्यापै होय ॥२३॥

---

१ [illegible] २ [illegible]

जब ही कर कांटा लगै, तब ही धूजै मन ।
हरीदास जन यूं कहै, ज्यूं[1] किरपण का धन ॥२४॥
राजा राम बिसारि कहि, जीव रसातलि जाय ।
जन हरिदास चौरासी भरमतफिरै फिरिफिरि खोटा खाय ॥२५॥
जन हरिदास हरि नांवले, आठ पहर गक सार ।
ऐक पलक इक बीसरे, जम की बाहर लार ॥२६॥
जन हरिदास गोविंद भजो देह दुराणी वीर ।
कहौ कहां लौ राखिए, काचै भांडे नीर ॥२७॥
अविनाशी सूं आंतरो नरक कूप सूं हेत ।
जन हरिदास ओसर भलो, चूका भला अचेत ॥२८॥
राम समद न्यारा रह्या, पांव पड्या जंजीर ।
जन हरिदास नर भूला फिरै, मनि धरि सकै न धीर ॥२९॥

## ॥ अथ मन को अंग ॥

फूटै कुम्भन जल रहै, वहता कहै न राम ।
जन हरिदास गोविन्द भजो, जाकै मनि विसराम ॥१॥
जन हरिदास मनसा बसा, तहां बसै हरि नीर ।
कनक कठौरे [2]ठाहरै, बागणि बप का खीर ॥२॥

१ मूँजी २ जम जाता है ।

सीस मयोस्थिर मयमया, दीन्हा साहगी ठोर ।
मन हरिदास मन मसकरा, मन की उन्टी दौर ॥३॥
मनहीं दे मन फरिक मन का तज विकार ।
तब मन हरिदास पैंडा छूटे वाकी रहे भार ॥४॥
मनसा को वैरी नहीं, मनसा समा न कोय ।
मन हरिदास मनसा का पसमी मन फिरि कंचन होय ॥५॥
मन झूठा कथ कथ मुवा, फरि पड़े तो राम ।
हरीदास मन मैं कद नहीं भोर का काम ॥६॥
जाके नख [1]मस (कर मुख) सिर नहीं चरन नासिका नाहीं ।
ऐसा मन [2]मवासीया, काया नगरी माही ॥१७॥
मरा मारया नां मरे, भोर बाट है भाय ।
या आरी बहो रूप करि पुठा बैठे भाय ॥८॥
सब भाय तब मारिए दाकी ठौड़ उठाय ।
गुरु की सबदा[3]मुंकि करी, ज्यूं मन मनसा कूं खाय ॥९॥
मन हरिदास भालसकदो ज्ञान तुखा मन होसि ।
मन दीन्हा सांई मिल माया मिले न मासि ॥१०॥
ज्ञान ध्यान सुधि बुधि गई, भाव गया मे भाय ।
मन हरिदास सलास गया तब मन दीपा दीपा मुस्काय ॥११॥

---

१ मन ( मेर ) मौद्दामर ३ मीठ मर

निज कर तूति कमाण करि, सुबुधि [1]चिलाले चारि ।
ज्ञान ध्यान का वांण करि, मनमे वासी मारी ॥१२॥
हिरदाहु जरा अजब है, फेरि तहां मन आंणि ।
जन हरिदास तीमू तखत, तहां [2]तगोटी तांणि ॥१३॥
जन हरिदास घटना घटा, सुरति दांमणी देख ।
मन पांणी पाणी मिल्या, परस्या नहि अलेख[3] ॥१४॥
जन हरिदास तत तेजका, मव घटि गरगें आय ।
मन पांणी मनमा घटै, वरसत गया विलाय ॥१५॥
सदा सनेही राम है, ताही सूं मन लाइ ।
जन हरिदास देही सहत (घौला कहा) दीजै अगनि जलाइ ॥१६॥
[4]सूई मूई [5]धाका थक्या, कंथा सीवै कोण ।
(जन हरिदास) मन दरजी जहांका तहां करै ओरही गोण ॥१७॥
माई मूँड मनकी, जे कितहूँ चलि जाय ।
जन हरिदास कंठ ते गया, कहि सरप कौणकूं खाय ॥१८॥
मन निर्मल निरभै मतै, छाडै सबै विकार ।
जन हरिदास तब पाइये, अलख पुरख भरतार ॥१९॥
जन हरिदास सतगुरुसबद, तहां मन रह्या समाय ।
अवधू मोटै जांणिये, चूणि चूणि मनकूं खाय ॥२०॥

---

१ प्रहांच (नेत्र) २ नड़ ३ अलक्ष्य (अदृ) ४ मनमा स्पसूई ५ मन (मन)

## ॥ अथ माया का अंग ॥

भूखा सब भूखी भख्या माय्या काई नारि ।
भोरो है परमोधवे, मायया नरको मारि ॥१॥
जन हरिदास साखी सबद सब कोई कहै बणाय ।
कहत कहत माया मिली, कौण भेद किस माय ॥२॥
माया छाया येसि करि, सीम महर फल खाय ।
जन हरिदास या बीबहु, काल पकड़ि ले जाय ॥३॥
मोह अगाय तृष्णा ढरी, चित चोगानों हाथि ।
जन हरिदास मायादड़ी, चसैन काई साथि ॥४॥
मरे हर चोगान विचि, तृष्णा तुरि न खाय ।
जन हरिदास केते गए, माया [१]गीर मुहाय ॥५॥
मनमै की कथनी कथै, भतरि लागी लाय ।
मंमारी पै प्रीति ज्यूं मन माया कु जाय ॥६॥
जन हरिदास मायानरां मारै भंगि समाय ।
पहली सज्जन है मिलै, पछै [२]पिसवाई वाय ॥७॥
जन हरिदास माया मिल्या, सो मन मिलै नहिं आय ।
इसा औगुण को नहीं, माया लिया हुवाय ॥८॥

---

१ माया पाव २ को ।

जन हरिदास माया विरछ, फल विकार रस रूप ।
ता तरवर पंखी बसै, न्याय सहै सिर धूप ॥९॥
माया भैंसि विराट वप, जीव विलम्बे आय ।
काल काग छाडै नहीं, वै लागै वो खाय ॥१०॥
तेल मांही माखी पड़ी, तन का हूवा भंग ।
जन हरिदास माया मिल्या, तिन का योंही ढंग ॥११॥
माखी तै गुड में गड़ी, तली कडाही मांहि ।
जन हरिदास मीठें ठगी, तू मति मीठो खांहि ॥१२॥
माया की छाया रहै, कहै अगम की बात ।
हरीदास जन यूं कहै, यां सारो की घात ॥१३॥
माया देख्यां मन खुशी. मुलकि पसारे हाथ ।
जन हरिदास तू मति करै, वां सो रौं को साथ ॥१४॥
माया देख्यां मन खुशी. विछड्यां वहोत वियोग ।
ऐ [1]बुग ध्यानी बापड़ा, कैसे साधे जोग ॥१५॥
जन हरिदास सांसा मिट्या, माया की गमलद्ध ।
रूशिरह्या ते ऊभरथा, खुशी हुवा ते खद्ध ॥१६॥
जन हरिदास माया तजी, जहां माया तहां रोग ।
तीन लोक को राजदे, तो भी विपति वियोग ॥१७॥

---

1 बुगलो

ाला मोह काला करैं, चोटी ऊपरि चोट ।
न हरिदास निरभै मतै, गहो राम की वोट ।।३।।
ुनियां मूं दिलदे मिले, साधां मूं उरि और ।
हरिदास जन यूं कहे, पहुँचैंगे किस ठौर ।।४।।
आप भजन कूँ आलसी, औरो कू दे भाड ।
जन हरिदास हरिते विमुख, पसू पडैंगे खाड ।।५।।
जन हरिदास सुख अगमहै, मथि काढै ते संत ।
जल थोडा आंधी गणी, ऐसा ज्ञान अनन्त ।।६।।
मौंहि मांहि अन्तरि विथा, बोलै मीठे भाय ।
जन हरिदास [1]निगुरा तिके, निहचै नरकां जाय ।।७।।
गुण पोखे निरगुण कथै, सुरति न लागी साचि ।
जन हरिदास काचै मते, बहौत गया यूं नाचि ।।८।।
[2]ज्ञान ध्यान पोथ्यां लिख्या, हिरदै सक्या न राखि ।
जन हरिदास ता साधकी, हितदे सुणी न साखि ।।९।।
चाल्या था पणि बाहुड्या, हीरा बैठा हारि ।
जन हरिदास कोडीरता, तिनका संग निवारि ।।१०।।

---

१ गुरु को नहीं मानने वाला २ पाखण्डी साधु पोथियों का उपदेश दूसरों को सुनाते हैं पर अपने हृदय में कुछ नहीं रखते हैं ।

नोट—मैंफलों में राजाओ को प्रसन्न करने वाले गवैये उनके गाने से राम प्रसन्न नहीं होते है ।

माखी माहै काया करा, पकरि बैठी आय ।
जन हरिदास मो जन भला, माखी दूर उड़ाय ॥१८॥
छल बल करि जहाँ की तहाँ, पड़ी मेंम आय ।
जन हरिदास गोविन्द बिमुख, ताकू [1]माखी खाय ॥१९॥
राम मर्म मो ऊबरे, सत गुण सरस आय ।
जन हरिदास ता साध कूं कर्दे न माखी खाय ॥२०॥
माया सर्प भयारहै फिरि लागा सब जीव ।
हरिदास मन मु कहै, कर्म परम पीव ॥२१॥
माया पाप विविधफल, दुःख सुख फल फरक ।
(जन हरिदास) चौरासी लख जीवसब मधु कर हाय गरक ॥२२॥
संग किया सांपणि हसे, माय भैपारे खाय ।
(जन हरिदास) एक विरह की छांहरी, कहा मुक्ति क्यों माया॥२३॥
काया माया झूठड़ै, माव न ओप्या धीर ।
(जन हरिदास) कहि काकी मागी तृपा,(पीना)मृग तृष्णा को नीर२४

॥ स्वर्णिक को अंग ॥

कीरतन्या कांपै मही, सपै न केवल राम ।
जहां तहां नाचत फिरै माया मिले न राम ॥१॥
चोटी ऊपरि चाट कै लागी कै आगसी ।
सदो राम की चोट व नर निरमै आगमी ॥२॥

---
१ तृष्णा रूप ( माखी )

माला मोह काला करे, चोटी ऊपरि चोट ।
जन हरिदास निरभै मते, गहो राम की ओट ॥३॥
दुनियां मूं दिलदे मिले, साधां मूं उरि ओर ।
हरिदास जन यूं कहे, पहुँचेंगे किस ठोर ॥४॥
आप भजन कूं आलसी, औरो कू दे आड ।
जन हरिदास हरिते विमुख, पसूं पडेंगे खाड ॥५॥
जन हरिदास सुख अगमहै, मथि काटै ते संत ।
मल थोडा आंधी गणी, ऐसा ज्ञान अनन्त ॥६॥
मोहि मांहि अन्तरि त्रिथा, बोलै मीठे भाय ।
जन हरिदास [1]निगुरा तिके, निहचै नरकां जाय ॥७॥
गुण पोखे निरगुण कथै, सुरति न लागी साचि ।
जन हरिदास काचे मते, बहोत गया यूँ नाचि ॥८॥
[2]ज्ञान ध्यान पोथ्यां लिख्या, हिरदै सक्या न राखि ।
जन हरिदास ता साधकी, हितदे सुणी न साखि ॥९॥
चाल्या था पथि बाहुड्या, हीरा बैठा हारि ।
जन हरिदास कोडीरता, तिनका संग निवारि ॥१०॥

१ गुरु को नहीं मानने वाला २ पाखण्डी साधु पोथियों का उपदेश दूसरों को सुनाते हैं पर अपने हृदय में कुछ नहीं रखते हैं। नोट—मैफलों में राजाओ को प्रसन्न करने वाले गवैये इनके गान से राम प्रसन्न नहीं होते है ।

छोरि करी पारी पर, बैसि ग्यान की छाह ।
हरीदास जन यूं कहै, ताकी झूठी बाह ॥११॥
आपाकी आंगी पड़ी, दुःख सुख व्यापै दोय ।
जन हरिदास चौथी दशा, चतुरन पहुँचे कोय ॥१२॥
जहां आयो तहां भीतरो, करुणा सागर दूरि ।
जन हरिदास आपो मिट्यां, है हरि सदा हजूरि ॥१३॥
पैंडे एक आपा चले, पग दस पूठा जाहि ।
जन हरिदास कहणी कहा, रम मां रहणी मांहि ॥१४॥
मनसा का बादल भया, काम क्रोध अज घोर ।
जन हरिदास कहणी सरस, रहणी बड़ी कठोर ॥१५॥
आप चढ़ि ऊँचा भया, कोटि कर्म ले साथि ।
तोड्या था हरि हम कूँ, काढ़ी आई हाथि ॥१६॥
सिव सदा मनमें बसे, मींडक गरजे आप ।
एक दिखाई आप की, सहजे सिरमें खाय ॥१७॥
जनहरिदास कहरि गरजि अधुक मरै न जान ।
जब ऊ हरि कै [१]हरि मिले तब गाज्यां परवान ॥१८॥
[२]मोटा माया मानइ हाल बधाय वाहि ।
जन हरिदास ताकी मैंगति, ना पहुँचाव वाहि ॥१९॥

१ नरसिंह भगवान २ बनावटी साधु ( माया मन का चलन वाद )

अरथ करे अनरथ नहीं छूटे, तातें फिरि फिरि भांडा फूटे ।
हरिदास जन ऐसा कहै, कोई उलटा खेलि परमपद लहै ॥२०॥
मौनी बाहणि जोयके, ऊपरि बैठा साह ।
जन हरिदास या विधि जमे, तोटा घणा कलाह ॥२१॥
भूख प्यास संकट सहै, सह विडांणा भार ।
जन हरिदास मौनी बलद, कासूं करे पुकार ॥२२॥
उलटी ने सुलटी कहै, ऊँधी ने मूँधी ।
जन हरिदास नौसे डसी, दुनियां चक चूँधी ॥२३॥
कहा कागद कहां मनिए दिल, लिखी माध की बात ।
करतें छूट्या लागी पवन, उड्या उड्या जात ॥२४॥
भूठेकर आधा कीया, मनकी मिटी न रेख ।
जन हरिदास तर सुत जल्या, ए संगति का गुण देख ॥२५॥
पान अगनि मुखि ऊबरे, गोला ताता होय ।
जन हरिदास साची सगति, जलत न देख्या कोय ॥२६॥
हेम अगनि मुखि जालिए, धातो संगि लगाय ।
जन हरिदास कंचन तिको, विके लोह के भाव ॥२७॥
लोहा जलमूं धोइये, तव लगि कांटा खाय ।
जन हरिदास पारस मिल्या, महगे मोलि विकाय ॥२८॥

## ॥ भरम विध्वंस को अंग ॥

ज्यूं[1] मूरति त्यूंही सिला, राम बसे सब मांही ।
जन हरिदास पूरण ब्रह्म, बाटि बाधि कछु नांही ॥१॥

---

१ बिना प्रीति कोई भी फल नहीं देता है ।

[1]जैन धरमकी बातड़ि सांभलि मनवा वीर।
ऊजड़ि कूप ऊँजाड़ि में, जहां छाया नहि नीर ॥१०॥
जैन धरम की बातड़ी, सुणत सुणत भया भोर।
जन हरिदास जहां का तहां, घरमै मै तैं चोर ॥११॥
पांच तत्व का पूतला, रज वीरज की बूंद।
ऐके घाटी नीसरथा, बांमणि खत्री [2]सूद ॥१२॥
देवल मांही देव है, घटि घटि धरथा बणाय।
जन हरिदास या [3]चूंधिहै, तूं गुण गोविन्द का गाय ॥१३॥

## ॥ अथ भेख को अंग ॥

भेख पहरि भांडी करी, फेरि धराया नाव।
जन हरिदास स्वामी पणां, वहौड़ि रोग में पांव ॥१॥
जन हरिदास बादल बिगति, बूठों व्योरा होय।
भेख बरा बरि करि मिल्या, सुमिरण का सुख दोय ॥२॥
जन हरिदास गोविंद विमुख, तिनसिरि जमका हाथ।
बाहरि मूंडत देखिए, भीतरि [4]सलवा साथ ॥३॥
जन हरिदास कहै या जगमें, एक अचंभा भारी।
हम टोपी काहे कूँ पहरे, उलटी चाल हमारी ॥४॥

१ शून्य २ शूद्र ३ चका चौंध ४ कपट।

मायस परमेश्वर किया, सो तौ करता नाहि ।
जन हरिदास करता पुरसि, व्यापि रह्या सब मांही ॥२॥
नहि सेवग सूं वैरतर, नहि सेवग सूं प्रीति ।
[1]करम तजि गोविन्द भजै, या साधों की रीति ॥३॥
लोक दिखावा मति करो, हरि देखे त्यूं देख ।
जन हरिदास हरि अगम है, पूरण ब्रह्म अलेख ॥४॥
जन हरिदास साची कहै, साहिब जी की [2]साँह ।
[3]पाहण कू करता कहै, ताका काला मौंह ॥५॥
जैन धरम माया सरूप परस्यां लागे पाप ।
जन हरिदास निरमै भजै, अलख निरंजन नाथ ॥६॥
साची कहां सुणावतां, मति को माने रीस ।
अलख निरंजन छाडि कै, मंडे मरम चौईस ॥७॥
जैन धरम सबतैं बुरा भला कहै मो कोय ।
(जन हरिदास) घना घर में सप ह, वहां न कीजे [4]गोय ॥८॥
जैन धरम सोध्या सब, ज्ञान सप ले हाथि ।
(जन हरिदास) फटकि फटकि फटकूं कहा,
( काइ ) कुछ्या का लग न हाथि ॥ ९ ॥

---

१ मानार्थ कर्म २ शपथ ३ पत्थर ४ गमन कोई भी कुछ नहीं मिलता है ।

[1]जैन धरमकी बातड़ि सांभलि मनवा वीर।
ऊजड़ि कूप ऊजाड़ि में, जहां छाया नहि नीर ॥१०॥
जैन धरम की बातड़ी, सुणत सुणत भया भोर।
जन हरिदास जहां का तहां, घरमैं मैं तैं चोर ॥११॥
पांच तत्व का पूतला, रज वीरज की बूंद।
ऐके घाटी नीसर्या, बांमणि चत्री [2]सूंद ॥१२॥
देवल मांही देव है, घटि घटि धर्या भणाय।
जन हरिदास या [3]चूंथिहै, तूं गुण गोविन्द का गाय ॥१३॥

## ॥ अथ भेख को अंग ॥

भेख पहरि भांडी करी, फेरि धराया नाव।
जन हरिदास स्वामी पर्या, बहौडि रोग में पांव ॥१॥
जन हरिदास बादल विगति, बूठो व्योरा होय।
भेख बरा बरि करि मिल्या, सुमिरण का सुख दोय ॥२॥
जन हरिदास गोविंद विमुख, तिनसिरि जमका हाथ।
बाहरि मूंडत देखिए, भीतरि [4]सलवा साथ ॥३॥
जन हरिदास कहै या जगमें, एक अचंभा भारी।
हम टोपी काहे कूं पहरे, उलटी चाल हमारी ॥४॥

१ शून्य २ शूद्र ३ चका चौंध ४ कपट।

सांग काढि साहरा हुआ, हीरा नाया हाथि ।
जन हरिदास तोड़ों लयो, तब सब हू ता साथि ॥५॥
जन हरिदास तोडो लयो, तममय हू ता माथि ।
सग तोड़े संगही हुवा, कछू न आया हाथि ॥६॥
निरमै पद गावे नहीं गाई अ रमराग ।
हरीदास जन यूं कहे, [१]मोड़ा मक्खा न काग ॥७॥

॥ अथ माष को अंग ॥

मिथ्या सपद न बोलिए, जन हरिदास हुई मान ।
कमल कुछ लागी नहीं, [१]पारजात के पान ॥१॥
घर[१]कदर[२]कदरज[३]बिरछ, मी कदरज फलपात ।
जन हरिदास ता बिरछ फल, बिपति नदी घरि आत ॥२॥

॥ अथ साम को अंग ॥

तेज कड़ाही मलत है, फलबिन अजन बुझाय ।
जन हरिदास सीतल भया, अब चंदन पईता आय ॥१॥
काम क्रोध तृष्णां तजी, त्रिविध ताप का नास ।
राम नाम हिरदै सदा, जन हरिदास तू दास ॥२॥

गूदड़ियो आछै मंत, भजै निरञ्जन राय ।
जन हरिदास ता दास की, महिमा कही न जाय ॥३॥
चितमांही चितले रह्या, समरथ सिरजन हार ।
जन हरिदास ता साधका, मिलि कीजै दीदार ॥४॥
पाव पलक छाडै नहीं, हिरदा ते हरि नांव ।
जन हरिदास साध की, मै बलिहारी जाव ॥५॥
आठों पहर भजै अविनाशी, एह भेख मन मांही ।
[1]रुंठमूंड कहा टोपी पहरया, देह भरोसा नांही ॥६॥
राम भजन आनन्द सदा, आठों पहर अछेह ।
राम भजन विन मानवी, [2]वादि गमावै देह ॥७॥
ना कांहू मूं वैरता, मोहन बांधै साध ।
जन हरिदास आठोंपहर, भजिए राम अगाध ॥८॥
भाव भगति गोविंद भजन, जाकै हिरदै होय ।
जन हरिदास ता साधकू, गंजिन सकै न कोय ॥९॥
भाव भगति गोविंद भजन, दया द्रिढपण दाखि ।
जन हरिदास गुरज्ञानगहि, ए साथी संगि राखि ॥१०॥
परम सनेही राम है, कै राम तुह्मारै सन्त ।
जन हरिदास हरि भजन विन, पासी और अनन्त ॥११॥

---

१ मस्तक मूंडाने और टोपी पहिनने से जम नहीं छोड़ेगा २ वृथा ।

अकलत निरञ्जन नाथ सति, सति रामराम का साथ ।
( जन हरिदास वरनूँ कहा ), या तो बात अगाध ॥१२॥
मनउलटा चल्या आकासकूँ, पवन सुरति ले हाथि ।
जन हरिदास ता साधकै, सदा निरञ्जन नाथ ॥१३॥
सास्त्रों को लागै नहीं, मथिए फक्कल राम ।
जन हरिदास ता साध का, निरभै पद विसराम ॥१४॥
नरक स्वर्ग सब पर हरया, सतिगुर ग्यान विचार ।
जन हरिदास ता साधकूँ, सन्मुखि सिरजनहार ॥१५॥
जन हरिदास सो जन भला, भजै अखंडित राम ।
राग दोष मैं है नहीं, जोग मुक्त मैं काम ॥१६॥
अजब रहए रहसी अजब, अजब बात मैं हेत ।
जन हरिदास खेलै तहां, (कोई) कोई साध सुचेत ॥१७॥
गुदड़ियो निर्में मसे, चालै उलटी चाल ।
जन हरिदास ताकी संगति, जम तप करै निहाल ॥१८॥

॥ अथ [1]मधि को अंग ॥

वैरागी गृह मन तजै, मधि के पैंडै जाय ।
जन हरिदास आपारहत, सुख में रहे समाय ॥१॥

---

1 मध्यस्थ ।

## ॥ अथ उपदेश को अंग ॥

सीख भीख की बातड़ी, सांभलि मनवा वीर ।
भीखत मीखत ही पड़ै, होय समंद मूँ सीर ॥१॥
बात कहत पैंडा थकै, चलतां होय सहोय ।
जन हरिदास हरि धाम तहां, पहुँचे विरला कोय ॥२॥
अजब साखी साचा सबद, घर में रहे न सोय ।
जन हरिदास गोविन्द भजो, पला न पकडे कोय ॥३॥
इत उत चितवनि छाड़िदे, मनसा मरै तो मारि ।
जन हरिदास हीरा जन्म, कोड़ी सटै न हारी ॥४॥
जन हरिदास लीजै नहीं, कंचन बदलै काच ।
जो कछु गया स जांणरे, तूं रहता मूँ राच ॥५॥
रहता रमता राम है, दूजा कोई नाहि ।
जन हरिदास यूं जाणिकरि, सो राख्या मन मांहि ॥६॥
आज्ञा मांगूं अगम की, अगम सुगम यूं होय ।
हरिदास जन यूँ कहै, भूलि पडो मति कोय ॥७॥

## ॥ अथ विचार को अंग ॥

जन हरिदास कहिए कहा, देख्या सोचि विचारि ।
झूठा सुख सूं लागि करि, हरि सुख चाल्या हारि ॥१॥

## ॥ अथ विश्राम को अंग ॥

पूरण हारा पूरि है, जन हरिदास हरि राय ।
सब घट कीट पतंगलों, जहां तहां रह्या समाय ॥१॥
सांई सबकूं देत है, पहोरि कबहूं नहिं लेत ।
हरिदास मन यूं कहै, थाकूं सेवाही न हेत ॥२॥
जन हरिदास दातारसूं, दूजा कोइ नांही ।
मनबुध करि सबतें अगम, व्यापि रह्या सब मांहीं ॥३॥
ऐसा कोई एक है, बीस तीस तो नांहि ।
आलस त्यागों मन सथिर, निरखै हरिपद मांहि ॥४॥
आलस त्यागों मन चलै, सो भागिर मिथ्या काम ।
जन हरिदास उथम भजन मजै निरंजन राम ॥५॥
अजगर उधम करत है, आलस त्यागों दोय ।
जन हरिदास बैराग मत, तहां कछु उधम न होय ॥६॥
गहि उधम भवगति मजै, गङ्ग अर्मन मधि वास ।
जन हरिदास तब देखिये, परम जोति परकास ॥७॥
परापरैं पूरण ब्रह्म, तहां मन रह्या समाय ।
जन हरिदास ऐसा उधम, और दसिम कूं खाय ॥८॥
तनका उधम कहां रहै, जब मन पंगुल होय ।
जन हरिदास मृतगपणां, पलट न देख्या कोय ॥९॥

जे कबहु मृतक चलै, तो बीचि विटम्ब कोई और ।
जन हरिदास मूंवां पछै, नहीं कुटम्ब में ठोर ॥१०॥
सतरज तमस [1]षटऊरमी, मै तै मोह जात मुख गोय ।
जन हरिदास विज्ञान व्रत, तहां उद्यम नहि होय ॥११॥

## ॥ अथ पतिवरता को अंग ॥

सेवग हाजरि चाहिजे, साहिब सदा हजूरि ।
पून्यूं पूरा चन्द ज्यूं, जहां तहां भरपूरि ॥१॥
वार पार मति गति अगम, आदि अन्ति मधि नांहि ।
जन हरिदास आनन्द सदा, प्राण बसे ता माहि ॥२॥
ब्रह्म ज्ञान व्रत निंदता, भला न कहसी कोय ।
जन हरिदास एक छाडि दूजा भजै, जै दूजा मति होय ॥३॥
दूजी पूजा कालकी, पकडि काल ले जाय ।
(जन हरिदास) राम छाडि दूजा भजे, ताहूँ मिलै बलाय ॥४॥
जन हरिदास याही कठिन, सबको चाहै माल ।
कहिंधूं कैसै मानिये, पिव [2]बिहूणी बाल ॥५॥
चौद अमर वर वरण तजि, सुखमें सुरति निवास ।
पतिवरता पति कूं मिले, कै निस दिन रहै उदास ॥६॥

---

१ भूख, प्यास, नींद, आलस्य, शोच, मूत्र ये छ ऊर्मियां हैं २ विना ।

## ॥ अथ विरक्तता को अंग ॥

बैरागी माया तजै, राम भजन मैं प्रीति ।
जन हरिदास लेखो कहूं, देही का गुण जीति ॥१॥
हाटां बाटों ही रह भजै निरञ्जन नाथ ।
मान कथा मानै नहीं, हरि भक्तों को साथ ॥२॥

## ॥ अथ समर्थाई का अंग ॥

आगा पीछा रामजी पूरण ब्रह्म अगाध ।
हरीदास जन यूं कहै, तासुखि लाग रह्या सब साध ॥१॥
राम दया सन्मुखि सदा, पै हरिजन सन्मुख होय ।
काल जाल लागै नहीं, पाछा लगै न कोय ॥२॥

## ॥ अथ सूरातन को अंग ॥

कौडी रूप सभारि है, हीरा रूप पसारि ।
लेगा कोई का हरी, मैल्है सीस उतारि ॥३॥
भगनि दहै दुख पाइय, बुद्धि बल कछु न बसाय ।
यूं ऊंधा मूं गिर पड़ी, पर दुःख सहै बलाय ॥४॥
तन टूटो झटका हुई, रती न मानि सक ।
खेत खरं मन थिरि रहै, रे दाहखी निसक ॥५॥

सन्मुख है श्रवणां सुणी, तैं आपणी सूं वालि ।
खागा मुहि खिसता खियां, रे दोहली दयालि ॥६॥
दया यह साधां सुपह, चाली निजघरि ताकि ।
जन हरिदास यूँ जांणिये, वहौड़ि न चढई चाकि ॥७॥
राम भजे निरभै थकी, तकी न कोई वोट ।
लागी पणि भागी नहीं, उरपांहण की चोट ॥८॥
भागो को भै को नहीं, जे मन मांडै धीर ।
परवत सुत सूं वाजि करि, नीको राख्यो नीर ॥९॥
[1]लछमीसुत [2]अरु गिरसुतां, आज मंड्यो भारथ ।
पिसणां मांही पैसि करि, भला दिखाया हथ ॥१०॥
सूरवीर साचै मतैं, भजै सनेही राम ।
जन हरिदास ता साध का, सेगे सही मुं काम ॥११॥
सिर तेरा तूं सिर धणि, मुझ सिर मूं क्या काम ।
सिर है विषका तूं वड़ा, तूं सुख सागर राम ॥१२॥
सीस देणकी होड़ है, तूं अपणां सिर देह ।
जन हरिदास सिरकै संटै, राम रतन धन लेह ॥१३॥
जन हरिदास हरि मिलण कूं, अंतरि कीया विचार ।
जो सिर साटै हरि मिलै, तो सिर सौंयों सौवार ॥१४॥
जोग पंथ पग मति धरै, धरै तो सीस उतारि ।
हरीदास जन यु कहै, योंही अरथ विचारि ॥१५॥

१ धनवान २ विद्वान् ।

अगम सिंघासन अगनिसम, काया र्टि न काय ।
जन हरिदास बैठा तहां दिन दिन आनन्द होय ॥१६॥
जन हरिदास मैदान में, सजठ है [1]गाडारि ।
कोल्यो अर्थ एक को, लेवे [2]पंतै मारि ॥१७॥
सिंघ मखो बिपहर डसो, माँथे अपा सू माय ।
जन हरिदास गोपिन्द भजा तनसू सुरति सुकाय ॥१८॥
कायर सू कायर मिले सूर मिलै सति सूर ।
जन हरिदास आनन्द सदा, बजै अनहद तूर ॥१९॥
सर ठलटि वसुधा मसि परबत परबत नांहि ।
मिनपांसों ऊंचा ठभ्या, पस्या आकासों मांहि ॥२०॥
सर ठमड़गि ठलटि गङ्गा आया गस्या सूर ।
जन हरिदास तब देखिए, नैना मांही नूर ॥२१॥
पांच इन्द्रि फरि फरि राम भजन करि सूर ।
जन हरिदास कायर परा, काल बजावै तूर ॥२२॥
जन हरिदास पीव पासिए पांच भटकि स्यो खाई ।
हावे करि मरतक पर्ड सूरा सन्मुख आइ ॥२३॥
सीस उतारयां खरियां, छाकी तनकी आस ।
अन्तरि राता एक सूं परम ज्योति परकास ॥२४॥

१ पुरुषों के बड़े बैठ कर २ बैर बहुत कर ।

## ॥ अथ करना को अंग ॥

एक दिहाडे इन्द्रकूं, पकडि पछाडे काल ।
हरिदास जन यूं कहै, गोपी रहै न ग्वाल ॥१॥
रामदया न्यारी रहो, राखण हारा कोडि ।
जन हरिदासता जीवकूं, काल गहै घट तोडि ॥२॥
राम नाम व्रत छाडिकै, जहां तहां जीव जाय ।
जन हरिदास ता जीवकूँ, काल तहां ही खाय ॥३॥
जन हरिदास गोविन्द भजो, गहि गुर ज्ञान विचार ।
कर कमाण के सर लिए, काल खड़ा दरबार ॥४॥
देह गेह है जायगी, मोहि पडैगी मार ।
जन हरिदास गोविन्द भजो, गहि गुरु ज्ञान विचार ॥५॥
हरि सुख सागर पर हर्या, कीच रह्या लपटाय ।
जन हरिदास ता जीव कूँ, हिलीयो ल्हाडो खाय ॥६॥
माया के घरि जम बसै, दाव पडै तब खाय ।
हरिदास जन यूं कहै, हरिजन तहां न जाय ॥७॥
जैं जनि पहला नहीं, जन्म जन्म की श्रास ।
जन हरिदास सतगुरु कया, तहां काल की पास ॥८॥

जन हरिदास मोटी बिथा, करम काल सीस मांहि ।
राम भजे सो ऊबरे, दूजा छूटै नांहि ॥६॥
काल दहूं दिस देखिए, जहां तहां मरपुरि ।
जन हरिदास गोबिन्द भजै, सो काल भाज मैं दूरि ॥१०॥

॥ अथ काजीनी को अंग ॥

ओषध अमन अनूप है जरै तो पुरा न खाय ।
जन हरिदास छुटै बिथा, सुख में रहै समाय ॥१॥
गूंगा ई ओषध दई, खायर करी [1]ठखाय ।
जन हरिदास ता जीवका, पूछा नहीं जंजाल ॥२॥
ओषध मरे सो मन मरै खायर करै ठखाल ।
जन हरिदास ता जीवकूं अति [2]धारासै काल ॥३॥

॥ अथ दया निर्वैरता को अंग ॥

पीटी [3]कीटी है रही, रतीन मांने संक ।
पर्गां तली रौंघी मरै, माथे चढै कलंक ॥१॥

॥ अथ साध महिमा को अंग ॥

जन हरिदास आनन्द भइ, मन मपणा परमोधि ।
करहा पथ कबीर का, मो हम सीया सोधि ॥१॥

---

१ ठकनी ( बमन )　२ मारे ( मारता है )　३ निर्लज्ज।

पीठ दई संसार सूँ, परमेश्वर सूँ प्रीति ।
जन हरिदास कबीर की, या कछु उलटी रीति ॥२॥
उलटे पैंडे परम सुख, परम साध तहाँ जाहि ।
हरिदास जन यूँ कहै, निगुरा पहुँचै नांहि ॥३॥
अगनिन जालै जलि नहिं डूबै, झडि झडि पडै जंजीर ।
जन हरिदास गोविन्द भजे निरभै मतै कबीर ॥४॥
मारि मारि काजी करै, कुंजर बन्धै पाव ।
जन हरिदास कबीर कूँ, लगैन ताती बाव ॥५॥
राखण हारा एक तूँ, मारण हारा कोडि ।
जन हरिदास कबीर का (कोई) मता सक्या नहि मोहि ॥६॥

॥ अथ करुणा को अंग ॥

रात अन्धारी सरप डर, सखी तस जन दूरि ।
जन हरिदास हरि अगमहै, करुणा कियां हजूरि ॥१॥

॥ अथ कामी नर को अंग ॥

करम कडाही कामजल, मैं तैं लुटकि मांहि ।
जन हरिदास जीव जलतहै, जांणें कोई नांहि ॥१॥
राम नाम न्यारा रह्या, नांणों नारी साथ ।
(जनहरिदास)ता सुखकी गतिमति अगम, सो सुखनाया हाथ॥२

साचा मोडा रामजी, दूजा मोडा झूठि ।
दूजा मोडा बिन ससी काची पेड कसूठि ॥३॥
रामरतन न्यारा रह्या, कौड़ि खीवा मारि ।
जन हरिदास नर नारियों, नरां बिसम्बी नारि ॥४॥
डूंगरतें पशु उत्तरे, [1]सारथि दौड़ै भाव । -
जन हरिदास नारी मसे, मिलै स खोटा खाव ॥५॥
तनमन दे सरवस लिया, भूखी मांमखि खाव ।
जन हरिदास नारीमवे, मिले स खोटा खाव ॥६॥
तनमन दे सरवस लिया, भूखी मांमखि खाय ।
जन हरिदास नारी नरकि, पांइ पकड़ि ले जाय ॥७॥
मोमखि ले जुइ हुई भोग करण यें मेद ।
साहिब मूं पाछी फिरै, वहां कष का छेद ॥८॥
जन हरिदास परनारियां, रोपै निम्रदि गंवार ।
गमन करया भरमें पसे, पूठा काली पार ॥९॥
जन हरिदास नारी सगति, साष करो मति कोय ।
नारी समति संकर ठग्या, कुसल कहां ते होय ॥१०॥
जन हरिदास गोबिन्द भजो सुरति सहज धरि धारि ।
नारी हरिभजि हरि मिलै, सोमी संगनि पारि ॥११॥

---

1 सवेठी ।

मन उनमन लागा रहै, नांही आंन उपाव ।
जन हरिदास नररी संगति, भी कंध का घाव ॥१२॥
हरितै सुरति उतारि करि, पूठा वैसे आय ।
जन हरिदास याही कठिन, महा मही है खाय ॥१३॥
जन हरिदास पर कामणी, नैण बांण भरि खाय ।
सतगुरु सबद संभालि करि, रा कै बांण चुकाय ॥१४॥

## ॥ अथ साध परिच्छा को अंग ॥

जहा जल तहां ज्वाला नहीं, हरि तहो मैं तै नांहि ।
जन हरिदास के हरि कुरंग, ऐकै बनि नव साहि ॥१॥
स्याम वरण दोन्यू दुरसि, एक अजब अनुराग ।
जन हरिदास बोल्यो बिगति, कहो कोयल कहो काग ॥२॥
जन हरिदास अद्भुत कथा, दोन्यूं ऊजल भाय ।
हंस अजब मोती चुगै, बुगला मच्छी खाय ॥३॥
जहां बगुला तहां हंस भरत, जन हरिदास दुख दोय ।
वासा तरि सरभरि लगै, [1]चारे ब्यौरा होय ॥४॥
शीतल दृष्टि चकोर की, चन्द बसै ता मांही ।
जन हरिदास ज्वाला चुगै, देखो दाजै नांही ॥५॥

---

१ खाने में मालूम ।

उद्गरि समायस पृथिल, रहै निरन्तरि लागि ।
जे कबहूं सोचों करे, तौ लखि जलती आगि ॥६॥
उद्गरि समायस पृथिले, अन्तरि रहै उदास ।
जे कबहूं [1]सोचो करी, तौ पोलों होय बिनास ॥७॥

॥ अथ साध संगति को अंग ॥

साधा संगति निरमल दशा, जे मन हो ये मल ।
जन हरिदास तिल तलका कैसा भया फुलेल ॥१॥
तिल फिरि लेस्या पहुपवें सरस परस रस रूप ।
जन हरिदास संगति सरस, कैसा भया अनूप ॥२॥
जन हरिदास चंदन संगति, बधे स चंदन होय ।
बांस बास भेदै नहीं, सबया न भाषो लोय ॥३॥
बांस सदा ही बस्त है, चन्दन की जड़ मांहि ।
जन हरिदास निरवास है, भीतरि भेद्या नांहि ॥४॥
निस बासर गोबिन्द भजै, कबहूं बिसरै नांहि ।
तिनकी संगति कीजिए, ले आय पारसी मांहि ॥५॥
जन हरिदास काची संगति, सारा फूटै मन ।
जोति प्रकास न करि सकै, ज्यूं [2]पोथी मांहि रतन ॥६॥

१ उत्तम ( मूल ) २ भगती मैली ।

जब ही जल मूं काढिए, तबहीं करै प्रकाश ।
जन हरिदास साची संगति, सोधि करै सो दास ॥७॥

## ॥ अथ हेत प्रीति को अंग ॥

सूरज बसी कवल का, जन हरिदास मति जोय ।
रवि विकस्यां विकसै भलां, असत रहै मुख गोय ॥१॥
जन हरिदास कमोदनी, इष्ट एक विश्वास ।
ससि विकस्यां विकसै भलो, नही तर रहै उदास ॥२॥
जन हरिदास सुत हंस का, कलपिन करै अकाज ।
भूखा रहै कै मोति चुगै, कुल अपणां की लाज ॥३॥

## ॥ अथ निंदा को अंग ॥

खेत निंदाण्यो नीपजे, सिरटा मोटा होय ।
जन हरिदास निंदा भली, जै करि जाणै कोय ॥१॥
जन हरिदास कहिए-कहा, मुग्ध न मांनै मूरि ।
अगम अर्क अकास रथ, खिजि खिजि डारै धूरि ॥२॥
कै बांयै कै दाहिणै, कै ज्ञान हीन गत लार ।
जन हरिदास गोविन्द भजो, ए दहि दिस करै पुकार ॥३॥

## ॥ अथ भय को अंग ॥

मैं भुरकी उलटी पडी, ओषध लगै न काय ।
जन हरिदास भी भै भला, जै नख सख रहै समाय ॥१॥

॥ अथ कुसबद को अंग ॥

कटुक वचन कोरी कसर, हरि भक्ति राखो कोय ।
जन हरिदास यूँ आखिये, या कडुयों ही सुख होय ॥१॥

॥ अथ कुपथ्या को अंग ॥

मांस ईख किम मिस विराम, [1]थाहर रसना लार ।
जन हरिदास पक्ष एक है, कुछ [4]कुवा केका फर ॥१॥
मांस एक कुपथ्य का करम, पाप पुनि विस्तार ।
जोति बीजले भस्म सत्या, पपची २ धार ॥२॥
कनक दाना[2] सब होमिए, सकल[3]भक्ति रस मिटि जाय ।
जन हरिदास निरमल वस्त, निर्मल मांहि समाय ॥३॥
करम कड़ी काठी कड़ी, बांध न लागे कोय ।
मूरख नर हरि विमुख, सतगति सुरक्यों न होय ॥४॥

॥ अथ मित्र कपटी को अंग ॥

जन हरिदास हरिजन मिले, तबही आनन्द होय ।
मित्र कपटि कोई मति मिलो जाके अन्तरि होय ॥१॥
मुखसे मीठी दे मिले, मित्र मांही कछु और ।
हरीदास जन यूं कहे, पहुंचेंगे किस ठौर ॥२॥
ज्यानों दरिया दास है, साहिब भरु संसार ।
तुम किण दरिया की माछली हमसूं कहो विचार ॥३॥
जग दरियाव में देह है, साधों सेती प्रीति ।
हरि दरियाव कू अलखहै यह हमारी रीति ॥४॥

---

१ थाहर ( दूध ) २ बीज ३ भक्ति ४ कडुवा ।

॥ इति साखी सम्पूर्ण ॥

## ॥ अथ श्लोक ॥

अदृष्टं निरक्षरं बीज वर्जित तरवरं, त्रिलोक तमि छाया ।
स्वाद जानत वे वीत रागी ॥१॥
जामन्मुखि जल ज्वलन्त ज्वाला, चिनगी खार वायकं ।
आपै आप जलन्तरै मानवा, तस्य प्रानी जीवन वृथा ॥२॥
अगंचमस्मतेस्मो चन चरं, मान अमान जोगेश्वरं ।
उन्मनी अवस्था सारग्राही, निर्मलं मन अस्थिरम् ॥३॥
ऊंचा अवासं सुख सेज्या, नाना भोजनं जलं हवा ।
मद मस्त कुंजर दरबार जोधा, तऊ काल ग्रासं तरे मानवा ॥४॥

॥ इति श्लोक सम्पूर्ण ॥

## ॥ अथ स्तुति की साखी ॥

अगम सुख तहां मिति रहे, जीति मोह मद काम ।
जहां लोक वेद की गमनहीं, अगम ठौड विसरांम ॥१॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, जन हरिदास तहां रमि रह्या ।
पार न पावे शेष ॥२॥
कृत्रिम तजि वरि अमर वरि, सत गुरु कै उपदेश ।
जन हरिदास जहां मिल्लिरह्या, तहां संतो किया प्रवेश ॥३॥
नग्र नाव बेगम पुरा, वेगम मांहि वसांही ।
वहां कोई पहुँचै सन्तजन, दूजा की गम नांही ॥४॥

जहाँ रेखा पाँच उतपति नहीं, पर नहि तहां १मान ।
जहाँ पावक पवन पाणी नहीं, तहां आहात्म्य (जन) हरिदास का स्थान ॥५॥
जन हरिदास श्रीकृत कियो, सुणि उपरे विग्यास ।
ओर्यां कू हिरदे धरै तिनकी पुरवै आस ॥६॥
नर नारी काऊ पढो पढ़ै स उतरै पारि ।
हरीदास जन यूं कहै राम नाम ततसार ॥७॥
कलि माँहियो पन्न पवर, सबद मये सिद्धन्त ।
वा र्दू सुमर रैण दिन, कबहु न होवे अन्त ॥८॥
वाणी श्रीहरिपुरुषस्य विमला नैरंजनी विश्रुताः ।
वैराग्यं हरिभक्ति मत्र वितरत्याश सनेभ्यः शिवम्॥
नन्दाष्टाङ्कविध प्रमाङ्ग सहिते वैशाख मासे सित ।
पत्तऽवाम्यतिर्थौ रवौ शुभयत मुद्रापिता शोन्विदा ॥१॥

१ मान (दृप) मत्सर

॥ इति श्री स्वामी श्री श्री हरिदासजी महाराज कृत वाणी संपूर्ण ॥

नगानदासोत निरंजनी
सन्त महन्तानुचर
स्वादास वैष्णव
जोधपुर।